SA-04

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

गद्य, समास-प्रकरण तथा निबन्ध

ISBN No. : 13/978-81-8496-186-7

SA-04

dY©_mZ _hmdra Iwbm {dídÚmb`, H$moQ>m

गद्य, समास–प्रकरण तथा निबन्ध

mR>`H$_{Z_m©U g{_{V

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच

कुलपति

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

g§`moOH$/g_Ýd`H$ EdŠ g{X®`

प्रो. (डॉ.) गणेशीलाल सुथार
परामर्शदाता (संस्कृत)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
पूर्व निदेशक
पण्डित मधुसूदन ओझा शोध प्रकोष्ठ
पूर्व आचार्य, संस्कृत–विभाग
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राजस्थान)

डॉ. क्षमता चौधरी
सहायक–आचार्य (अंग्रेजी–विभाग)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
(राजस्थान)

सदस्य :

1. **प्रो. (डॉ.) राजेन्द्र आई. नाणावटी (राष्ट्रपति–सम्मानित)**
   इमेरिटस फेलो (यू.जी.सी.)
   पूर्व निदेशक, ऑरियण्टल इन्स्टीट्यूट
   महाराज सयाजीराव विश्वविद्यालय बडोदरा (गुजरात)
2. **डॉ. कलानाथ शास्त्री (राष्ट्रपति–सम्मानित)**
   अध्यक्ष, आधुनिक संस्कृत साहित्य–पीठ
   जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)
   पूर्व अध्यक्ष, राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर
3. **प्रो. (डॉ.) कमलेश कुमार चोकसी**
   आचार्य, संस्कृत–विभाग
   गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदाबाद
4. **प्रो. (डॉ.) धर्मचन्द जैन**
   आचार्य तथा अध्यक्ष
   संस्कृत–विभाग
   जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर
5. **डॉ. सुषमा सिंघवी**
   पूर्व सह आचार्य, संस्कृत–विभाग
   जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर
   पूर्व निदेशक
   वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय
   क्षेत्रीय केन्द्र, जयपुर (राजस्थान)

gå`mXZ EdŠ mR>-boIZ

सम्पादक
डॉ. (श्रीमती) सरोज कौशल
सह–आचार्य
संस्कृत–विभाग
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय
जोधपुर (राजस्थान)

सह–सम्पादक
डॉ. (श्रीमती) रानी दाधीच
प्रवक्ता (संस्कृत)
राजस्थान शिक्षा महाविद्यालय
जयपुर (राजस्थान)

लेखक

1. **डॉ. विक्रमजीत** इकाई 1,2
   व्याख्याता
   संस्कृत–विभाग
   राजकीय स्नातकोत्तर डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर
2. **विकास दाधीच** इकाई 3,8,9
   शोधकर्ता
   संस्कृत–विभाग
   जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर
3. **डॉ. (श्रीमती) सुदेश आहूजा** इकाई 4,5,6,7
   व्याख्याता
   संस्कृत–विभाग
   राजकीय महाविद्यालय, कोटा
4. **डॉ. सरिता भार्गव** इकाई 10,11
   अध्यक्ष
   संस्कृत–विभाग
   राजकीय महाविद्यालय, कोटा
5. **डॉ. सत्यप्रकाश दुबे** इकाई 12,13,14,15
   निदेशक, पण्डित मधुसूदन ओझा शोध प्रकोष्ठ
   सह–आचार्य
   संस्कृत–विभाग
   जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

AH$mX{_H$ EdŠ àemg{ZH$ i`dñWm

àm. (S>m°.) Zaoe XmYrM	àm. (S>m°.) E_.H$. Jm>md{bm	`mo.bm.ŠÐ Jmo`b
Hw$bn{V	{ZXoeH$	àYmZ A{YH$mar
dY©_mZ _hmdra Iwbm {dídÚmb`, H$moQ>m	gSH$m` {dÚmJ	mmR²>` gm_J«r CËnmXZ EdŠ {dVaU {dÚmJ

mmR²>`H«$_ CËnmXZ

`mo.bm.ŠÐ Jmo`b

gh m`H$ CËnmXZ A{YH$mar

dY©_mZ _hmdra Iwbm {dídÚmb`, H$moQ>m

CËnmXZ : OZdar 2010 ISBN 978-81-8496-186-7

**gdm©{YH$ma gwa{jV :** Bg gm_J«r H$m {H$gr ^rê$n _| "{_{_`mJ«m\$s' (_H«$_wÐU) H$s Ûmam `m AÝ` {H$gr nÕ{V go nwZ: àñVwV H$aZo H$m AZw_{V Zht h¡&

Hw$bg{Md, d._.Iw.{dídÚmb`, H$moQ>m Ûmam dY©_mZ _hmdra Iwbm {dídÚmb`, H$moQ>m H$m {b`o _w{ÐV EdŠ àH$m{eV&

Xr S>m`_ÊS> {àpÝQ>¨J àog, O`nwa Ûmam 500 à{V`m§ _w{ÐV&

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अनुक्रमणिका

गद्य समास–प्रकरण तथा निबन्ध

इकाई सं.	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या

शिवराजविजयः (प्रथमनिश्वासः)

इकाई 1. अम्बिकादत्त व्यास की गद्यशैली का वैशिष्ट्य, प्रथम निश्वास के अनुसार तत्कालीन भारतवर्ष की दशा का वर्णन, पात्रों का चरित्र–चित्रण 1–10

इकाई 2. प्रथम निश्वास के प्रारम्भ से ''..... न पारितं निरोद्धुं नयनवाष्पाणि।'' पर्यन्त अंश का हिन्दी में सप्रसङ्ग अनुवाद आदि 11–22

इकाई 3. ''अथ कन्यके! मा भैषीः.....''से प्रारम्भ कर ''.....परस्सहस्राणि च देवमन्दिराणि भूमिसात्कृतानि।'' पर्यन्त अंश का हिन्दी में सप्रसङ्ग अनुवाद आदि 23–41

इकाई 4. ''स एव प्राधान्येन भारते....'' से प्रारम्भ कर ''.....पत्रमेकमादाय सगणः स्वकुटीरं प्रविवेश।'' पर्यन्त अंश का हिन्दी में सप्रसङ्ग अनुवाद आदि 42–58

शुकनासोपदेश–वर्णनम्

इकाई 5. शुकनासोपदेश के आधार पर बाणभट्ट की गद्य शैली की विशेषताएँ, लक्ष्मी के दोषों का निरूपण, लक्ष्मी–परिगृहीत राजाओं की दशा का वर्णन 59–74

इकाई 6. ''एवं समतिक्रामत्सु दिवसेषु राजा चन्द्रापीडस्य.....'' से प्रारम्भ कर ''....राज्यविषविकारतन्द्राप्रदा राजलक्ष्मीः।'' पर्यन्त अंश का हिन्दी में सप्रसंग अनुवाद आदि 75–86

इकाई 7. "आलोकयतु तावत् कल्याणाभिनिवेशी लक्ष्मीमेव प्रथमम्.....से प्रारम्भ कर ''....उत्कीर्णापि विप्रलभते, श्रुताप्यभिसन्धत्ते चिन्तितापि वञ्चयति।" पर्यन्त अंश का हिन्दी में सप्रसंग अनुवाद आदि 87–100

इकाई 8. ''एवं विधयापि चानया दुराचारया कथमपि दैववशेन परिगृहीता....'' से प्रारम्भ कर ''... वल्मीकतृणाग्रावस्थिता जलबिन्दव इव पतितमप्यात्मानं नावगच्छन्ति।'' पर्यन्त अंश का हिन्दी में सप्रसंग अनुवाद आदि 101–113

इकाई 9. ''आपरे तु–स्वार्थनिष्पादनपरैर्धनपिशित–ग्रास– गृध्रैरास्थाननलिनीबकैः.....'' से प्रारम्भ कर ''...प्रीतहृदयो मुहूर्तं स्थित्वा स्वभवनमाजगाम।'' पर्यन्त अंश का हिन्दी में सप्रसंग अनुवाद, आदि 114–128

समास–प्रकरण

इकाई 10. **अव्ययीभाव समास** 129– 144

अव्ययीभाव–सम्बन्धी सूत्रों की व्याख्या तथा उदाहरण, समस्त पदों की समासविग्रह प्रक्रिया का सूत्रोल्लेखपूर्वक निरूपण

इकाई 11. **तत्पुरुष समास, व्यधिकरण तत्पुरुष समास** 145–156

व्यधिकरण तत्पुरुष समास– सम्बन्धी सूत्रों की व्याख्या तथा उदाहरण, समस्त पदों की समास विग्रह–प्रक्रिया का सूत्रोल्लेख पूर्वक निरूपण

इकाई 12. **कर्मधारय समास, समानाधिकरण समास** 157–163

कर्मधारय समास–सम्बन्धी सूत्रों की व्याख्या तथा उदाहरण, समस्त पदों की समास विग्रह प्रक्रिया का सूत्रोल्लेख पूर्वक निरूपण

इकाई 13. **द्विगु, नञ् तत्पुरुष तथा उपपद तत्पुरुष समास** 164–169

उपर्युक्त समासों से सम्बन्धित सूत्रों की व्याख्या तथा उदाहरण, समस्त–पदों की समास विग्रह प्रक्रिया का सूत्रोल्लेख पूर्वक निरूपण

इकाई 14. **बहुव्रीहि तथा द्वन्द्व समास** 170–180

उपर्युक्त दोनों समासों से सम्बन्धित सूत्रों की व्याख्या तथा उदाहरण, समस्त–पदों की समास विग्रह–प्रक्रिया का सूत्रोल्लेख पूर्वक निरूपण

इकाई 15. **संस्कृत निबन्ध** 181–188

निम्नलिखित विषयों पर संस्कृत में निबन्ध का लेखन – भारतीयसंस्कृतिः, विद्यामाहात्म्यम् (विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्), परोपकारः (परोपकाराय सतां विभूतयः), सत्संगतिः (सत्संगति कथय किं न करोति पुंसाम्), गीताया महत्त्वम्, अहिंसा परमो धर्मः, धर्म एव त्रिवर्गसारः, संस्कृतभाषाया महत्त्वम्, आधुनिकयुगे संस्कृतशिक्षायाः स्थितिः, अस्माकं राष्ट्रियाः समस्याः।

इकाई –1

शिवराजविजयः (प्रथमनिश्वासः)

अम्बिकादत्त व्यास की गद्यशैली का वैशिष्ट्य, प्रथम निश्वास के अनुसार तत्कालीन भारतवर्ष की दशा का वर्णन, पात्रों का चरित्र–चित्रण

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 अम्बिकादत्त व्यास की गद्य-शैली का वैशिष्ट

1.2.1 रीति चातुर्विध्य

1.2.2 अलंकार योजना

1.2.3 रस योजना

1.3 प्रथम निश्वासानुसार तत्कालीन भारतवर्ष की दशा का वर्णन

1.4 पात्र-चरित्र-चित्रण

1.4.1 वीर शिवाजी

1.4.2 अफजल खां

1.4.3 गौरसिंह

1.5 बोध–प्रश्न

1.6 उपयोगी पुस्तकें

1.7 बोध–प्रश्नों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

पं. अम्बिकादत्त व्यास 'अभिनव बाण' के रूप में तथा उनका काव्य 'शिवराजविजय' संस्कृत के प्रथम उपन्यास के रूप में ख्यात है। प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से छात्र जहाँ इस 'अभिनवबाणभट्ट' की गद्य शैली से परिचित हो सकेंगे, वहीं उन्हें शिवराजविजय में प्रतिबिम्बित तत्कालीन भारतवर्ष की दशा का भी ज्ञान हो सकेगा। साथ ही शिवराजविजय में चित्रित शिवाजी, गौरसिंह, श्यामसिंह आदि के चरित्र के द्वारा छात्र राष्ट्रभक्ति, स्वाभिमान, आत्मसम्मान, आत्मविश्वास, स्वधर्मानुराग आदि मूल्यों की ओर प्रेरित हो पायेंगे।

1.1 प्रस्तावना

शिवराजविजय एक ऐतिहासिक उपन्यास है, इसमें वर्णित कथा ऐतिहासिक है, किन्तु व्यास जी ने अपनी प्रतिभा और कल्पना के सहारे उसे उच्च कोटि की साहित्यिकता प्रदान कर दी है। कथा अधिकांश रूप में मौलिक होते हुये भी उसमें साहित्यिक कल्पना का समावेश है। इसमें कथा वस्तु की संघटना प्राच्य और पाश्चात्य शिल्प के समन्वय

से की गई है। यद्यपि इसमें दो स्वतन्त्र धाराएँ समानान्तर रूप से प्रवाहित होती हैं-एक के नायक शिवाजी हैं, तो दूसरी के नायक रघुवीरसिंह हैं, तथापि ये एक दूसरे से पूर्ण स्वतन्त्र और निरपेक्ष नहीं, एक दूसरे के पूरक हैं। एक का महत्त्व दूसरे से उद्भासित होता है। अत: दोनों परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। कथा में इतना प्रवाह और सम्प्रेषणीयता है कि पाठक की आकांक्षा उत्तरोत्तर वृद्धिगत होती जाती है। शिवराजविजय की सम्पूर्ण कथा तीन विरामों में समाहित है। प्रत्येक विराम में चार निश्वास हैं।

व्यास जी के शिवराजविजय में इतिहास और कल्पना, आदर्श और यथार्थ अनुभव और कल्पना का सुन्दर समन्वय है। उनके सभी पात्र अपने चरित्र-निर्वाह में पूरी तरह से खरे उतरते हैं। वीर शिवाजी, गौरसिंह, रघुवीरसिंह, यशवन्तसिंह, अफजलखाँ, शाइस्तखाँ तथा ब्रह्मचारी आदि सदा अपनी स्वाभाविकता और यथार्थता का निर्वाह करते हैं। उसमें न कहीं अतिशयता है और न कहीं न्यूनता या अस्पष्टता।

शिवराजविजय वीररस प्रधान काव्य है तथापि उपकारी रूप में सभी रसों का चित्रण है। व्यास जी ने अलंकार विधान में सदैव सजगता दिखाई है। यद्यपि इनका वर्णन कहीं पर अनलंकृत नहीं है, तथापि अनावश्यक अलंकार भार से बोझिल भी नहीं है।

गद्यकारों में सर्वाधिक अलंकार विधान बाण ने किया है। यदि इस क्षेत्र में उनके साथ व्यास जी को देखा जाय तो अन्तर यह दिखेगा कि इनकी कृति अनपेक्षित अलंकार भार से बोझिल नहीं है।

शिवराजविजय की शैली अत्यन्त सरल, सरस तथा प्रवाहमयी है। भाषा की सरलता और भाव की उत्कृष्टता का समन्वय ही कवि की प्रमुख विशेषता होती है। कविकथ्य जितना ही सरल और सुन्दर ढङ्ग से कहा जाय, काव्य उतना ही हृदयग्राही और 'सद्य: परनिर्वृत्तये' की भावना को प्राप्त करने वाला होता है।

अस्तु 'शिवराजविजय' भाषा और भाव- दोनों ही दृष्टि से एक उत्तम कोटि का काव्य कहा जा सकता है। इसमें प्रतिभा की प्रौढ़ता, कल्पना की सूक्ष्मता, अनुभव की गहनता, अभिव्यक्ति की स्पष्टता, भावों की यथार्थता और रमणीयता, पदावलियों की मधुरता, कथानक की प्रवाहमयता, आदर्श की स्थापना, शिव की भावना और सुन्दर की सुन्दरता निहित है। उपन्यास की दृष्टि से भी यह कथानक, पात्र, घटना, संवाद, अन्तर्द्वन्द्व, आकांक्षा आदि तत्त्वों से पूर्ण है और **'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति'** की कसौटी पर खरा उतरता है।

1.2 अम्बिकादत्त व्यास की गद्यशैली का वैशिष्ट्य

भाषा शैली- मनोगत भावों को परहृदय-संवेद्य बनाने का प्रमुख साधन भाषा है और भाषा की क्रमबद्धता या रचना-विधान को ही सम्भवत: शैली भी कहा जाता है। अत: सामान्यत: भाषा-शैली ऐसा प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। इस आधार के साथ यह कहा जा सकता है कि काव्य में मनोगत भावों को मूर्त रूप प्रदान करने का प्रमुख एवं सहज साधन 'शैली' है। **'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्'** के परिप्रेक्ष्य में यदि अर्थ काव्य की आत्मा है तो शब्द अर्थात् शैली काव्य का शरीर। अत: भाव की मनोहरता, स्थिरता और सूक्ष्मता शैली पर ही निर्भर होती है।

डॉ. श्यामसुन्दर दास के अनुसार किसी कवि या लेखक की शब्द योजना, वाक्यांशों के प्रयोग, उसकी बनावट और ध्वनि आदि का नाम ही शैली है। दण्डी ने काव्यादर्श में- **'अस्त्यनेको गिरामार्ग: सूक्ष्मभेदपरस्परम्'** कहा है।

1.2.1 रीति चातुर्विध्य

इन भावनाओं के अनुसार स्थूलत: शैली के दो भेद किये जाते हैं- (1) समास शैली (2) व्यास शैली। विद्वानों ने मार्ग (शैली) को चार प्रकार का माना है। किन्तु अनन्तर काल में इन्हें शैली न कहकर रीतियाँ कहा जाने लगा है। ये रीतियाँ चार हैं- (1) वैदर्भी, (2) गौडी, (3) पाञ्चाली और (4) लाटी।

(1) कोमल वर्णों वाली और असमासा अथवा अल्पसमासा, माधुर्यपूर्ण रचना **वैदर्भी** रीति है।

(2) महाप्राण-घोषवर्णा, ओजगुणसम्पन्ना तथा समास-बहुला रचना **गौडी** है।

(3) वैदर्भी और गौडी का सम्मिश्रण **पाञ्चाली** रीति है।

(4) वैदर्भी और पाञ्चाली का सम्मिश्रण **लाटी** रीति है।

शिवराजविजय की भाषा सरल, सुबोध एवं स्पष्ट है। पदावलियों के प्रयोग वर्ण्य विषय के अनुसार होने चाहिये। एक ही विधा प्रत्येक वर्णन को प्रभावमय नहीं बना सकती और व्यास जी ने ऐसा ही किया है। अत: कहा जा सकता है कि शिवराजविजय में उचित शब्दावलियों का प्रयोग, अर्थपूर्ण वाक्यविन्यास तथा अवसर के अनुकूल कोमल तथा कठोर वर्णों का प्रयोग किया गया है।

व्यास जी ने अवसर के अनुकूल एक ओर दीर्घ-समास-बहुला पदावली का प्रयोग किया है तो, दूसरी ओर सरल लघु-पदावली का। पूर्वोक्त रीतियों के सन्दर्भ में शिवराजविजय में व्यास जी ने पाञ्चाली रीति का आश्रय लिया है। इनके साक्ष्य में तथ्य द्रष्टव्य हैं- अफजल खाँ के शिविर का वर्णन करते हुए व्यास जी समस्त (दीर्घ) पदावली में कहते हैं-

'इतस्तु स्वतन्त्र यवनकुल-भुज्यमान-विजयपुराधीश-प्रेषित:पुण्यनगरस्य-समीपे एव प्रक्षालितगण्डशैल-मण्डलाया: निर्झरवारिधारा-पूर-पूरित-प्रबल-प्रवाहाया:, पश्चिम-पारावार-प्रान्तप्रसूत-गिरि ग्राम-गुहा गर्भ-निर्गताया अपि प्राच्य-पयोनिधि-चुम्बनचञ्चुराया:, रिङ्गत्-तरङ्गभङ्गोद्भूतावर्तशत-भीमाया: भीमाया नद्या:, अनवरत-निपतद्-वकुल कुल-कुसुम-कदम्ब-सुरभीकृतमपि नीरमवगाहमान-मत्त-मतङ्गज-मद-धाराभि: कटूकुर्वन्; हय हेषा-ध्वनि-प्रतिध्वनि-वधिरीकृत-गव्यूति-मध्यगाध्वनीन वर्ग:, पट-कुटीर-कुट विहित शारदाम्भोधर-विडम्बन: निरपराध-भारताभिजन-जन-पीडन-पातक-पटलैरिव समुद्धूयमाननीलध्वजैरुपलक्षित:।'

दूसरी ओर व्यास जी की लघुसमास शैली भी अत्यन्त भावपूर्ण और मार्मिक है। उसमें अभिव्यक्ति की स्पष्टता और सूक्ष्मता निहित है-

'एष भगवान् मणिराकाशमण्डलस्य, चक्रवर्ती खेचरचक्रस्य, कुण्डलमाखण्डलदिश:, दीपको ब्रह्माण्डभाण्डस्य, प्रेयान् पुण्डरीकपटलस्य, शोकविमोक: कोकलोकस्य, अवलम्बो रोलम्बकदम्बस्य, सूत्रधार: सर्वव्यवहारस्य, इनश्च दिनस्य।'

व्यास जी की इस रचना में समासरहित सुन्दर पदावलियों का प्रयोग भी अत्यन्त हृद्य है-

'बटुरसौ आकृत्या सुन्दर:, वर्णेन गौर:, जटाभिर्ब्रह्मचारी, वयसा षोडशवर्षदेशीय:, कम्बुकण्ठ:, आयतललाट:, सुबाहुविशाललोचनश्चासीत्।'

अम्बिकादत्त व्यास विद्वान् थे, भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार था और भावाभिव्यक्ति की पूर्ण क्षमता थी। भाव के अनुकूल भाषा का संयोजन करने का ध्यान सदैव रखते थे। जैसा कोमल या कठोर भाव का वर्णन करना होता था, उसी के अनुसार भाषा संयोजन करते थे। शान्त, स्निग्ध एवं नीरव निशा का वर्णन देखिये-

'धीरसमीरस्पर्शेन मन्दमन्दमान्दोल्यमानासु व्रत्तिषु, समुदिते यामिनी-कामिनी चन्दनविन्दौ इव इन्दौ, कौमुदीकपटेन सुधाधारमिव वर्षति गगने, अस्मन्नीतिवार्ताशुश्रूषुषु इव मौनमाकलयत्सु पतंगकुलेषु कैरवविकासहर्षप्रकाश मुखरेषु चञ्चरीकेषु।'

भावों की सरल एवं स्वाभाविक अभिव्यक्ति के लिये उनकी भाषा द्रष्टव्य है–

'क्वचिद् हरिद्रा हरिद्रा, लशुनं लशुनम्, मरिचं मरिचम्, चुक्रं चुक्रम्, वितुन्नकं वितुन्नकम्, शृंगवेरं शृंगवेरम्, रामहं रामहम्, मत्स्यण्डी मत्स्यण्डी, मत्स्या मत्स्याः,कुक्कुटाण्डं कुक्कुटाण्डम्, पललं पललमिति–'

अस्तु, इस कृति के अवलोकन से स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने भाषा और शैली का प्रयोग भाव के अनुसार ही किया है। यत्र–तत्र व्याकरणिक शब्दों का भी प्रयोग उनकी विद्वत्ता की ओर संकेत करता है। सन्नन्त, यङन्त यङ्लुङन्त शब्दों का भी प्रयोग मिलता है। उनकी भाषाशैली उनके काव्य को उत्कृष्टता प्रदान करने में पूर्णतः उपजीव्य है।

1.2.2 अलङ्कार योजना–

कविताकामिनी का शृङ्गार है– अलङ्कार योजना। जिस प्रकार आभूषण से नारी का सौन्दर्य बढ़ जाता है, उसी प्रकार अलङ्कार से काव्य का भी चमत्कार एवं हृदय संवेद्यता बढ़ जाती है। अनलंकृत भाषा एवं रमणी दोनों चित्ताकर्षक नहीं होते। कुछ अर्थालङ्कार तो इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि उनके विधान से काव्य के सर्वस्व वे ही प्रतीत होने लगते हैं। इसी कारण तो कुछ अलङ्कारवादियों ने अलङ्कार को ही काव्य की आत्मा मानना प्रारम्भ कर दिया। कुछ भी हो काव्य में अलङ्कार का स्थान महत्त्वपूर्ण है। अलङ्कार के अभाव में काव्य अपनी पूर्णता को प्राप्त करने में कभी भी समर्थ नहीं हो सकता।

पं. अम्बिकादत्त व्यास ने अपनी सुरभारती को एक सुन्दर रमणी की भाँति अलङ्कार से सजाया है। अनुकूल एवं समुचित अलङ्कार का संयोजन किया है। बाण की कृति अलङ्कार के भार से बोझिल हुई प्रतीत होती है किन्तु व्यास की कृति विरलालङ्कार विभूषिता लावण्यमयी तन्वंगी के समान है। उन्होंने शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार दोनों का सावसर प्रयोग किया है। शब्दालङ्कार तो पदे पदे दृष्टिगोचर होता है। अनुप्रास अलङ्कार का एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

'भामिनी भ्रूभङ्गभूरिभावप्रभावपराभूतवैभवेषु भटेषु'
'चञ्चच्चन्द्रहासचमत्कारचाकचक्यचिल्लीभूतचक्षुषका'।
'चञ्चच्चाकचिक्यचकितीकृतावलोचकलोचननिचयां,'
'महाघण्टां प्रसह्य संगृह्य'

यत्र–तत्र यमक का भी प्रयोग किया है–

'विलक्षणोऽयं भगवान् सकलकलाकलापकलनः सकलकालनः करालः कालः।'

कवि की कल्पना का बहुत बड़ा सम्बल है–**उत्प्रेक्षा** अलङ्कार। बाण की तरह व्यास जी ने भी उत्प्रेक्षा की पर्याप्त संयोजना की है। एक मालोत्प्रेक्षा का उदाहरण द्रष्टव्य है–

'गगनसागरमीने इव, मनोजमनोज्ञहंसे इव, विरहिनिवकृन्तेन रौप्यकुन्त प्रान्ते इव, पुण्डरीकाक्ष–पत्नीकरपुण्डरीकपत्रे इव, शारदाभ्रसारे इव सप्तसप्ति सप्तिपादच्युते राजतखुरत्रे इव मनोहरतामहिला ललाटे इव, कन्दर्पकीर्तिलताङ्कुरे इव, प्रजाजननयनकर्पूरखण्डे इव, तमीतिमिरकर्तनशाणोल्लीढनिस्त्रिशे इव च समुदिते चन्द्रखण्डे'।

'उपमा' अलङ्कारों में प्रमुख माना जाता है क्योंकि उपमा एक प्रकार से वक्तव्य के कहने का ढङ्ग है, जिसका व्यवहार सर्वाधिक होता है। साधर्म्य अलङ्कारों की माला में उपमा 'सुमेरु' है। उपमा का प्रयोग भी व्यास

जी ने बड़े सरल तथा स्वाभाविक ढङ्ग से किया है–

'सेयं वर्णेन सुवर्णम् कलरवेण पुंस्कोकिलान्, केशैः रोलम्बकदम्बान्, ललाटेन कलाधरकलाम् लोचनाभ्याम् खञ्जनान्, अधरेण बन्धुजीवम्, हासेन ज्योत्स्नाम्'।

व्यास जी ने परम्परा से हटकर नये उपमानों का भी प्रयोग किया है, जैसा कि संस्कृत कवियों में प्रायः नहीं देखा जाता है। कवि ने नौका की उपमा एक कुम्भड़े की फांक से देते हुए लिखा है– 'कुष्माण्डफ क्किकारया नौकया'।

विरोधाभास व्यास जी का प्रिय अलङ्कार है। विरोधाभास के चित्रण में कवि, बाण की समानता करता हुआ दिखाई पड़ता है। शिवाजी के वर्णन में विरोधाभास की छटा बरवश पाठकों को आकृष्ट करती है–

'खर्वामप्यखर्वपराक्रमाम् श्याममपि यशः समूहश्वेतीकृतत्रिभुवनाम्, कुशासनाश्रयामपि सुशासनाश्रयाम्, पठनपाठनादि परिश्रमानभिज्ञामपि नीतिनिष्णाताम् स्थूलदर्शनामपि सूक्ष्मदर्शनाम्, ध्वंसकाण्डव्यसनिनीमपि धर्मधौरेयीम्, कठिनामपि कोमलाम्, उग्रामपि शान्ताम् शोभितविग्रहामपि दृढसन्धिबन्धाम्, कलितगौरवामपि कलितलाघवाम्.....।'

'क्षत्रियकुलाङ्गनाः कमला इव कमला, शारदा इव विशारदा, अनुसूया इवानुसूयाः, यशोदा इव यशोदाः, सत्या इव सत्याः, रुक्मिण्य इव रुक्मिण्यः, सुवर्णा इव सुवर्णाः, सत्य इव सत्यः।'

इसके अतिरिक्त दीपक, श्ल ेष, उदात्त, यथासंख्य आदि अलङ्करों की भी योजना की है। डॉ० भगवानदास कादम्बरी से तुलना करते हुए लिखते हैं– 'जहाँ वासवदत्ता और कादम्बरी के शब्दों की अरण्यानी में बेचारा अर्थ पथिक सर्वथा भूल भटक कर खो जाता है; उसका पता नहीं लगता, वहाँ शिवराजविजय के सुललित उद्यान में, उसकी सहज अलंकृत शैली में पाठक का मन खूब रमता है कादम्बरी के शब्दों की विकट अरण्यानी की तरह शिवराजविजय केशब्दसंसार को देखकर उसका मन घबरा नहीं उठता अपितु उसमें प्रविष्ट होकर उसके आनन्द को लेने की उत्सुकता को जगाता है।

अस्तु, व्यास जी ने अलङ्कारों का प्रयोग मात्र कविताकामिनी को सजाने के लिये ही किया है।

1.2.3 रस–योजना–

'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' के अनुसार रस ही काव्य की आत्मा है। यह सच भी है कि रसहीन काव्य नहीं हो सकता है। अतः काव्य में रसयोजना होती ही है। यद्यपि रसों में उच्चावचता या श्रेणी विभाग नहीं होता है तथापि वर्ण्य की दृष्टि से रस की मुख्यता या गौणता अवश्य होती है।

शिवराजविजय का प्रधान रस है 'वीर'। प्रायः अन्य सभी रस इसमें उपकारी रूप में निहित हैं। उद्देश्य के अनुसार इसमें वीर रस का विशेष रूप से चित्रण किया है। शिवाजी के शौर्य का जो अद्भुत वर्णन किया गया है, वह अत्यन्त स्पृहणीय है। गौरसिंह अफजलखाँ से कहता है–

'को नामापरः शिववीरात् ? स एव राजनीतौ निष्णातः, स एव सैन्धवारोहविद्यासिन्धुः, स एव चन्द्रहासचालने चतुरः, स एव मल्लविद्यामर्मज्ञः, स एव वाणविद्यावारिधिः, स एव वीरवारवरः पुरुषपौरुषपरीक्षकः, स एव दीनदुखदावदहनः, स एव स्वधर्मरक्षणसक्षणः।'

'आगत एष शिववीरः इति भ्रमेणापि सम्भाव्य अस्य विरोधिषु 'केचन मूर्च्छिताः निपतन्ति, अन्ये विस्मृतशास्त्रास्त्राः पलायन्ते, इतरे महात्रासाकुञ्चितोदरा विशिथिलवाससो नग्ना भवन्ति, अपरे च शुष्कमुखा दशनेषु तृणं सन्धाय साग्रेडे प्रणिपातपरम्परां रचयन्तो जीवनं याचन्ते।'

व्यास जी ने यत्र तत्र शृङ्गार रस का भी चित्रण किया है। इन्होंने शृङ्गार का वर्णन अत्यन्त शिष्ट और सात्विक रूप में किया है, उसमें मादकता या उच्छृँखलता लेषमात्र की नहीं है–

'सा चावलोक्य तमेव पूर्वावलोकितं युवानम्, वीराभरमन्थरापि ताताज्ञया बलादिवप्रेरिता ग्रीवां नमयन्ती' आत्मनाऽऽत्मन्येव निविशमाना स्वपादाग्रमेवालोकयन्ती मोदकभाजनसमजितं सव्येतरकरं तदग्रेप्रसारयत्।.....पुनश्च सा अञ्चलकोणं कटिकच्छप्रान्ते आयोज्य, हस्ताभ्यां मालिकां विस्तार्य नतकन्धरस्य रघुवीरसिंहस्य ग्रीवायां चिक्षेप ईषत्कम्पितगात्रयष्टिश्च शनैर्यथा निववृते।'

कहीं–कहीं करुण रस का अत्यन्त हृदयग्राही वर्णन किया गया है–

'माता च तव ततोऽपि पूर्वमेव कथावशेषा संवृता, यमलौ भ्रातरौ च तव द्वादशवर्षदेशीयावेव आखेट व्यसनिनौ महार्हभूषणभूषितौ तुरगावरुह्य वनं गतौ दस्युभिरपहृतौ इति न श्रूयते तयोर्वार्ताऽपि, त्वं तु मम यजमानतस्य पुत्रीति स्वपुत्रीव्मयैव सह नीता वर्द्धयसे च। अहह !.....वारंवारम् बालैव सुन्दरकन्याविक्रयव्यसनिभिर्यवनवराकैरपह्रियसे।'

व्यास जी ने एकत्र वात्सल्य रस का भी अत्यन्त हृदयग्राही वर्णन किया है। डाकुओं के चंगुल में फंसे हुए गौरसिंह और श्यामसिंह अपनी भगिनी के विषय में सोचते हैं–

'हन्त! हत भाग्या सा बालिका, या अस्मिन्नेव वयसि पितृभ्यां परित्यक्ता, आवयवोरपि अदर्शनेन क्रन्दनैः कदर्थयति। अहह ! सततमस्मत्क्रोडैकक्रीडनिकाम्, सततमस्मन्मुखचन्द्रचकोरीम्, सततमस्मत् कण्ठरत्नमालाम् सततमस्मन्सह भोजनीम्.....'

इस प्रकार पं० अम्बिकादत्त व्यास के द्वारा रसों की योजना अत्यन्त परिपक्व और साधिकार है, मुख्यतः वीररस का चित्रण करते समय इसमें सभी रस वर्णन यत्किञ्चिद् रूप में उपलब्ध होते हैं।

1.3 प्रथमनिश्वासानुसार तत्कालीन भारतवर्ष की दशा का वर्णन

संस्कृत गद्य काव्य में गद्य की अनेक विधाएँ निहित हैं और विविध भावों के वर्णन का भी समन्वय है। किन्तु शिवराजविजय के पूर्व जिन आख्यानों या कथाओं का वर्णन मिलता है, वे या तो चरित्र प्रधान हैं या दृश्य (बिम्ब) प्रधान। शिवराजविजय एकमात्र ऐसा उपन्यास है, जिसमें तत्कालीन भारतवर्ष की परिस्थितियों और चरित्रों का समग्र रूप से वर्णन किया गया है। 'साहित्य समाज का दर्पण होता है' शिवराजविजय इस कथन की कसौटी पर खरा उतरता है।

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास ने शिवराजविजय में मुगलकालीन समाज का सुन्दर चित्रण किया है। उस समय राजा अकर्मण्य विलासी और विद्वेषी थे। हिन्दू जाति मुसलमानों के अत्याचार से पीडित थी। दूसरी ओर मुसलमानों का साम्राज्य भारत में निरन्तर बढ़ता जा रहा था और उसके साथ-साथ ही मुसलमान हिन्दू कन्याओं के अपहरण और मूर्तियों के विध्वंस, पवित्र धर्म ग्रन्थों के विनाश और अनाथ हिन्दूओं के प्रपीडन को अपना कर्तव्य समझते थे। हिन्दू राजा मुसलमान शासकों की दासता स्वीकार कर उनकी प्रशंसा में रत थे और उनकी कृपा पर जीवित थे।

ऐसी विषम परिस्थिति में महाराष्ट्राधीश्वर वीर शिवाजी ने अपने शौर्य, पराक्रम और सदाचरण द्वारा हिन्दू जनता और हिन्दूत्व की रक्षा की तथा हिन्दूओं के अस्तंगत शौर्य को बड़ी कुशलता और वीरता से पुनर्जागृत किया। उन्होंने देशभक्ति, राष्ट्रभक्ति आत्मविश्वास, स्वधर्मानुराग एवम् मातृभूमि की सेवा-भाव का हिन्दू जनता में सञ्चार किया।

अति अनीति की पराजय सर्वदा होती है। जिस विलासिता और व्यसन के कारण हिन्दू राजाओं का पतन हुआ उसी विलास और भोगप्राचुर्य के कारण मुस्लिम शासकों का भी पराभव हुआ। हिन्दूओं पर उनका अत्याचार अपनी चरम

सीमा पर पहुँच चुका था। उनके अत्याचारों का वर्णन करते हुए व्यास जी कहते है–

'... क्वचिद्दारा अपह्रियन्ते, क्वचिद्धनानि लुण्ठयन्ते, क्वचिदार्तनादाः, क्वचिद्रुधिरधाराः, क्वचिदग्निदाहः, श्रूयते अवलोक्यते च परितः।'

मुसलमान शासक इतने मदान्वित और विलासी प्रवृत्ति के हो चुके थे कि अफजल खाँ भी जो वीर शिवाजी जैसे शक्तिशाली और सर्वसमर्थ राजा को पराजित करने की प्रतिज्ञा विजयपुर नरेश के सामने करके आया था, सदैव भोग विलास और नशे में चूर रहता था। जिसका वर्णन करते हुये व्यास जी कहते हैं–

'सप्रौढ़ि विजयपुराधीशमहासभायां प्रतिज्ञाय समायातोऽपि शिवप्रतापञ्च विदन्नपि अद्य नृत्यम्, अद्य लास्यम्, अद्य सद्यम्, अद्य वाराङ्गना, अद्य भ्रुकुंसकः, अद्य वीणावादनम् इति स्वच्छन्दै-रुच्छृङ्खलाचरणैर्दिनानि गमयतिङ्क'

इसी का परिणाम था कि गायक (गौरसिंह) के समक्ष अफजल खाँ सगर्व अपनी भावी गोप्य योजना (शिववीर को सन्धिव्याज से पकड़ने) की घोषणा स्पष्ट रूप से कर देता है। इस प्रकार तत्कालीन मुस्लिम राजाओं में उसी वृत्ति का सञ्चार हो रहा था जिसके कारण हिन्दू राजाओं की पराजय हुई थी। उस समय हिन्दू राजाओं में आपसी वैरभाव बढ़ा हुआ था, वेश्याओं और मदिरा के चक्कर में अपनी सम्पत्ति नष्ट कर चुके थे, मिथ्या प्रशंसा करने वाले चाटुकारों को ही सबसे निकट और हितैषी समझते थे और स्वार्थ की वृत्ति सर्वोपरि हो चुकी थी। इसी कारण तो भारतवर्ष सैकड़ों वर्ष तक पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा रहा। इसका वर्णन करते हुए व्यास जी कहते हैं।

'शनैः शनैः पारस्परिक विरोध-विशिथिलीकृत-स्नेहबन्धनेषु राजसु, भामिनी भ्रूभङ्ग-भूरिभाव-प्रभाव-पराभूतवैभवेषु भटेषु, स्वार्थचिन्तासन्तानवितानैकतानेषु अमात्यवर्गेषु प्रशंसामात्रप्रियेषु प्रभुषु'। 'इन्द्रस्त्वं कुबेरस्त्वं वरुणस्त्वमिति वर्णनमात्रसक्तेषु।'

किन्तु महाराष्ट्राधीश्वर, वीर शिवाजी उन हिन्दू राजाओं में अपवाद रूप थे; न तो उनमें उक्त प्रकार की कमजोरी थी और न ही स्वार्थलिप्सा। वे एक वीर, पराक्रमी, राजनीति-पारंगत एवं कुशल प्रशासक थे। उनकी क्षमता, व्यूहरचना, ओजस्विता एवं धीरता अपूर्व थी। इसी कारण विशाल सेना वाले मुस्लिम शासक के विरुद्ध उन्होंने विजय प्राप्त की। उनके गुप्तचर गौरसिंह द्वारा उसका वर्णन करते हुए कहता है–

'भगवन्! सर्वं सुसिद्धम्, प्रतिगव्यूत्यन्तरालमङ्गीकृतसनातनधर्मरक्षामहाव्रतानां धारितमुनिवेषाणां वीरवराणामाश्रमाः सन्ति। प्रत्याश्रमञ्च वलीकेषु गोपयित्वा स्थापिताः परश्शताः खड्गाः, पटलेषु तिरोभाविता शक्तयः कुशपुञ्जान्तः स्थापिताः भुशुण्डयश्च समुल्लसन्ति। उञ्छस्य शिलस्य, समिदाहरणस्य, इङ्गुदीपर्यन्वेषणस्य, भूर्जपत्रपरिमार्गणस्य, कुसुमावचयनस्य तीर्थाटनस्य सत्सङ्गस्य च व्याजेन केचन जटिलाः, परे मुण्डिनः इतरे काषायिणः, अन्ये मौनिनः, अपरे ब्रह्मचारिणश्च बहवः पटवो वटवश्चराः, सञ्चरन्ति। विजयपुरादुड्डीयात्रागच्छन्त्या मक्षिकाया अप्यन्तः स्थितं वयं विद्मः, कि नाम एषां यवन-हतकानाम्।'

वीर शिवाजी सदैव योग्य और विश्वस्त व्यक्ति को ही गुप्तचर के रूप में नियुक्त करते थे। गुप्तचर की निपुणता, कार्यक्षमता, विश्वसनीयता और गम्भीरता आदि की परीक्षा लेने के बाद ही राजपक्ष के लोग गुप्तचरों को रहस्य की बातें बताते थे, केवल गुप्तचर होने मात्र से न तो उनकी सन्तुष्टि हो पाती थी और न ही वे उन्हें गुप्त सन्देशों के कहने योग्य समझते थे। तोरण दुर्ग का अध्यक्ष शिवाजी के गुप्तचर की परीक्षा लेकर ही उसे रहस्य की बात बताने के लिये तैयार होता है–

'नैतेषु विषयेषु कदापि सतन्द्रोऽवतिष्ठते महाराजः, स सदा योग्यमेव जनं पदेषु नियुनक्ति, नूनं बालोप्येषोऽबालहृदयोऽस्ति, तदस्मै कथयिष्याम्यखिलं वृतान्तम्, पत्रं च केषुचिद् विषयेषु समर्पयिष्यामि।'

गौरसिंह गुप्तचर का कार्य करते हुये कभी ब्रह्मचारी बनता है तो, कभी संन्यासी; कभी गायक बनता है तो कभी उत्कट योद्धा । और सर्वत्र अपना कार्य बड़ी कुशलता से करता है। दूसरी ओर शिवाजी के द्वारा नियुक्त सभी कर्मचारी अपना कार्य अत्यन्त निष्ठा विश्वास और स्वामिहित भावना से करते थे। वे किसी के बहकावे या उत्कोच आदि के प्रलोभन में नहीं आते थे। स्वामी की आज्ञा के सामने ब्रह्मा तक के आदेश मानने को तैयार नहीं होते थे। स्वामी का आदेश ही उनके लिये ब्रह्मा का आदेश होता था। इसी प्रकार के आचरण की एक द्वारपाल की उक्ति द्रष्टव्य है–

'संन्यासिन्! संन्यासिन्! ! बहूक्तम्, विरम न वयं दौवारिका ब्रह्मणोप्याज्ञां प्रतीक्षामहे। किन्तु यो वैदिकधर्मरक्षाव्रती, यश्च संन्यासिनां ब्रह्मचारिणां तपस्विनाञ्च, संन्यासस्य ब्रह्मचर्यस्य तपसश्चान्तरायाणां हन्ता, येन च वीरप्रसविनीयमुच्यते कोङ्कणदेशभूमिः तस्यैव महाराजशिववीरस्याऽऽज्ञां वयं शिरसा वहामः।'

महाराज शिवाजी एक स्वाभिमानी शासक थे। अपने शत्रु मुगल शासको से सन्धि करना या उनकी अधीनता स्वीकार करना उन्हें स्वीकार न था। इस स्थिति में शत्रुओं से रक्षा का एकमात्र उपाय युद्ध ही था। शत्रु से सन्धि करने की अपेक्षा अपने प्राणों को उत्सर्ग कर देना वे कहीं अधिक श्रेयष्कर समझते थे। अपने इन विचारों पर सदैव दृढ़ रहे। शिवाजी के हृदय में यवनों से प्रतिशोध लेने की भावना कितनी प्रबल थी इसका एक सुन्दर उदाहरण देखिये–

'ये अस्मादिष्टदेव मूर्तीभङ्त्वा मन्दिराणि समुन्मूल्य तीर्थस्थानानि पक्वणी कृत्य, पुराणानि पिष्ट्वा वेद पुस्तकानि विदीर्य च आर्यवंशीयान् वलाद्यवनी–कुर्वन्ति; तेषामेव चरणयोरञ्जलिं बद्ध्वा लालाटिकतामङ्गी कुर्याम्? एवं चेद् धिक् मां कुलकलङ्क्लीबम्। या प्राणभयेन सनातनधर्मद्वेषिणां दासे ता वहेत्। यदि चाहमाहवे म्रियेय, बध्येय, ताडयेय वा तदैव धन्योऽहम् धन्यौ च मम पितरौ। कथ्यतां भावदृशां विदुषामत्र कः सम्मतिः?'

इस प्रकार व्यास जी ने तत्कालीन भारत की सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का सम्यक् चित्रण किया है। जिससे 'साहित्य समाज का दर्पण होता है' कि उक्ति पूर्णतः चरितार्थ होती है।

1.4 पात्र चरित्र–चित्रण –

उपन्यास में चरित्र–चित्रण का विशेष स्थान होता है। काव्य की सफलता अधिकांश रूप में चरित्र–चित्रण पर निर्भर होती है। पण्डित अम्बिकादत्त व्यास अपने शिवराजविजय में सभी पात्रों के चरित्राङ्कन में विशेष सफल हुए हैं। उनके सभी पात्र जीवन्त एवं प्रभावी हैं। व्यास जी के चरित्रांकन की विशेषता यह रही है कि जिसे जैसा होना चाहिए, उसे वैसा ही वर्णित किया है; जबकि बाण ने 'भवितव्य' का बहुत अधिक बढ़ा–चढ़ाकर चित्रण किया है। अतः बाण जैसी अस्वाभाविकता व्यास जी के चित्रण में नहीं है। इनके सभी पात्रों का चित्रण अत्यन्त स्वाभाविक है।

आश्रमवासी ब्रह्मचारी गुरु, गौरबटु तथा योगिराज आदि का वर्णन अत्यन्त सरल एवं स्पष्ट है। महाराष्ट्र केसरी वीर शिवाजी रघुवीर सिंह तथा अफजल खाँ आदि के चित्रण में व्यासजी ने अत्यन्त वास्तविकता और स्वाभाविकता का आश्रम लिया है, कहीं पर भी कृत्रिमता का पुट नहीं है। जो जैसा था उसका वैसा ही चित्रण किया। यही उनकी विशेषता है।

1.4.1 वीर शिवाजी

वीर शिवाजी स्वधर्म रक्षा के व्रती राजनीति में निष्णात तथा भारतीय आदर्शों और संस्कृति के प्रतिनिधि हैं। सनातन धर्म की रक्षा के लिये अपने प्राणों की बाजी लगाने को तैयार रहते थे। उनका शौर्य, पराक्रम देखिये – **'कथं वा आगत एषः शिववीरः इति भ्रमेणापि सम्भाव्य अस्य विरोधिषु केचन मूर्च्छिता निपतन्ति, अन्ये विस्मृतशस्त्रास्त्राः पलायन्ते, इतरे महात्रासाकुञ्चितोदरा विशिथिलवाससो नग्ना भवन्ति अपरे च शुष्कमुखा दशनेषु तृणं सन्धाय साम्रेडं प्रणिपातपरम्परां रचयन्तो जीवनं याचन्ते।'**

शिववीर में अपने देश के प्रति प्रेम था, गर्व था। उसकी रक्षा के लिये प्राणपण से सन्नद्ध रहते थे। इस भावना का अत्यन्त सुन्दर चित्रण व्यास जी ने किया है–

'शिववीरः– भारतवर्षीया यूयम्, तत्रापि महोच्चकुलजाताः, अस्ति चेदं भारतवर्षम् भवति च स्वाभाविक एवानुरागः सर्वस्यापि स्वदेशे, पवित्रतमश्च यौष्माकीणः सनातनो धर्मः, तमेते जाल्मा समूलमुच्छिन्दन्ति। अस्ति च 'प्राणाः यान्तु न च धर्मः' इत्यार्याणां दृढ़ः सिद्धान्तः।'

1.4.2 अफजल खाँ

दूसरी ओर मुगल शासकों की परम्पराओं से घिरे हुए सेनापति अफजल खाँ का चरित्र स्वाभाविक तथा सत्य रूप में चित्रित किया है। अन्य शासकों के समान वह भी विलासी, अदूरदर्शी, आत्मश्लाघी तथा सूक्ष्म राजनीतिक कलाबाजियों से अनभिज्ञ है। व्यास जी ने उसके चरित्र को अत्यन्त रोचक ढंग से चित्रित किया है। वह मद के वशीभूत हुआ अपनी योजना को गोप्य नहीं रख पाता और कह उठता है–

'इति कथयति तानरङ्ग, अभिमान परवशः स स्वसहचरान् सम्बोध्य पुनरादिशत् भो भो योद्धारः! सूर्योदयात् प्रागेव भवन्तः पञ्चापि सहस्त्राणि सादिनां दशापि च सहस्त्राणि पत्तीनं सज्जीकृत्य युद्धाय तिष्ठत। गोपीनाथपण्डित द्वारा ऽऽहूतोस्ति मया शिव वराकः। तद् यदि विश्वस्य स समागच्छेत्, ततस्तु बद्ध्वा जीवन्तं नेष्यामः, अन्यथा तु सदुर्गमेनं धूलीकरिष्यामः।

व्यास जी ने अफजल खाँ के सैनिकों की कायरता, भयाकुलता तथा अत्याचारों को भी ऐतिहासिक तथ्यों के अनुकूल काव्यात्मक ढङ्ग से चित्रित किया है–

'वयं बलिनः आस्माकीना महती सेना, तथाऽपि न जानीमः किमिति कम्पत इव क्षुभ्यतीव च हृदयम्!यवनानां पराजयो भविष्यति अफजलखानो विनङ्क्ष्यति न विद्मः को जपतीव कर्णे, लिखतीव सम्मुखे, क्षिपतीव चान्तःकरणे।'

1.4.3 गौर सिंह

शिवाजी के लिये गुप्तचर का कार्य करने वाला, गौरसिंह अच्छा सुभट है, राजनीति में प्रवीण है, योद्धाओं में अग्रणी है, वेष–परिवर्तन में निपुण है तथा अपने कार्य में दृढ़, अनालस एवं सतत सजग है। गौरसिंह वीरता के साथ अपहृत बालिका को यवनों से छीनता है, बड़े चातुर्य से शिववीर के द्वारपाल की परीक्षा करता है तथा अफजल खाँ के शिविर में जाकर बड़ी पटुता से उसकी भावी योजना की जानकारी करता है और शिवाजी की प्रशंसा भी कर आता है। शिवाजी के दिये गये कार्य का बड़ी बुद्धिमत्ता से सम्पादन करता है। दो–दो कोस की दूरी पर आश्रमों की स्थापना तथा विविध वेषधारी तपस्वियों के माध्यम से औरङ्गजेब तथा उसके सेनापति की प्रत्येक गतिविधियों की जानकारी कर लेता है, जिससे उसकी राजनीतिक चेतना का परिचय मिलता है।

अन्य जितने भी उपन्यास के पात्र हैं, उन सभी का चरित्र व्यास जी ने अपनी प्रातिभ लेखनी से अत्यन्त जीवन्त रूप में चित्रित किया है। न कहीं न्यूनता है, न कहीं अधिकता; न कहीं स्वाभाविकता का अभाव है और न कहीं कृत्रिमता का आधान।

इस प्रकार पण्डित अम्बिकादत्त व्यास का शिवराजविजय वर्ण्य पात्रों के चरित्राङ्कन तथा विषयवस्तु की दृष्टि से अपनी काव्यात्मक विधा पर खरा उतरता है। और निश्चित रूप से संस्कृत गद्य साहित्य में उसका अपना एक विशिष्ट

स्थान है, जो अन्य किसी काव्य को प्राप्त नहीं है। इस ऐतिहासिक उपन्यास की अपनी निजी विशेषतायें हैं, जो उसको उत्कृष्टता के शिखर पर पहुँचा देती हैं। शिवराजविजय भारतीय गौरव, संस्कृत-भाषा-वैशिष्ट्य तथा कवि के उत्कृष्ट कवित्व का प्रतीक है।

1.5 बोधप्रश्न -

(1) शैली या रीति के चार भेद लिखिये।

(2) 'शिवराजविजय' को किस प्रकार का काव्य माना गया है?

(3) 'शिवराजविजय' के किन्हीं पाँच चरित्रों (पात्रों) के नाम लिखें।

(4) शिवराजविजय में भारतवर्ष की कौन से ऐतिहासिक कालखण्ड की दशा का यथार्थ चित्रण किया गया है?

(5) अतिसंक्षेप में गौरसिंह का चरित्र-वर्णन कीजिये।

1.6 उपयोगी पुस्तकें -

(1) शिवराजविजय (1-2 निश्वास) - चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।

(2) संस्कृत साहित्य का इतिहास, राजस्थानी ग्रन्थागार जोधपुर।

(3) संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, चन्द्रशेखर पाण्डेय तथा नानूराम व्यास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।

(4) संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

(1) द्रष्टव्य 1.2.1 में।

(2) द्रष्टव्य 1.1 में।

(3) द्रष्टव्य 1.4 में।

(4) द्रष्टव्य 1.3 में।

(5) द्रष्टव्य 1.4 में।

इकाई–2

शिवराजविजयः (प्रथमनिश्वासः)

प्रथम निश्वास के प्रारम्भ से ''..... न पारितं निरोद्धुं नयनवाष्पाणि।'' पर्यन्त अंश का हिन्दी में सप्रसङ्ग अनुवाद, व्याकरण–सम्बन्धी टिप्पणी तथा गद्य शैली की विशेषता

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 ''विष्णोर्भाया भगवती.....से आरम्भ कर गौरबटुमेवमवादीत्'' पर्यन्त

2.3 ''अलं भोः अलं.....से आरम्भ कर चकिता इव सञ्जाताः'' पर्यन्त

2.4 ''अथ योगिराज.....से आरम्भ कर निरोद्धुं नयनवाष्पाणि'' पर्यन्त

2.5 बोध–प्रश्न

2.6 उपयोगी पुस्तकें

2.7 बोध–प्रश्नों के उत्तर

2.0 उद्देश्य –

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से छात्र काव्यामृत का रसास्वादन तो करेंगे ही, साथ ही संस्कृत के एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास के रूप में आधुनिक संस्कृत–गद्य की एक झलक भी देख सकेंगे। यहाँ छात्रों के आकर्षण और उन्हें उत्तरोत्तर अध्ययनार्थ प्रेरित करने के लिए रहस्य, रोमाञ्च, विस्मय आदि तत्त्व भी पर्याप्त मात्रा में उपस्थित मिलेंगे।

2.1 प्रस्तावना –

आधुनिक युग के प्रमुख गद्यकार पं. अम्बिकादत्त व्यास हैं, जिन्होंने छत्रपति शिवाजी के जीवन को आधार बनाकर 'शिवराजविजय' की रचना की। यह ग्रन्थ सर्वप्रथम सन् 1901 में प्रकाशित हुआ। व्यास जी का गद्य दण्डी, सुबन्धु और बाणभट्ट – इन तीनों से प्रभावित है। इनकी औपन्यासिकता पाश्चात्य तथा बंग्ला उपन्यासों से बहुत प्रभावित है। यह एक घटनाप्रधान काव्य है, जिसमें कवि का आग्रह विशेष वर्णन पर न होकर घटनाओं के वैविध्य पर है। घटनायें अधिकांश में वास्तविक हैं, कल्पित नहीं। लगता है कि बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय जैसे बंगाली कवियों ने जिस उद्देश्य को सामने रखकर 'आनन्दमठ' सदृश कृति की रचना की होगी, उसी उद्देश्य को मन में रखकर संस्कृत कवि पं.अम्बिकादत्त ने 'शिवराजविजय' का सर्जन किया है।

वस्तुतः यह धर्म–संस्कृति के ध्वंस की कुचेष्टाओं के प्रति विद्रोह का काव्य है, भारत के गौरव का स्मारक है, राष्ट्र की जयचेतना का मन्त्रोच्चार है, गुलामी की मुखालफत का शंखनाद है और राष्ट्रीय अस्मिता व स्वाभिमान के जागरण का गीत है।

इसकी रचना का उद्देश्य मात्र यशः प्राप्ति, अर्थप्राप्ति आदि नहीं है, किन्तु परम्परागत काव्यप्रयोजनों 'काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये' इत्यादि के साथ–साथ देश, जाति व धर्म के गौरव की प्रतिष्ठा और इससे जनमानस को आप्लावित करना ही शिवराजविजय का प्रमुख लक्ष्य है। पं. अम्बिकादत्त व्यास ने स्वयं लिखा भी है

– **'परं मया तु सनातनधर्मधूर्वह–शिवराजवर्णनेन रशनापावितैव, प्रसंगतः सदुपदेशनिर्देशः स्वब्राह्मण्यं सफलितमेव, ऐतिहासिककाव्यरु चीनि स्वमित्राणि रञ्जितान्ये....।'**

2.2 ''विष्णोर्भाया भगवती.....से आरम्भ कर गौरबटुमेवमवादीत्'' पर्यन्त

'विष्णोर्माया भगवती यया सम्मोहितञ्जगत्'। (भागवतम् 10। 1। 25)

'हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः साधुः समत्वेन भयाद्विमुच्यते'। (भागवतम् 10। 7। 31)

प्रसङ्ग – यहाँ पर कवि ग्रन्थारम्भ में मङ्गलाचरण कर रहे हैं –

अनुवाद – जिसके द्वारा समस्त संसार मोह (बन्धन) में डाल दिया गया है, विष्णु की वह माया परमैश्वर्यशाली है। हिंसक (बिना कारण हिंसा या दुष्टाचरण करने वाला) अपने पाप (दुष्कर्म) से ही मारा जाता है तथा सज्जन अपनी समत्वबुद्धि के कारण बच जाता है।

व्याख्या– विष्णोः = विष्णु की, वेवेष्टिचराचरात्मकं प्रपञ्चमिति विष्णुः तस्य। भगवान् विष्णु अखिल चराचर जगत् में व्याप्त हैं। **माया** = ब्रह्म की शक्ति, सत्त्व प्रधान शक्ति माया सम्पूर्ण जगत् को मोहित करने वाली है। **भगवती** = ऐश्वर्यशालिनी, भग+मतुप्+ङीप् (अस्ति अर्थ में मतुप् प्रत्यय)। **भग** = भग कहते हैं–ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा। **यया** = जिस माया के द्वारा। **जगत्** = संसार, **गच्छतीति** = जो निरन्तर क्रियाशील या गतिशील है, वह जगत् है। **सम्मोहितम्** = सम्मोहित है अर्थात् यह सारा संसार ब्रह्म की माया से सम्मोहित (मोहग्रस्त) है, क्योंकि माया ऐश्वर्यशालिनी है और ऐश्वर्यमूलक ही मोह है। **हिंस्रः** = हिंसक। **स्वपापेन** = अपने पाप से। **विहिंसितः** = मारा जाता है, 'भवति' का अध्याहार कर लेने पर अर्थ विशेष संगत हो जाता है (विहिंसितो भवति)। **खलः** = दुष्ट। **साधुः** = सज्जन, साहनोति परकार्यमिति साधुः। **समत्वेन** = समत्व बुद्धि से अर्थात् रागद्वेषादि भावना से विरहित होकर। **भयाद्** = भय से। **विमुच्यते** = मुक्त हो जाता है।

अरुण एष प्रकाशः पूर्वस्यां भगवतो मरीचिमालिनः। एष भगवान् मणिराकाशमण्डलस्य, चक्रवर्ती खेचरचक्रस्य, कुण्डलमाखमण्डलदिशः, दीपको ब्रह्माण्डभाण्डस्य, प्रेयान् पुण्डरीकपटलस्य, शोकविमोकः कोकलोकस्य, अवलम्बो रोलम्बकदम्बस्य, सूत्रधारः सर्वव्यवहारस्य, इनश्च दिनस्य। अयमेव अहोरात्रं जनयति, अयमेव वत्सरं द्वादशसु भागेषु विभनक्ति अयमेव कारणं षण्णामृतूनाम्, एष एवाङ्गीकरोति उत्तरं दक्षिणं चायनम्, एनेनैव सम्पादिता युगभेदाः, एनेनैव कृताः कल्पभेदाः, एनमेवाऽऽश्रित्य भवति परमेष्ठिनः परार्द्धसङ्ख्या, असावेव चर्कर्ति बर्भर्ति जर्हर्ति च जगत्, वेदा एतस्यैव वन्दिनः, गायत्री अमुमेव गायति, ब्रह्मनिष्ठा ब्राह्मणा अमुमेवाहरहरुपतिष्ठन्ते। धन्य एष कुलमूलं श्रीरामचन्द्रस्य, प्रणम्य एष विश्वेषामिति उदेष्यन्तं भास्वन्तं प्रणमन् निजपर्णकुटीरात् निश्चक्राम कश्चित् गुरुसेवनपटुर्विप्रवटुः।

प्रसङ्ग – यहाँ एक सुप्तोत्थित ब्रह्मचारी के मुख से उदीयमान भगवान् भास्कर का स्वाभाविक वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है–

अनुवाद – पूर्व की दिशा में, यह रक्ताभा (लालिमा) भगवान् भास्कर (सूर्य) की है। यह भगवान् भास्कर (सूर्य) गगनमण्डल के रत्न, नक्षत्र समूह के सम्राट, पूर्व दिशा (इन्द्र की दिशा) रूपी नायिका के कुण्डल (कर्णाभूषण), ब्रह्माण्ड रूपी घर के दीपक, कमल (श्वेत कमल) समूह के अति प्रिय, चकवा–चकवी के शोक को विनष्ट करने वाले, भ्रमरों के सुखाधार (आश्रय), संसार की समस्त क्रियाओं के संचालक और दिन के स्वामी हैं। यही (सूर्य भगवान्) दिन तथा रात्रि के कर्त्ता हैं, यही वर्ष को बारह भागों (माह) में विभक्त करते हैं, यही छः ऋतुओं के जनक हैं, यही (सूर्य) उत्तर तथा दक्षिण (उत्तरायण, दक्षिणायन) मार्ग को स्वीकार करते हैं, इन्होंने युगों (सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग) का विभाग किया है, इन्होंने कल्पों का बँटवारा (विभाग) किया है, इन्हीं (भास्कर) का आश्रय प्राप्त करके ब्रह्मा की परार्द्ध संख्या पूर्ण होती है, सूर्यदेव ही पुनः–पुनः संसार की उत्पत्ति, पालन–पोषण और संहार (विनाश) करते हैं, वेद इनकी ही स्तुति किया करते हैं, गायत्री इनका ही गान (गुणगान) किया करती हैं,

ब्रह्मनिष्ठ (आस्तिक) ब्राह्मण इनकी (सूर्य की) उपासना किया करते हैं, यह श्रीरामचन्द्र के वंश के बीज (मूल) सूर्यदेव धन्य हैं, इन सब के लिये वन्दनीय हैं, इस भाँति विचार कर उगते (उदय) हुए सूर्य को नमन करता हुआ, गुरु सेवा में दक्ष कोई ब्राह्मण बालक अपनी कुटिया (पर्णशाला) से बाहर आया।

व्याख्या–भगवतः- भगः ऐश्वर्यम् अस्ति अस्य, तस्य। भग+मतुप् (षष्ठी एकवचन)। भग अर्थात् ऐश्वर्य जिसके पास हो। **'मरीचिमालिनः'** = मरीचीनां मालाऽस्यास्तीति, तस्य। मरीचिमाला+णिनि (षष्ठी एकवचन)। मरीचि अर्थात् किरणों की माला वाला सूर्य। **खेचरचक्रस्य** = खे आकाशे चरतीति खेचराः। सप्तमी विभक्ति का अलुक् चर्+अच्', खेचर–आकाश में विचरण (भ्रमण) करने वाले। खेचराणाम् चक्रः, तस्य। **खेचरचक्रस्य** = नक्षत्र समूह का। **आखण्डलदिशः** = आखण्डलस्य दिक्, तस्य (षष्ठी तत्पु०)। **आखण्डल** = इन्द्र से सम्बन्धित, **दिशः** = दिशा का। **ब्रह्माण्डभाण्डस्य** ब्रह्माण्डमेव भाण्डम्, तस्य। ब्रह्माण्ड रूपी घर का। **प्रेयान्** = अतिशयेन प्रियः, प्रिय+इयसुन्, अधिक प्रिय। **पुण्डरीकपटलस्य** = पुण्डरीकाणां पटलस्य, कमलों के समूह का। **रोलम्बकदम्बस्य** = रोलम्बानाम् कदम्बः, तस्य (षष्ठी तत्पु०), रोलम्ब=भ्रमर, कदम्ब=समूह। **सर्वव्यवहारस्य** = ऐहिक और आमुष्मिक सभी प्रकार के कार्यों का। **इनः** = स्वामी या सूर्य, 'इनः सूर्ये प्रभौ च' इत्यमरः। **अहोरात्रम्** = अहश्च रात्रिश्च अहोरात्रम् (समा० द्वन्द, नपुं०), रात्रि और दिन। **कल्पभेदाः** = कल्पानां भेदाः, कल्पों के भेद, एकसहस्त्र युग की काल सीमा को कल्प कहते है। **चर्कर्ति** = पुनः पुनः करोति के अर्थ को सूचित करने के लिये, कृ+यङ् (लुक्)लट् प्र० पु०, ए० व० का रूप है। **बर्भर्ति** = पुनः पुनः के अर्थ में , भृञ्+यङ् (लुक्)+लट् (प्र० पु०, ए० व०), पुनः पुनः धारण या पोषण करता है। **जर्हर्ति** = बार–बार नष्ट करता है, हृ+यङ् (लुक्)+लट् (प्रथम पुरुष एकवचन)। **उपतिष्ठन्ते** = उप+ स्था (पूजा करना)+लट् (आत्मनेपद)। **प्रणम्य** = प्रणाम करने योग्य, प्र+नम्+यत्। **भास्वन्तम्** = सूर्य को, 'भास्वद्विवस्वत्सप्ताश्वहरिदश्वोष्णरश्मयः' इत्यमरः। **प्रणमन्** = प्रणाम करता हुआ, प्र+नम्+शतृ। निजपर्णकुटीरात् = निजस्य पर्णानां कुटीरः तस्मात्, अपनी छोटी कुटी से। ह्रस्वकुटी को कुटीर कहते हैं, कुटी + र, कुटी शर्मा शुण्डाम्योरः'। **गुरुसेवनपटुः** = गुरोः सेवने पटुः, गुरु सेवा में दक्ष। **विप्रबटुः** = ब्राह्मण पुत्र।

अलंकार – प्रस्तुत अंश में मालालङ्कार तथा स्वभावोक्ति अलंकार है। सर्वत्र प्रसाद गुण और वैदर्भी रीति है।

''अहो! चिररात्राय सुप्तोऽहम्, स्वप्नजालपरतन्त्रेणैव महान् पुण्यमयः समयोऽतिवाहितः, सन्ध्योपासन–समयोऽयमस्मद्गुरुचरणानाम्, तत्सपदि अव–चिनोमि कुसुमानि'' इति चिन्तयन् कदलीदलमेकमाकुञ्च्य, तृणशकलैः सन्धाय, पुटकं विधाय, पुष्पावचयं कर्त्तुमारेभे।

प्रसङ्ग – यहाँ सुप्तोत्थित शिष्य द्वारा गुरु के लिए पूजार्थ पुष्प चुनने का वर्णन किया जा रहा है –

अनुवाद –''ओह! (खेद सहित), (प्रातः काल में) बहुत देर तक मैं सोता रहा हूँ। निद्रा रूप जाल के वशीभूत होकर मैंने अत्यन्त पुण्य (मूल्यवान) समय निकाल दिया है। यह तो हमारे गुरुजी की सन्ध्योपासना की बेला है, तब शीघ्र कुसुम (पूजा के लिये) चुन लाऊँ'' यह विचार करता हुआ वह (शिष्य) केले के एक पत्ते को मोड़कर, तिनकों के टुकड़ों से जोड़कर दोना बनाकर पुष्प चुनने (तोड़ने) लगा।

व्याख्या– अहो = आश्चर्ययुक्त खेद! नित्यनैमित्तिक कर्मानुष्ठान की वेला समाप्त हो जाने से खेद व्यक्त कर रहा है। **चिररात्राय** = अधिक देर तक, 'चिराय चिररात्राय चिरस्याद्याश्चिरार्थकाः' इत्यमरः। **स्वप्नजालपरतन्त्रेण** = निद्रारूपी जाल में फंसकर, **पुण्यमयः**= पुण्य+मयट्, ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्(मनुस्मृति)। **अतिवाहितः**= व्यतीत कर दिया। **गुरुचरणानाम्** = गुरु जी का, पूजार्थक बहुवचन। **सपदि** = शीघ्र ही। **अवचिनोमि** = तोड़ता हूँ, अव+ चिनु+लट्। **चिन्तयन्** = चिन्त+शतृ (विचारता हुआ)। **तृणशकलैः** = तृण के टुकड़ों से, तृणानां शकलानि तैः। **सन्धाय** = संयोजित करके, सम्+धा+ल्यप् । **पुटकम्** = दोना। आरेभे= आरम्भ किया, आ+रम्भ+लट् (तिप्)।

समास–स्वप्नजालपरतन्त्रेण–स्वप्न एव जालं–स्वप्नजालं; परः तन्त्रं परतन्त्रं, स्वप्न जालेन परतन्त्रः तेन (बहु०) पुष्पावचयम्–पुष्पाणां अवचयः (तत्पु०)।

बटुरसौ आकृत्या सुन्दरः, वर्णेन गौरः, जटाभिर्ब्रह्मचारी, वयसा षोडशवर्षदेशीयः कम्बुकण्ठः, आयतललाटः,

सुबाहु :विशाललोचनश्चाऽऽसीत्।

प्रसंग–उस ब्रह्मचारी बालक की सुन्दराकृति का मनोरम शब्दचित्र खींचा गया है–

अनुवाद–वह ब्राह्मण बालक आकृति से सुन्दर (मनोहराकृति), गौर वर्ण, लम्बी जटाओं (केशराशि) से ब्रह्मचारी दिखाई पड़ने वाला, उम्र में लगभग सोलह वर्षीय किशोर, शङ्ख सदृश ग्रीवा वाला, चौड़े (ऊँचा) मस्तक वाला, पुष्ट (सुन्दर) भुजाओं और विशाल नेत्रों वाला था।

व्याख्या– आकृत्या = आकृति से, 'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' से तृतीया विभक्ति। **वर्णेन** = रंग से, यहाँ भी उक्त नियम से तृतीया। जटाभिः= जटाओं के द्वारा, यहाँ 'इत्थंभूतलक्षणे' से तृतीया विभक्ति, जटा से ब्रह्मचारी प्रतीत होता है। **वयसा** = अवस्था से। **षोडशवर्षदेशीयः** = लगभग सोलह वर्ष की अवस्था वाला, षोडशवर्ष+देशीय (प्रत्यय)। 'ईषदसमाप्तौ कल्पब्देशीयरः'। **कम्बुकण्ठः** = शंख के समान कण्ठ। **आयतललाटः** = विस्तृत मस्तक वाला, आयतः ललाटः यस्य सः (बहुब्रीहि)।

समास– कम्बुकण्ठः – कम्बुः इव कण्ठः यस्य सः (बहु०)। **आयतललाटः** – आयतं ललाटं यस्य सः (बहु०)। **सुबाहुः** – शोभनौ बाहू यस्य सः (बहु०)। **विशाललोचनः** - विशाले लोचने यस्य सः (बहु०)।

टिप्पणी –

(1) कम्बुकण्ठः में लुप्तोपमा अलंकार है।

(2) ब्रह्मचारी के सुन्दर अवयवों का स्वाभाविक एवं उदात्त चित्रण किया गया है, अतः उदात्तालंकार है।

कदलीदलकुञ्जायितस्य एतत्कुटीरस्य समन्तात् पुष्पवाटिका, पूर्वतः परम-पवित्र-पानीयं परस्सहस्रपुण्डरीकपटलपरिलसितं पतत्रिकुल-कूजित-पूजितं पयःपूरितं सर आसीत्। दक्षिणतश्चैको निर्झरझर्झरध्वनिध्वनितदिगन्तरः फलपटलाऽऽस्वादचपलितचञ्चुपतङ्गकुलाऽऽक्रमणाधिकविनत-शाखशाखिसमूहव्याप्तः सुन्दरकन्दरः पर्वतखण्ड आसीत्।

प्रसंग– बालक की कुटी के चारों ओर का प्राकृतिक वर्णन मनोरम शैली में किया जा रहा है।

अनुवाद –केले के सुन्दर वृक्षों (झुरमुट) से चारों ओर से घिरी होने के कारण कुञ्ज सदृश लगने वाली इस पर्णशाला के चारों तरफ पुष्प वाटिका (पुष्पोद्यान) थी। (जिसकी) पूर्व दिशा में अति पवित्र (निर्मल) पानी वाला, सहस्रों श्वेत कमलों से भरा, पक्षी कुल (समूह) के कोलाहाल से सुशोभित जल से किनारों तक भरा हुआ एक सरोवर था। तथा दक्षिण दिशा में झरने की झर–झर ध्वनि से दिग्दिगन्तर को पूरित (शब्दायमान) करने वाली, फलों को खाने से चपल (सतत हिलने वाली) हुई चञ्चुपुट वाले पक्षियों द्वारा फुदक–फुदक कर बैठने से अधिक झुकी हुई शाखाओं वाले पेड़ों से घिरी और सुन्दर गुफाओं वाली एक छोटी–सी पहाड़ी थी।

व्याख्या– कदलीदलकुञ्जायितस्य= कदलीनां दलैः कुञ्जायितस्य कुञ्जमिव भूतस्य (तत्पु०), कदली दलों से घिरे हुए होने के कारण कुञ्ज के समान प्रतीत होने वाले, 'कुञ्जमिव आचरति' इस अर्थ में कुञ्ज से क्यङ् हुआ है– कुञ्ज+क्यङ्+क्त' (कर्तुः क्यङ् सलोपश्च' से) 'क्त' प्रत्यय। **एतत् कुटीरस्य** = इस कुटीर के। **समन्तात्** = चारों ओर। **पूर्वतः** = पूर्व की ओर, पूर्व+तस्, पुंवद्भाव। **परमपवित्रपानीयम्** = परमं पवित्रञ्चासौ पानीयम्, परम पवित्र जल वाला। **परस्सहस्रपुण्डरीकपटलपरिलसितम्** = परस्सहस्राणाम् पुण्डरीकाणां पटलेन परितः लसितम् (तत्पु०), सहस्त्रों श्वेतकमल समूह से सुशोभित। **पतत्रिकुलकूजितपूजितम्** = पतत्रिणाम् कुलस्य कूजितेन पूजितम् (तत्पु०), पक्षियों के कुल के कूजन से युक्त। **पयःपूरितम्** = पयसा पूरितम् जल से भरा हुआ। दक्षिण की ओर 'दक्षिण+तस्'। **निर्झरझर्झरध्वनिध्वनितदिगन्तरः** = निर्झरस्य झर्झरध्वनिना ध्वनितम् दिशाम् अन्तरम् यस्य सः (तत्पु० गर्भ बहुव्रीहि), 'झर्झर' शब्द जलप्रवाह से जनित ध्वनि का अनुकरण है, झरने की झर्झर ध्वनि से मुखरित दिशाओं वाला।
'फलपटलास्वादचपलितचञ्चुपतंग···' इत्यादि = फलानां पटलस्य (समूह के) आस्वादेन चपलिताः चञ्चवः

येषां ते च ते पतंगाः, तेषां कुलस्य आक्रमणेन अधिकं विनताः शाखाः येषां ते च ते शाखिनः, तेषां समूहेन व्याप्तः (बहु० गर्भ तत्पुं०), फलों के समूह के भक्षण से चञ्चल चंचु वाले पक्षिकुल के आक्रमण से अधिक झुकी हुई शाखाओं वाले वृक्षों के समूह से व्याप्त। **पतंग** = पक्षी, 'पतंगौ पक्षि सूर्यौ च' इत्यमरः। **चपलित** = चपल इतच्। विनत= वि+नम्+क्त। शाखिनः='शाखा+इनि' वृक्ष, 'वृक्षो महीरूहः शाखी विटपी पादपस्तरुः' (अमरकोष)। **सुन्दरकन्दरः** = सुन्दर गुफाओं वाला। **पर्वतखण्डः आसीत्** = पहाड़ी थी।

समास-कदलीदलकुञ्जायितस्य – कदलीनां दलैः कुञ्जायितः तस्य (बहु०)। **पुष्पवाटिका** – पुष्पाणां वाटिका (तत्पु०)। **परमपवित्रपानीयम्** – परमं पवित्रं पानीयं यस्य तत् (बहु०)। **परस्सहस्र ..... परिलसितम्**-परस्सहस्रैः पुण्डरीकाणां पटलेन परितः लसितं (तत्पु०)। **पतत्रिकुलकूजितपूजितम्** – पतत्रिणः तेषां कुलं तस्य कूजितेन पूजितम् (तत्पु०)। **निर्झरझरझरध्वनिध्वनितदिगन्तरः** – निर्झरस्य झर-झर ध्वनिः तेन ध्वनितानि दिगन्तराणि येन सः (बहु०)। **फलपटलाऽऽस्वाद ..... समूहप्याप्तः** – फलानां पटलं तस्य आस्वादः, तेन चपलिताः चञ्चवः येषां ते पतङ्गाः तेषां कुलस्य आक्रमणेन अधिकं विनताः शाखाः येषां ते शाखिनः, तेषां समूहेन व्याप्तः (तत्पु०)। **सुन्दरकन्दरः** – सुन्दराः कन्दराः यस्य सः।

यावदेष ब्रह्मचारी बटुरलिपुञ्जं समुद्धूय कुसुमकोरकानवचिनोति; तावत् तस्यैव सतीर्थ्यो-ऽपरस्तत्समानवयाः कस्तूरिका-रेणु रुषित इव श्यामः, चन्दन-चर्चित-भालः, कर्पूरागुरु-क्षोद-च्छुरित-वक्षो-बाहु-दण्डः, सुगन्ध-पटलैरुन्निद्रयन्निव निद्रामन्थराणि कोरक-निकुरम्बकान्तरालसुप्तानि मिलिन्दवृन्दानि झटिति समुपसृत्य निवारयन् गौरबटुमेवमवादीत्।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में दूसरे बालक का, जो श्याम वर्ण का है, चन्दन का तिलक लगाये है, वर्णन किया जा रहा है-

अनुवाद-जैसे ही यह ब्रह्मचारी बालक भ्रमरों को उड़ाकर (फूल पर बैठे भ्रमरों को) पुष्पों की कलियों को चुनने लगा वैसे ही उसका सहपाठी (साथ में पढ़ने वाला), समान उम्र वाला दूसरा ब्रह्मचारी जो कस्तूरी के चूर्ण से लिपा हुआ सा साँवला, ललाट (मस्तक) पर चन्दन लगाये हुए, वक्षःस्थल और भुजाओं पर कपूर मिला अगरु का चूर्ण लगाये-निद्रा से अलसाये (बोझिल) तथा कलियों के भीतर सोने वाले भ्रमरों को सुगन्ध की अधिकता से जगाता हुआ सा वेग से (शीघ्रता से) पास में आकर उस गौर वर्ण के बालक को (पुष्प चुनने से) रोकता हुआ बोला।

व्याख्या – **अलिपुञ्जम्**= भ्रमर समूह को। उद्धूय = उड़ाकर, उद्+धूञ्+ल्यप्। **कुसुमकोरकान्** = फूलों की कलियों को, 'कलिका कोरकः पुमान्' (अमरकोष), रात्रि होने के कारण सुविकसित न होने से ही कलियों को तोड़ रहा था। **सतीर्थ्यः** = सहपाठी, **समाने तीर्थे वसति** = सतीर्थ्यः, 'समान तीर्थ+यत्' समान को 'स' आदेश तीर्थ ये सूत्र से तथा 'समानतीर्थेवासी' से 'यत्' प्रत्यय, 'सतीर्थ्यास्त्वेकगुरवः' (अमरकोश)। **अपरः** = दूसरा। **तत्समानवयाः** = उसकी समान अवस्था वाला, समानं वयः यस्य सः (बहुब्रीहि)। **कस्तूरिकारेणुरुषित इव** = कस्तूरी की रेणु (बुकनी) से सने हुए के समान, कसूरिकायाः रेणुभिः रुषितः (तत्पु०) श्यामः= श्यामवर्ण वाला। **चन्दनचर्चितभालः** = चन्दन के लेप से शोभित ललाट वाला, चन्दनेन चर्चितम् भालम् यस्य सः (बहुब्रीहि)। 'कर्पूरागुरुदण्डः' = कपूर और अगर के चूर्ण से अनुलिप्त वक्षस्थल एवं भुजाओं वाला, कर्पूरस्य, अगुरोश्च क्षोदेन छुरितम्, वक्षो बाहु दण्डम् यस्य सः (बहुब्रीहि)। **सुगन्धपटलैः** = सुगन्ध समूह से। **उन्निद्रयन् इव** = जगाता हुआ सा, 'उद्+निद्+णिच्+शतृ'। **कोरकनिकुरम्बकान्तरालसुप्तानि** = कलियों के समूह के अन्तराल (गोद) में सोये हुए, कोरकाणां निकुरम्बकाणाम् अन्तराले सुप्तानि (तत्पु०), 'निकुरम्बं कदम्बकम्' (अमरकोश)। **मिलिन्दवृन्दानि** = भौंरों का समूह, मिलिन्दानां वृन्दानि (तत्पु०) **झटिति** = झटपट। **समुपसृत्य** = पास में आकर 'सम्+सृज्+ल्यप्'। **निवारयन्** = रोकता हुआ, नि+वृ+णिच्+शतृ'। **गौरबटुम्** = गौर बालक को। **अवादीत्** = बोला, 'वद्+लुङ्'।

समास-अलिपुञ्जम् – अलीनां पुञ्जः तम् (तत्पु०)। **तत्समानवयाः** – तेन समानं वयः यस्य सः (बहु०)। **कस्तूरिकारेणुरुषितः** – कस्तूरिकायाः रेणवः तैः रुषितः (तत्पु०)। **चन्दनचर्चितभालः** – चन्दनेन चर्चितं भालं यस्य सः (बहु०)। **कर्पूरागरुक्षोद ..... बाहुदण्डः** – कर्पूरेण अगुरोः क्षोदः तेन छुरितं वक्षोबाहुदण्डम् तस्य सः (बहु०)। **निद्रामन्थराणि** = निद्रया मन्थराणि (तत्पु०)। **कोककनिकुरम्बकान्तरालसुप्तानि** – कोरकाणां निकुरम्बक

तस्य, अन्तराले सुप्तानि (तत्पु०)। **मिलिन्द वृन्दानि** – मिलिन्दा: तेषां वृन्दानि (तत्पु०)।

टिप्पणी –

(1) 'कस्तूरिका ····· श्याम:' में उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। इव उत्प्रेक्षा वाचक है।

(2) 'उन्निद्रयन्निव' में भी 'इव' उत्प्रेक्षा वाचक होने से उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

(3) श्याम बटु के शरीर में लिप्त चन्दन, कपूर, अगर तथा कस्तूरी के लेप की सुगन्ध को सूंघकर अलसाये हुए भ्रमर उड़कर उसके शरीर पर जाने की उत्सुकता से चञ्चल हो गये। अतएव उन्निद्रित होने की सम्भावना अत्यन्त स्वाभाविक है।

2.3 अलं भो अलं से आरम्भ कर चकति इव संजाताः पर्यन्त।

अलं भो अलम्! मयैव पूर्वमवचितानि कुसुमानि, त्वं तु चिरं रात्राव–जागरीरिति क्षिप्रं नोत्थापित:, गुरुचरणा अत्र तडागतटे सन्ध्यामुपासते, संस्थापिता मया निखिला सामग्री तेषां समीपे। यां च सप्तवर्षकल्पाम्, यावनत्रासेन नि:शब्दं रुदतीम्, परमसुन्दरीम्, कलितमानवदेहामिव सरस्वतीं सान्त्वयन्, मरन्दमधुरा अप: पाययन्, कन्दखण्डानि भोजयन्, त्वं त्रियामाया यामत्रयमनैषी:, सेयमधुना स्वपिति, उद्बुद्ध्य च पुनस्तथैव रोदिष्यति, तत्परिमार्गणी–यान्येतस्या: पितरौ गृहं च–इति संश्रुत्य उष्णं नि:श्वस्य यावत् सोऽपि किञ्चिद्वक्तुमियेष तावदकस्मात् पर्वतशिखरे निपपात उभयोर्दृष्टि :।

प्रसङ्ग–यहाँ श्यामवटु अपने सतीर्थ्य गौरवटु को पुष्प चुनने से रोकते हुए तथा यवनों के चंगुल से छुड़ाई गई कन्या का वर्णन करते हुए कह रहा है–

अनुवाद – रुको भाई रुको! मैंने फूल पहले (तुम से पहले)ही चुन लिए हैं। रात में तुम बहुत देर तक जागते रहे थे। इस कारण तुमको पूर्ववेला में (जल्दी) नहीं जगाया। गुरु जी यहीं सरोवर के तट पर सन्ध्योपासना कर रहे हैं। मैने पूजा योग्य सभी सामग्री उनके समीप रख दी है। जिस, लगभग सात वर्ष की उम्र वाली, यवनों के डर से सिसकियाँ ले–ले कर धीरे–धीरे रोने वाली, मानव शरीर धारण किये हुए सरस्वती सदृश, परम सुन्दरी बालिका (कन्या) को धैर्य बँधाते हुए, शहद मिश्रित मधुरजल पिलाते हुए तथा कन्द (खाद्य विशेष) के टुकड़ों को खिलाते हुए रात के तीन पहर तुमने बिता दिये थे, इस समय वह सो रही है। जाग कर पुन: उसी प्रकार रोयेगी। अत: उसके माता–पिता तथा घर की खोज करनी चाहिए।

यह सुनकर गरम और लम्बी साँस लेकर जैसे ही उसने (गौर ब्रह्मचारी ने) भी कुछ कहना चाहा, वैसे ही अचानक उन दोनों (बटुओं) की दृष्टि सामने पहाड़ी की चोटी पर पड़ी।

व्याख्या – अलं भो अलम् = अलम्, पर्याप्त हो गया है, बस करो, भो= सम्बोधनसूचक पद है। **अवचितानि** = तोड़ लिये गये हैं, अव+चि+क्त (नपं० प्र० व०)। **चिरम्** = देर तक, अव्यय पद। **रात्रौ–अजागरी:** = रात्रि में जागते रहे, जागृ+लुङ् (म० पु०, ए० व०)। **क्षिप्रम्** = शीघ्र। **न उत्थापित:** = नहीं उठाये गये, उत् स्था + पुक्+णिच+क्त'। **गुरुचरणा:** = गुरु जी (आदर के लिये ब० ब०)। **तडागतटे** = तालाब के किनारे, तडागस्य तटे (तत्पु०)। सन्ध्याम् = नित्यकृत्य पूजन। **उपासते** = उपासना कर रहे हैं, उप+आस्+लट् (त), आत्मनेपद। **संस्थापिता** = रख दिया है, सम+स्था+णिच्+पुक्+क्त (स्त्री लि०)। **निखिला** = सम्पूर्ण । सामग्री=पूजा की सामग्री । **सप्तवर्षकल्पाम्** = लगभग सात वर्ष अवस्था वाली, 'सप्तवर्ष+कल्पत्' यहाँ ईषद् असमाप्ति (कुछ कमी) के अर्थ में ईषद्समाप्तौ कल्पब्देशीयर: से कल्पप् प्रत्यय हुआ है। **यावनत्रासेन** = यवनों के भय के कारण, यहाँ यवनानाम् अयम् इस अर्थ में यवन से अण् होकर 'यावन्' बनता है– 'यावनश्चासौ त्रास: तेन' यावनत्रासेन, संस्कृत साहित्य में यवन और जवन दोनों शब्द मिलते हैं। विवेचन के आधार पर श्री पञ्चानन तर्करत्न भट्टाचार्य ने जवन शब्द को ही उचित माना है। **नि:शब्दम्** = बिना शब्द किये हुये, भय के कारण रोने में शब्द नहीं कर रही थी, 'निर्गत: शब्द: यथा, तथा नि:शब्दम्'। **रुदतीम्** = रोती हुई को, रुद्+शतृ+ङीप् (स्त्री० द्वि० ए० व०)। **कलितमानवदेहाम्** = कलित:

मानवः देहः यया सा ताम (बहु०), मानव शरीर को धारण करने वाली। सान्त्वयन् = ढाढस बंधाते हुए। **मरन्दमधुरा** = पुष्प रस के मिश्रण से मधुर, 'मरन्द' का प्रयोग पण्डितराज ने किया है– 'अपि दलदरविन्द! स्यन्दमानम्, मरन्दम्, तव किमपि लिहन्तो मञ्जु गुञ्जन्तु भृङ्गा' 'मरम् द्युति इति मरन्दः' अर्थात् भ्रमर के मरण को नष्ट करने वाला 'मरन्द होता है। मरन्द भ्रमर का जीवन होता है। **अपः** = जल। **पाययन्** = पिलाता हुआ, 'पा+णिच्+शतृ'। **कन्दखण्डानि** = कन्द के खण्डों को, कन्द ऋषियों का एक विशेष प्रकार का भोजन है। यह पृथ्वी के भीतर होने वाली जड़ के रूप में होता है 'कन्दमस्त्री, मूलसस्यम्' (वैजयन्ती)। **भोजयन्** = खिलाते हुए, 'भुज+णिच्+शतृ'। **त्रियामायाः** = रात्रि के, यह योगरूढ शब्द है, 'रात्रिस्त्रियामा क्षणदा क्षपेत्यमरः।' **यामत्रयम्** = तीन पहर (तीन घण्टे का एक पहर होता है।) **अनैषीः** = बिता दिया था, नी+लुङ् (म० पु०, ए० व०)। स्वपिति = सो रही है। **उद्बुद्ध्य** = जगकर, 'उद्' बुध+ल्यप्'। **रोदिष्यति** = रोयेगी। **परिमार्गणीयानि** = खोजना चाहिए, परि+मृज्+अनीयर (ब० व०)। **एतस्याः** = इसके। **पितरौ** = माता पिता को, मात च पिता च (एकशेष द्वन्द)। **संश्रुत्य** = सुनकर, सम्+श्रु+ल्यप्। **निःश्वस्य** = श्वास लेकर, निः+श्वस्+ल्यप्। **वक्तुम्** = कहने के लिये, वच तुमुन्। **इयेष** = इच्छा की, इष् + लिट् (तिप्)। **पर्वतशिखरे** = पर्वत की चोटी पर, पर्वतस्य शिखरे (तत्पु०)। **दृष्टिः** = दृष्टि, दृश्+क्तिन। **निपपात** = पड़ी, नि + पत् +लिट् (तिप्)।

समास–यावनत्रासेन–यावनश्चासौ त्रासः तेन (बहु०)। **कलितमानवदेहाम्** – कलितःमानवः देहः यया ताम् (बहु०)। **मरन्दमधुराः** – मकरन्देन मधुराः (तत्पु०)। **यामत्रयम्**–यामानां त्रयं तत् (तत्पु०)। **पर्वतशिखरे**–पर्वतस्य शिखरं तस्मिन् (तत्पु०)।

टिप्पणी –

(1) कलितमानवदेहामिव सरस्वतीम्– यहाँ मानव के रूप में अवतीर्ण हुई सरस्वती के समान में उत्प्रेक्षा अलङ्कार हैं। इव सम्भावना वाचक है।

(2) यावनत्रास से त्रस्त सप्तवर्षदेशीया के वर्णन से यवनों की क्रूरता और अत्याचार का निर्देश किया गया है और उस कन्या की दुःखद स्थिति का मार्मिक चित्रण किया गया है।

तस्मिन् पर्वते आसीदेको महाकन्दरः। तस्मिन्नेव महामुनिरेकः समाधौ तिष्ठति स्म। कदा स समाधिमङ्गीकृतवानिति कोऽपि न वेत्ति। ग्रामणी–ग्रामीण–ग्रामाः समागत्य मध्ये मध्ये तं पूजयन्ति स्तुवन्ति च। तं केचित् कपिल इति, अपरे लोमशः इति, इतरे जैगीषव्य इति, अन्ये च मार्कण्डेय इति विश्वसन्ति स्म। स एवायमधुना शिखरादवतरन् ब्रह्मचारिबटुभ्यामदर्शि।

'अहो! प्रबुद्धो मुनिः! प्रबुद्धो मुनिः! इत एवाऽऽगच्छति, इत एवाऽऽगच्छति, सत्कार्योऽयं सत्कार्योऽयम् इति तौ सम्भ्रान्तौ बभूवतुः।

प्रसंग–प्रस्तुत खण्ड में वर्णन है कि उस पर्वत की कन्दरा में एक मुनि समाधि लगाये थे, कब समाधि लगाई थी, कोई नहीं जानता था। किन्तु ग्रामों के निवासी और संभ्रान्त उनको कपिल, लोमश या अन्य मुनि समझते थे। ये जग गए, इनका स्वागत करना चाहिए– यह कहते दोनों बटु शीघ्रता करने लगे।

अनुवाद–उस पर्वत में एक बहुत बड़ी कन्दरा (गुफा) थी। उसमें ही एक महामुनि समाधि लगाये बैठे थे। उन्होंने कब समाधि लगाई थी– यह किसी को मालूम नहीं था। बीच–बीच में (यदा–कदा) ग्राम के मुखिया तथा ग्रामवासी आकर उनका पूजन, प्रणाम और स्तुति कर आते थे। उनको कोई कपिल, कोई लोमश, कोई जैगीषव्य तथा कोई मार्कण्डेय समझता था। उस समय उन्हीं को उन दोनों (गौर–श्यामबटु) ब्रह्मचारी बालकों ने पर्वत की चोटी से नीचे आते हुए देखा।

अहा (अरे)! मुनि जाग गये हैं, मुनि जाग गये! इधर को ही आ रहे हैं, इधर ही आ रहे हैं, इनका सम्मान (आदर)होना चाहिए, इनका स्वागत करना चाहिए। ऐसा कहते हुए दोनों बटु शीघ्रता करने लगे।

व्याख्या – महान् कन्दरः = पर्वत की बड़ी गुफा । **समाधौ** = चित्त की एकाग्रता की स्थिति में, **तिष्ठति स्म** =बैठे थे। 'स्म' के योग से धातु का भूतकालिक अर्थ हो जाता है। **अङ्गीकृतवान्** = अङ्गीकार किया था। **वेत्ति** = जानता है। **ग्रामणीग्रामीणग्रामाः** = गाँव केप्रधान तथा गाँव के निवासियों का समूह, ग्रामण्यश्च ग्रामीणाश्च तेषां ग्रामाः। **समागत्य** = आकर, सम्+आ+गम्+ल्यप्। **पूजयन्ति**= पूजा करते हैं। **प्रणमन्ति**= प्रणाम करते हैं, 'प्र+नम्+लट् (झि)। **स्तुवन्ति** = स्तुति करते हैं, 'स्तुञ्+लिट् (झि)।' कपिल, लोमश जैगीषव्य तथा मार्कण्डेय आदि पदों से 'इति' निपातन से अभिहित होने के कारण द्वितीया विभक्ति नहीं हुई है। **विश्वसन्ति स्म** = विश्वास करते थे, लट् लकार के 'स्म' लगा देने से भूतकाल की क्रिया हो जाती है। **अवतरन्** = उतरते हुये, अव + तृ+शतृ। अदर्शि = देखे गये, दृश+लुङ् (त) आत्मनेपद (भावकर्म का रूप)। आश्चर्य और प्रसन्नता का सूचक है। **प्रबुद्धः** = जग गये, 'प्र+बुध्+क्त'। **इत एव** = इधर को ही, **सत्कार्यः** = सत्कार के योग्य। **'प्रबुद्धः.....सत्कार्योऽयम्'** में वाक्य की द्विरावृत्ति प्रसन्नता केकारण हुई है। **सम्भ्रान्तौ** = हर्ष से व्याकुल हुए, कन्दरा में बहुत दिन तक समाधिस्थ रहने के बाद मुनि बाहर आये है, अतः दोनों बटु हर्षोद्रेक से व्याकुल हो गये।

टिप्पणी–

(1) 'समाधि' एक यौगिक साधना है, जिसमें चित्तवृत्तियों के निरोध के लिए ध्यान लगाया जाता है।

(2) 'ग्रामणी... ग्रामाः' में अनुप्रास अलङ्कार है। एक ही मुनि का अनेक रूपों में उल्लेख करने से उल्लेखालङ्कार है।

(3) शान्त रस का वर्णन किया गया है।

अथ समापित सन्ध्यावन्दनादिक्रि ये समायाते गुरौ, तदाज्ञया नित्यनियम-सम्पादनाय प्रयाते गौरबटौ, छात्रगणसहकारेण प्रस्तुतासु च स्वागत-सामग्रीषु, योगिराज आगत्य तन्निर्दिष्टकाष्ठ-पीठं भास्वानिवोदयगिरिमारुरोह, उपाविशच्च।

तस्मिन् पूज्यमाने, 'योगिराडुत्थित इति, आयात इति च' आकर्ण्य कर्ण-परम्परया बहवो जनाः परितः स्थिताः। सुघटितं शरीरम्, सान्द्रां जटाम्, विशालान्यङ्गानि, अङ्गारप्रतिमे नयने, मधुरां गम्भीराञ्च वाचं वर्णयन्तश्चकिता इव सञ्जाताः।

प्रसंग–प्रस्तुत अंश में कहा है कि गुरु ने आकर उनका स्वागत किया। योगिराज को चौकी पर बैठाया। योगिराज के आने की सूचना जान कर बहुत से लोग आ गये तथा सब उनका दर्शन पाकर मुग्ध थे–

अनुवाद–तदुपरान्त सन्ध्योपासनादि नित्यनैमित्तिक कार्य पूर्ण करके गुरु जी के आ जाने पर और उनकी आज्ञा से गौर श्याम ब्रह्मचारियों के सन्ध्योपासन आदि नित्य कर्म सम्पादन हेतु चले जाने पर, अन्य विद्यार्थियों की सहायता से स्वागत सामग्री एकत्र कर दिये जाने पर, सभी उपस्थित व्यक्तियों द्वारा प्रणामपूर्वक 'इधर पधारिये, इस आश्रम को सनाथ (पवित्र,धन्य) कीजिये' कहे जाने पर योगिराज आकर उन सबके द्वारा बनाई गई चौकी पर उदयाचल पर भगवान् सूर्य देव के समान चढ़कर बैठ गये।

उनकी पूजा (स्वागत) की जा रही थी कि योगिराज समाधि से उठ आये हैं, यहाँ आये हैं, यह समाचार परस्पर एक-दूसरे से सुनकर चारों ओर से व्यक्तियों की भीड़ इकट्ठी हो गई। योगिराज के सुन्दर गठित शरीर, घनी जटाओं, विशाल अंग-प्रत्यंगों, लाल-लाल अंगारों सदृश रक्त नेत्रों, मधुर और गम्भीर वाणी का वर्णन करते हुए दर्शक जन अचम्भित तथा मंत्रमुग्ध से हो गये थे।

व्याख्या – अथ = तदनन्तर। **समापितसन्ध्यावन्दनादिक्रिये** = सन्ध्यावन्दनादि क्रिया को समाप्त कर चुके हुए, समापिता संध्यावन्दनादिक्रिया येन सः तस्मिन् (बहु०)। **समायाते** = आने पर, 'सम् आ+या+क्ते (सप्त० एक० व०)। गुरौ = मुनि के । **तदाज्ञया** = मुनि की आज्ञा से, तस्य आज्ञया (तत्पुरुष)। **नित्यनियमसम्पादनाय** = स्नान सन्ध्यापूजन आदि नित्य कर्म करने के लिये। **प्रयाते** = चले जाने पर, प्र+या +क्त (स० ए० व०)। **गौरबटौ** = गौरबटु के, 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' से सप्तमी विभक्ति । **छात्रगणसहकारेण** = छात्रों के सहयोग से, छात्राणां

गणः, तस्य सहकारः तेन (तत्पुरुष)। **प्रस्तुतासु** = प्रस्तुत हो जाने पर। **स्वागतसामग्रीषु** = स्वागत सामग्री के (उक्त नियम से सप्तमी)। **आगम्यताम्** = आइये (भावकर्म, आत्मनेपद)। **सनाथ्यताम्** = अलंकृत कीजिये, (पूर्वोक्त क्रिया)। इति= इस प्रकार। **सप्रणामम्** = प्रणाम पूर्वक । **अभिगम्य** = आकर, 'अभि+गम्+ल्यप्'। **वदत्सु** = कहने पर, वद + शतृ (स० ब० व०)। **निखिलेषु** = सभी लोगों के (उक्त नियम से सप्तमी)। **योगिराजः** = महामुनि, योग अस्ति अस्मिन् इति योगी, तेषां राजा, इति योगिराजः 'राजाहः सखिभ्यष्टच्' से 'टच्'। **तन्निर्दिष्टकाष्ठपीठम्** = मुनि की संकेतित चौकी पर, तेन निर्दिष्टम् काष्ठपीठम् (तत्पु०)। **भास्वान् इव** = सूर्य के समान। **उदयगिरिम्** = उदयाचल पर जिस पर, प्रातः काल सूर्य उदित होते हैं। **आरुरोह** = चढ़ गये, आ + रुह+लिट् (तप्)। **उपाविशत** = उप+आ+विश्+लङ्।

समास–समापितसन्ध्यावन्दनादिक्रि ये–समापिता सन्ध्यावन्दनादिक्रि या येन सः (बहु०) **तदाज्ञया**–तस्य आज्ञा तया (तत्पु०)। **नित्यनियमसम्पादनाय**–नित्या ये नियमाः तेषां सम्पादनाय (तत्पु०)। **तन्निर्दिष्टकाष्ठपीठम्**–तैः निर्दिष्टं, काष्ठस्य पीठं ततः (कर्म०)। **अङ्गारप्रतिमे**–अङ्गारः प्रतिमा ययोः ते (बहु०)।

टिप्पणी –

(1) बहुत काल की समाधि के बाद योगिराज के उठने पर आश्रमवासियों में प्रसन्नता की लहर छा गई।

(2) चौकी पर बैठने वाले मुनि की उपमा उदयगिरि पर उदित होने वाले सूर्य से दी गई है। अतः **उपमा अलंकार** है।

2.4 अथ योगिराजं से आरम्भ कर निरोद्धुं नयनवाष्पानि पर्यन्त

अथ योगिराजं सम्पूज्य यावदीहितं किमपि आलपितुम्, तावत् कुटीराद् अश्रूयत तस्या एव बालिकायाः सकरुणः रोदनम्।

ततः 'किमिति? कुत इति? केयमिति? कथमिति?' पृच्छापरवशे योगिराजे ब्रह्मचारिगुरुणा बालिकां सान्त्वयितुं श्यामबटुमादिश्य कथितम्–

प्रसंग–योगिराज आकर आसन परविराजमान हैं। स्वागत हो चुका है। गौर बटु के गुरु ने कुछ कहना चाहा कि बालिका रोने लगी। श्याम बटु को उसे धीरज बँधाने को गुरु ने भेज दिया और योगिराज से कहने लगे–

अनुवाद–इसके बाद योगिराज का विधिपूर्वक स्वागत सम्मान करके ब्रह्मचारियों के गुरु जी ने जैसे ही उनसे कुछ बात करने की अभिलाषा की वैसे ही कुटी से उस कन्या का सकरुण रुदन (रोना) सुनाई दिया। उस समय योगिराज ने कहा – यह क्या है? यह कहाँ से आई है? यह कौन है? कैसे आई है? – पूछने पर (जानकारी लेने पर) ब्रह्मचारियों के गुरु ने कन्या को सान्त्वना देने के लिए उस श्याम ब्रह्मचारी को भेज दिया तथा कहना प्रारम्भ किया।

व्याख्या – सम्पूज्य = पूजा करके, सम्+पूज्+ल्यप्। **ईहितम्** = इच्छा किया, 'ईह+इट्+क्त'। **किमपि** = कुछ। **आलपितुम्** = कहने के लिये, 'आ+लप्+तुम्'। **कुटीरात्** = कुटी से। **अश्रूयत** = सुनाई पड़ा। **सकरुण–रोदनम्** = करुणया सहितम् यद् रोदनम्, तत्, करुण क्रन्दन। **ततः** = उसके बाद। **पृच्छापरवशे** = पूछने की इच्छा से परवश होने पर, पृच्छाया परवशः, तस्मिन्। **योगिराजे** = योगिराज के । **ब्रह्मचारिगुरुणा** = ब्रह्मचारी के गुरु के द्वारा, ब्रह्मचारिणः गुरुः, तेन (तत्पु०)। **सान्त्वयितुं** = शान्त करने के लिये। **आदिश्य** = आदेश देकर, आ+दिश्+ल्यप्। **कथितम्** = कहा, कथ्+इ+क्त।

भगवन् श्रूयतां यदि कुतूहलम्। ह्यः सम्पादितसायन्तनकृत्ये, अत्रैव कुशाऽऽस्तरणमधिष्ठिते मयि, परितः समासीनेषु छात्रवर्गेषु, धीर–समीर स्पर्शेन मन्दमन्दमान्दोल्यमानासु व्रततिषु, समुदिते यामिनी कामिनी चन्दनबिन्दौ इव इन्दौ, कौमुदीकपटेन सुधा–धारामिव वर्षति गगने, अस्मन्नीतिवार्तां शुश्रूषुषु इव मौनमाकलयत्सु पतंगकुलेषु, कैरव–विकाश हर्ष प्रकाश मुखरेषु चञ्चरीकेषु, अस्पष्टाक्षरम्, कम्पमान–निःश्वासम्, शू त्थकण्ठम्, घर्घरित–

स्वनम्, चीत्कारमात्रम्, दीनतामयम्, अत्यवधानश्रव्यत्वादनुमितदविष्ठतं क्रन्दनमश्रौषम्।

प्रसंग–प्रस्तुत गद्यांश में सन्ध्या का सुहावना वर्णन करते हुए कहा जा रहा है कि सन्ध्या समय यहाँ हम लोग बैठे थे, तभी करुण–क्रन्दन सुना। रोने की आवाज की ओर छात्रों को भेजा। वे कुछ देर में एक रोती बालिका को उठा लाये। बालिका का कोई साथी नहीं मिला। उसका रुदन देखकर हम लोग भी अपने अश्रु नहीं रोक पाये।

अनुवाद–हे भगवन्! यदि इस वृत्तान्त को जानने की तीव्रोत्कण्ठा है, तब सुनिये। कल सन्ध्या समय नित्य कर्म पूर्ण करके मैं यहीं चटाई पर बैठा हुआ था तथा मेरे चारों ओर विद्यार्थी बैठे थे। मन्द–मन्द वयार (वायु) के झौंकों के स्पर्श से लतायें शनैः–शनैः (बहुत धीरे–धीरे) हिल रही थीं, निशा–रूपी रमणी (नायिका) के भाल पर चन्दन के बिन्दु सदृश चन्द्रमा का उदय हो चुका था, आकाश ज्योत्स्ना (चाँदनी)के बहाने अमृत की वृष्टि (वर्षा) सी कर रहा था, पक्षि समूह मानो हम सब की नीति वार्ता सुनने की अभिलाषा से मौन धारण किये हुए थे, श्वेत कुमूदों के खिल जाने के कारण भ्रमर बढ़े हुए हर्ष को व्यक्त करते हुए मानो गुनगुना रहे थे, उसी समय मैंने किसी का अस्पष्टाक्षरों तथा कम्पित साँसो से युक्त, रुँधे कण्ठ से निकलने वाला, घर्घराते स्वर वाला, चीत्कारयुक्त और दयनीय करुण रुदन सुना, जो बहुत सावधानी से सुनाई पड़ने योग्य होने के कारण बहुत दूर होने के अनुमान वाला था।

व्याख्या – श्रूयताम् = सुनें। **कुतूहलम्** = कौतुक अर्थात् समाचार जानने की उत्कण्ठा। **ह्यः** = कल। **सम्पादितसायन्तनकृत्ये** = सायंकालिक क्रियाओं को समाप्त कर चुकने पर, सम्पादितम् सायन्तनम् कृत्यम् येन सः, तस्मिन् (बहुव्रीहि) **सायन्तनम्** = सायम् अव्यय पद 'घञ्' प्रत्यय करके 'सायं' बनता है। ततः 'साये भवः' यहाँ भव (होने के) अर्थ में सायम् चिरम् प्राह्ण पगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौतुट् च ये टयु (यु) ओर तुट (त्) प्रत्यय होकर 'साय त्यु तथा यु' तथा यु को 'अन्' ओर मान्तता के निपातन से 'सायन्तन' रूप बनता है– सायंकाल में होने वाला। **कुशास्तरणम्** = कुशा का आसन, कुशानाम् आस्तरणम् इति, 'कुशास्तरणम्' में 'अधिशीङ्स्थासां कर्म' से अधि+स्था के योग में द्वितीया विभक्ति हुई है। **समासीनेषु** = बैठे हुए। **छात्रेषु** = छात्रों के, 'यस्य च भावेन' से सप्तमी। **धीरसमीरस्पर्शेन** = मन्द पवन स्पर्श से, धीरश्चासौ समीरः तस्य स्पर्शः तेन (तत्पु०)। **मन्दमन्दमान्दोल्यमानासु** = धीरे धीरे हिलने वाली। **व्रततिषु** = लताओं के, बल्ली तु 'व्रतनिर्लता' (अमरकोष)। **समुदिते** = उदित होने पर 'सम्+उद्+इ+क्त'। **इन्दौ** = चन्द्रमा के। **यामिनीकामिनीचन्दनबिन्दौ इव** = रात्रि रूपी नायिका के चन्दन बिन्दु के समान, यामिनी एव कामिनी तस्याः चनदनबिन्दुः तस्मिन् (तस्पु०)। **कौमुदीकपटेन** = चाँदनी के बहाने, कौमुदयाः कपटेन (तत्पु०)। गगने = आकाश के। **सुधाधाराम्** = अमृत की धारा, 'सुधायाः धाराम् (तत्पु०)। **वर्षति इव** = मानो वर्षा कर रहा हो। **अस्मन्नीतिवार्ता** = हम लोगों की नीति सम्बन्धी चर्चा को, अस्माकम् नीते वार्ताम्। **शुश्रूषुषु** = सुनने की इच्छा वाले, श्र+ सन्+उ' (धातु को द्वित्व सप्तमी बहुवचन)। **इव** = मानो। **पतंगकुलेषु** = पक्षियों के कुलों के, पतङ्गानां कुलानि तेषु (तत्पु०)। **मौनम्** = शान्ति। **आकलयत्सु** = धारण किये हुए, आ+कल+शतृ (सप्तमी)। **कैरवविकाशहर्षप्रकाशमुखरेषु** = कुमुदों के खिलने की प्रसन्नता की अभिव्यक्ति के कारण मुखरित होने पर, कैरवाणां विकाशेन हर्षस्य पकाशः तेन मुखरिताः तेषु (तत्पु०)। **चञ्चरीकेषु** = भ्रमरों के, इन्दिन्दिरोमधुकरश्चञ्चरीकोमधुव्रतः।' **अस्पष्टाक्षरम्** = अव्यक्त अक्षरों वाला, अस्पष्टानि अक्षराणि यस्मिंस्तत् (बहुव्रीहि)। **कम्पमाननिःश्वासम्** = कम्पमानः निश्वासः यस्य तत्, कांपती हुई श्वास वाला, कम्प्+शानच्। **श्लथत्कण्ठम्** = श्लथ् कण्ठः यस्मिन् तत्, रोते हुए गले वाला। **घर्घरितस्वनम्** = घर्घरिता स्वनाः, यस्मिंस्तत्, घरघर शब्द से युक्त। **चीत्कारमात्रम्** = चिल्लाना मात्र था जिसमें। **दीनतामयम्** = दीता से पूर्ण, 'दीनता+मयट्'। **अत्यवधानश्रव्यत्वात्** = विशेष ध्यान देने से सुनाई पड़ने के कारण, अत्यवधानेन श्रव्यः, तस्य भावः। **दविष्ठता** = अतिशयेन दूरं दविष्ठम्, तस्य भावः दविष्ठता, दूर+इष्ठन्+ता'। **क्रन्दनम्** = विलाप को। **अश्रौषम्** = सुना, श्रु+लुङ् (मिप्)।

समास– सम्पादितसायन्तनकृत्ये–सम्पादितं सायन्तनम् कृत्यं येन सः (बहु०) तस्मिन्। **कुशास्तरणम्**–कुशानां आस्तरणम् (तत्पु०)। **यामिनी–कामिनी–चन्दनबिन्दौ**–यामिनी सैव कामिनी तस्याः चन्दनबिन्दुः तस्मिन् (तत्पु०)। **कैरवविकाशहर्षप्रकाशमुखरेषु**–कैरवाणां विकाशः तेन हर्षस्य प्रकाशः तेन मुखरेषु (तत्पु०)। **अस्पष्टाक्षरम्**–अस्पष्टानि अक्षराणि यस्मिन् (बहु०)। **कम्पमाननिःश्वासम्**–कम्पमानाः निःश्वासाः यस्मिन् तत् (बहु०)।

श्लथत्कण्ठम्–श्लथन् कण्ठो यस्मिन् तत् (बहु०)।

टिप्पणी –

(1) ‘समुदिते .... पतंगकुलेषु’ में आये हुए ‘इव’ उत्प्रेक्षा वाचक हैं, चन्द्रमा में चन्दन बिन्दु की, आकाश से अमृतधार बरसने तथा पक्षियों में नीतिवार्ता के सुनने की सम्भावना की गई है, अतः उत्प्रेक्षा अलंकार है।

(2) ‘यामिनी कामिनी’ में यहाँ यामिनी में कामिनी का आरोप किया गया है, अतः रूपक अलंकार है।

(3) पूर्व की पंक्तियों में प्रसाद गुण तथा शान्त रस है। अन्त में करुण रस है।

(4) नीतिवार्ता शुश्रूषुषु’ से यह व्यक्त होता है कि आश्रमों में नीति सम्बन्धी मन्त्रणायें हुआ करती थीं और अल्पकाल में ऋषिमुनि, ब्रह्मचारी सभी सुरक्षात्मक व्यवस्था के प्रतिसचेष्ट हो जाते थे।

(5) ‘अस्पष्टाक्षरम् .... दविष्ठतम्’ सात विशेषण क्रन्दन के अत्यन्त स्वाभाविक विशेषण हैं।

तत्क्षणमेव च “कुत इदम्? किमिदमिति दृश्यतां ज्ञायताम्” इत्यादिश्य छात्रेषु विसृष्टेषु, क्षणानन्तरं छात्रेणैकेन भयभीता सवेगमत्युष्णं दीर्घनिःश्वसती, मृगीव व्याघ्राऽऽघ्राता, अश्रुप्रवाहैः स्नाता, सवेपथुः कन्यकैका अङ्के निधाय समानीता। चिरान्वेषणेनापि च तस्याः सहचरी सहचरो वा न प्राप्तः। ताञ्च चन्द्रकलयेव निर्मिताम्, नवनीतेनेव रचिताम्, मृणालगौरीम्, कुन्दकोरकाग्रदतीम् सक्षोभं रुदतीमवलोक्याऽस्माभिरपि न पारितं निरोद्धुं नयनवाष्पाणि।

प्रसङ्ग–यहाँ ब्रह्मचारिगुरु यवनों के चंगुल से रक्षित कन्या का योगिराज के समक्ष वर्णन कर रहे हैं–

अनुवाद – उसी समय यह क्रन्दन कहाँ से आ रहा है? क्या बात है? देखो तथा पता लगाओ। मैंने यह आज्ञा देकर समीपस्थ छात्रों (विद्यार्थियों) को भेजा। थोड़ी–सी देर में ही एक छात्र भयभीत, जल्दी–जल्दी गरम और लम्बी–लम्बी साँसें ले रही, किसी बाघ द्वारा आक्रान्त (सताई) हुई हरिणी के समान, अश्रु प्रवाह से स्नान की हुई तथा काँपती हुई एक कन्या को गोद में बैठाकर लाया। बहुत देर तक ढूँढ़ने से भी उसकी कोई सखी या साथी नहीं मिला। और चन्द्रकला द्वारा निर्मित–सी, मक्खन से निर्मित–सी, कमल नाल सदृश गौर वर्ण की, कुंद की कलियों के अग्रभाग सदृश दन्त पंक्ति वाली, व्याकुल हो–होकर रोती हुई उस कन्या को देखकर हम लोग भी अपने–अपने आँसू नहीं रोक पाये।

व्याख्या – **तत्क्षणमेव** = उसी समय। **दृश्यताम्** = देखिये। **ज्ञायताम्** = जानिये। **इत्यादिश्य** = इस प्रकार आदेश देकर। **विसृष्टेषु** = भेजने पर। **छात्रेषु** = छात्रों के, ‘यस्यभावेन’ से सप्तमी। **भीता** = डरी हुई, भी+क्त+टाप्’। **सवेगम्** = जल्दी जल्दी, वेगेन सहितम्, सवेगम्। **निःश्वसती** = सांस लेती हुई निर्+श्वस्+शतृ (स्त्री०)’। **मृगीव** = हरिणी के समान। **व्याघ्राऽऽघ्राता** = बाघ से सूंघी हुई, व्याघ्रेण आघ्राता (तत्पु०)। **अश्रुप्रवाहैः** = आँसुओं के प्रवाह से, अश्रूणाम् प्रवाहैः (तत्पु०) **स्नाता** = नहाई हुई, ‘स्ना+क्त+टाप्’। **सवेपथुः** = काँपती हुई ‘स+वेपृ (कम्पने) अथुच्’। **निधाय** = रखकर नि+धा+ल्यप्। **समानीता** = लाई गई, ‘सम्+आ+नी+क्त+टाप्’। **चिरान्वेषणेनापि** = चिरकाल तक ढूँढने से भी। **सहचरी** = सखी, सह चरतीति–सह+चर+अच्+(स्त्रियां ङीप्) अर्थात् साथ चलने वाली। **सहचरः** = साथी। **न प्राप्तः** = नहीं प्राप्त हुआ, प्र+अप्+क्त। **ताम्** = उस कन्या को। **चन्द्रकलया** = चन्द्रमा की कला से, चन्द्रस्य कला, तया (तत्पु०)। **निर्मिताम्** = बनी हुई। **नवनीतेन** = मक्खन से। **कुन्दकोरकाग्रदतीम्**= कुंद (पुष्प) कली के अग्रभाग के समान दाँतों वाली, कुन्दस्य कोरकाणाम् अग्राणि इव दन्ताः यस्याः सा, ताम् (बहुव्रीहि), ‘अगान्तशुद्धशुभ्रव्रषवराहेभ्यश्य’ सूत्र से ‘दन्त’ को ‘दंतृ’ आदेश तथा ङीप् (उगितत्वात्) होता है–
द न् त – दं तृ
(ऋ इत्) **दंत्+ङीप्** = दती। **सक्षोभं** = व्याकुलतापूर्ण। **रुदतीं** = रोती हुई, रुद्+शतृ+ङीप् (स्त्रियाम्)। **अवलोक्य** = देखकर, अव+लोक्+ल्यप्’। **अस्माभिः** = हम, **निरोद्धुं** =रोकने के लिये, ‘नि+रुध्+तुमुन्। **न पारितम्** = समर्थ

नहीं हुये।

टिप्पणी –

(1) 'चन्द्रकलयेव निर्मिताम्, नवनीतेनेव रचिताम्' में चन्द्रकला अथवा मक्खन से बनी हुई होने की सम्भावना की गई है। अतः उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

(2) 'मृणाल के समान गोरी तथा कुंदकलिका के अग्रभाग के समान दाँतों वाली' में लुप्तोपमालङ्कार है।

2.5 बोध–प्रश्न –

(1) निम्नस्थ पंक्ति का हिन्दी–अनुवाद करें–

'असावेव चर्कर्ति बर्भर्ति जर्हर्ति च जगत्।'

(2) 'ग्रामणी–ग्रामीण–ग्रामाः' – इस वाक्यांश का अर्थ लिखकर इसमें अलङ्कार बताइये।

(3) निम्नलिखित पदों में प्रकृति–प्रत्यय बताइये –

भोजयन्, संश्रुत्य, वक्तुम्, दृष्टिः।

(4) निम्नस्थ वाक्य के रेखाङ्कित पद में विभक्ति बताते हुए उसका कारण भी बताइये –

वटुरसौ जटाभिः ब्रह्मचारी।

(5) निम्नलिखित पदों का समास–विग्रह करते हुए समास–नाम बताएँ –

कम्बुकण्ठः, अहोरात्रम्, पुष्पवाटिका, चन्दनचर्चितभालः।

(6) ग्रन्थारम्भ में आये हुए भास्कर–वर्णन को संक्षेप में प्रस्तुत करें।

2.6 उपयोगी पुस्तकें –

(1)	शिवराजविजय (1–2 निश्वास)	–	चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।
(2)	शिवराजविजयः (प्रथमो विरामः)	–	श्रीरामजी पाण्डेय शास्त्री, व्यास–पुस्तकालय, वाराणसी।
(3)	"शिवराजविजय"	–	डॉ. देवनारायण मिश्र, साहित्य–भण्डार, मेरठ।
(4)	"शिवराजविजय"	–	डॉ. रूपनारायण त्रिपाठी, हंसा–प्रकाशन, जयपुर।
(5)	संस्कृत साहित्य का इतिहास	–	पं. बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा–प्रकाशन, वाराणसी।

2.7 बोध–प्रश्नों के उत्तर –

(1) ये (सूर्यदेव) ही पुनः–पुनः संसार की उत्पत्ति, पालन और संहार करते हैं।

(2) ग्राम के मुखिया तथा ग्रामीणों का समूह। **अनुप्रास** अलङ्कार।

(3) भोजयन् – भुज् + णिच् + शतृ

संश्रुत्य – सम् + श्रु + क्त्वा–ल्यप्

वक्तुम् – वच् + तुमुन्

दृष्टिः – दृश् + क्तिन्

(4) विभक्ति– तृतीया, 'इत्थम्भूतलक्षणे' सूत्र से।

(5) कम्बुकण्ठः – कम्बुः इव कण्ठः यस्य सः, बहुव्रीहिसमास।

अहोरात्रम् – अहश्च रात्रिश्च अनयोः समाहारः, द्वन्द्व समास।

पुष्पवाटिका – पुष्पाणां वाटिका, षष्ठी तत्पुरुष।

चन्दनचर्चितभालः – चन्दनेन चर्चितं भालं यस्य सः, बहुव्रीहि।

(6) द्रष्टव्य – गद्यखण्ड क्र. 2, 2.2

इकाई–3

शिवराजविजयः (प्रथमनिश्वासः)

''अथ कन्यके! मा भैषीः.....'' से प्रारम्भ कर ''.....परस्सहस्राणि च देवमन्दिराणि भूमिसात्कृतानि।'' पर्यन्त अंश का हिन्दी में सप्रसङ्ग अनुवाद, व्याकरण–सम्बन्धी टिप्पणी तथा गद्य शैली की विशेषता

इकाई की रूपरेखा –

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 "अथ कन्यके! मा भैषीः.....श्रूयतेऽवलोक्यते च परितः।"
पर्यन्त अंश का सप्रसंग हिन्दी अनुवाद।

3.2.1 व्याकरणात्मक टिप्पणी।

3.3 "तदाकर्ण्य दुखितश्चकितश्च.....आर्य्यवंश्यांश्चाभिमन्यामहे–।"
पर्यन्त अंश का सप्रसंग हिन्दी अनुवाद।

3.3.1 व्याकरणात्मक टिप्पणी।

3.4 "उपक्रममुमाकर्ण्य अवलोक्य.....महादेवमूर्तावपि, गदामुदतूतुलत।"
पर्यन्त अंश का सप्रसंग हिन्दी अनुवाद।

3.4.1 व्याकरणात्मक टिप्पणी।

3.5 "अथ 'वीर गृहीतमखिलं वित्तं,.....देवमन्दिराणि भूमिसात्तानि।"
पर्यन्त अंश का सप्रसंग हिन्दी अनुवाद।

3.5.1 व्याकरणात्मक टिप्पणी

3.6 गद्य–शैली की विशेषतायें

3.6.1 भाषा–शैली

3.6.2 अलंकार–योजना

3.6.3 रस–योजना

3.6.4 वस्तु एवं प्रकृति चित्रण

3.6.5 चरित्र–चित्रण

3.7 शब्दावली

3.8 सारांश

3.9 बोध–प्रश्न

3.10 कतिपय उपयोगी पुस्तकें

3.11 बोध–प्रश्नों के उत्तर

3.0 उद्देश्य –

प्रस्तुत इकाई में पण्डित अम्बिकादत्त व्यास–विरचित "शिवराजविजय" के प्रथम निःश्वास के "अथ कन्यके! .....भूमिसात्कृतानि।" पर्यन्त अंश के सप्रसंग हिन्दी अनुवाद (व्याकरणात्मक टिप्पणी सहित) प्रस्तुत कर अभिनव बाण की उपाधि से विभूषित पं. व्यास जी की गद्य–शैली का विस्तृत विवेचन किया गया है। इस इकाई का मुख्य उद्देश्य शिवाजी के शौर्य, पराक्रम एवं वीरता द्वारा सामान्य मनुष्य में भी देश–प्रेम की भावना जागृत करना है। तत्कालीन आश्रम–व्यवस्था, समाधि की अवस्था तथा गुरु का उपदेश मनुष्य मात्र को महती शिक्षा प्रदान करता है। मुगलों द्वारा किये जा रहे अत्याचारों के विरुद्ध मराठा सरदार वीर शिवाजी ने अपने शौर्य और सदाचार के द्वारा हिन्दुत्व की रक्षा की तथा भारतीयों के मानस में राष्ट्रभक्ति, आत्मविश्वास, धर्मनिष्ठा तथा मातृभूमि की सेवा का संचार किया है।

3.1 प्रस्तावना –

प्रस्तुत इकाई में –

(1) आश्रम–व्यवस्था में होने वाले नित्य–उपासना कर्मों का सुन्दर चित्रण किया गया है।

(2) ब्रह्मचारी गुरु एवं शिष्यों द्वारा भयाकुला बालिका का संरक्षण किया जाता है।

(3) योगिराज द्वारा चिरकालीन समाधि का चित्रण किया गया है तथा समाधि (योग) का व्यावहारिक वर्णन किया गया है।

(4) तत्कालीन मुगलों के अत्याचारों का वर्णन किया गया है।

(5) हिन्दुओं की दुर्दशा के साथ ही महमूद गजनवी की क्रूरता और हठता का वर्णन किया गया है।

(6) राजाओं का आपसी वैमनस्य एवं स्वार्थलिप्सा ही भारतवर्ष की दुर्दशा का प्रबल कारण था।

3.2 अथ कन्यके! मा भैषीः ..... श्रूयतेऽवलोक्यते च परितः। पर्यन्त अंश का सप्रसंग हिन्दी अनुवाद।

अथ कन्यके ! मा भैषीः, पुत्रि ! त्वाम् मातु, समीपे प्रापयिष्यामः, दुहितः! खेदं मा वह, भगवति ! भुङ्क्ष्व किञ्चित्, पिब पयः, एते तव भ्रातरः, यत् कथयिष्यसि, तदेव करिष्यामाः मा स्म रोदनैः प्राणान् संशयपदवीमारोपयः, मास्मकोमलमिदं शरीरं शोकज्वालावलीढं कार्षीः "इति सहस्त्रधा बोधनेन कथमपि सम्बुद्धा किञ्चिद् दुग्धं पीतवती। ततश्च मया क्रोशे उपवेश्य, "बालिके ! कथय क्व ते पितरौ ? कथमेतस्मिन्नाश्रमप्रान्ते समायाता ? किं ते कष्टम् ? कथमारोदीः ? किं वाच्छसि ? किं कुर्मः ?" इति पृष्टा मुग्धतया अपरिकलित वाक्पाट वा, भयेन विशिथिलवचन–विन्यासा, लज्जया अतिमन्दस्वरा, शोकेन रूद्धकण्ठा, चकितचकितेव कथं कथमपि अबोधयदस्मान् यदेषा अस्मिन्नेदीयस्येव ग्रामे वसतः कस्यापि ब्राह्मणस्यतनयाऽयस्ति। एनां च सुन्दरीमाकलय्य कोऽपि यवनतनयो नदीतटान्मातुर्हस्तादाच्छिध क्रन्दन्तीं नीत्वाऽपससार। ततः किञ्चिदध्वानमतिक्रम्य यावदकस्मासन्दर्श्य विभीषकयाऽस्याः क्रन्दनकोलाहलं शमयितुमियेष; तावदकस्मात्कोऽपि काल–कम्बल इव भल्लूको वनान्तादुपजगाम। दृष्ट्वैव यवनतनयोऽसौ तत्रैव त्यक्त्वा कन्यकमिमां शाल्यलितरुमेकमारुरोह। विप्रतनया चेयं पलाशपलाशिश्रेण्यां प्रविश्य धुणाक्षरन्यायेन इत एव समायाता यावद् भयेन पुनारोदितुमारब्धवती, तावदस्मच्छात्रेणैवाऽनीतेन।

तदाकर्ण्य कोपज्वालाज्वलित इव योगी प्रवोच – "विक्रमराज्येऽपि कथमेष पातकमयो दुराचारणामुपद्रवः ? ततः स उवाच – महात्मन् ! क्वाधुना विक्रमराज्यम्? वीरविक्रमस्य तु भारतभुवं विरहय्य गतस्य वर्षाणां सप्तदश शतकानि व्यतीतानि। क्वाधुना मन्दिरे–मन्दिरे

जय–जय ध्वनिः ? क्व सम्प्रति तीर्थे–तीर्थे घण्टानादः ? क्वाद्यापि मठे–मठे वेद घोषाः ? अद्य हि वेदा विच्छिद्य वीथीषु विक्षिप्यन्ते, धर्म–शास्त्राण्युद्धूय धूमध्वजेषु ध्यायन्ते, पुराणानि पिष्ट्वा पानीयेषु पात्यन्ते, भाष्याणि भ्रंशयित्वा भ्राष्ट्रेषु भर्ज्यन्ते; "क्वचिन्मन्दराणि भिन्द्यन्ते, क्वचितुलसीवनानि छिन्द्यन्ते, क्वचिद्दारा अपह्रियन्ते, क्वचिद् धनानि लुण्ठ्यन्ते क्वचिदार्तनादाः, क्वचिद् रुधिरधारा, क्वचिदग्निदाहः, गृहनिपातः" इत्येव श्रूयतेऽवलोक्यते च परितः।

प्रसंगः– प्रस्तुत गद्यांश पण्डित अम्बिकादत्त व्यास–विरचित "शिवराजविजय" के प्रथम निःश्वास से उद्घृत है।

"शिवराजविजय" का कथानक तीन विरामों में विभक्त है। प्रत्येक विराम में चार निःश्वास हैं। प्रथम निःश्वास में दक्षिण भारत में मुसलमानों के आधिपत्य तथा अत्याचारों से खिन्न शिवाजी ने स्वतन्त्रता के लिये संघर्ष का प्रारम्भ वर्णित है। उस काल में दो–दो कोस पर आश्रम बने हुए थे, जो मुसलमानों की गतिविधियों का परिचय (ध्यान) रखते थे। शिवाजी की निरन्तर विजयों से उद्विग्न होकर बीजापुर–दरबार ने उनसे युद्ध करने के लिये अफजल खाँ को भेजा। उस समय शिवाजी प्रताप दुर्ग में थे। अफजल खाँ ने भी वहीं भीमा नदी के तट पर शिविर लगा दिया। बीजापुर के शासक सन्धि का धोखा करके शिवाजी को जीवित पकड़ना चाहते थे, किन्तु उनकी इस अभिसन्धि का शिवाजी को पूर्वाभास हो गया। एक यवन गुप्तचर बीजापुर–दरबार का पत्र ले जा रहा था। मार्ग में उस गुप्तचर ने एक ब्राह्मण कन्या का अपहरण किया किन्तु वह कन्या एक शिवाजी द्वारा चलाये जा रहे आश्रम के ब्रह्मचारी गुरु के शिष्यों–गौरसिंह एवं श्यामसिंह द्वारा बचा ली जाती है। वह यवन गुप्तचर गौरसिंह द्वारा मारा जाता है तथा बीजापुर का गुप्त संदेश उसके वस्त्रों में से गौरसिंह को प्राप्त हो जाता है।

उस ब्राह्मण कन्या को दोनों शिष्य अपने आश्रम में लेकर आते हैं जहाँ महान् योगिराज भी विराजमान हैं। योगिराज के समक्ष ब्रह्मचारी गुरु उस कन्या का वर्णन करते हुए कहते हैं कि –

हिन्दी अनुवाद – "पुत्री ! डरो मत बच्ची ! तुम्हें माता–पिता के पास पहुँचा देंगे, बेटी ! दुःख मत करो, देवी! कुछ खा लो दूध पी लो, ये सब तुम्हारे भाई हैं, जो कहोगी वही करेंगे, रोने से अपने प्राणों को सन्देह में मत डालो, शोकाग्नि से अपने कोमल शरीर को मत झुलसाओ" इस तरह हजारों प्रकार से समझाने से किसी प्रकार शान्त हुई और थोड़ा दूध पिया। उसके बाद उसे मैंने अपनी गोद में बैठाकर–बालिके ! कहो, तुम्हारे माता–पिता कहाँ रहते हैं ? कैसे इस आश्रम में तुम आई ? तुम्हें क्या कष्ट है ? तुम क्यों रोती थी ? क्या चाहती हो ? हम सब (तुम्हारे लिए) क्या करें ? इस प्रकार पूछने पर भोलेपन के कारण, भाषण (वार्तालाप) की चतुरता से अनभिज्ञ, भय के कारण, अस्त–व्यस्त शब्दों में बोलने वाली, लज्जा से मद्धम स्वरों वाली, शोक से रुँधे हुए गले वाली, भयभीत हुई–सी किसी प्रकार हमें बताया कि अति समीप के ही गाँव में रहने वाले किसी ब्राह्मण की पुत्री है। इस सुन्दरी को देखकर एक कोई मुसलमान का लड़का, नदी के किनारे से माता के हाथ से इस कन्या को छीनकर, रोती हुई लेकर भागा। तब कुछ दूर जाकर, जब उस यवन कुमार ने तलवार के भय से इसके क्रन्दन–कोलाहल को शान्त करना चाहा, तभी अकस्मात् काले–कम्बल के समान एक रीछ (भालु) जंगल के किनारे से आ पहुँचा। उसे देखते ही वह मुसलमान युवक इस कन्या को वहीं छोड़कर एक शाल्मली के पेड़ (वृक्ष) पर चढ़ गया। यह ब्राह्मण–पुत्री पलाशवृक्षों की श्रेणी (झुरमुट) में प्रवेश करके धुणाक्षर–न्याय से इसी ओर आई और जब भय के कारण पुनः रोना प्रारम्भ किया, तभी मेरे छात्र के द्वारा यहाँ लाई गई।

यह सुनकर क्रोधाग्नि की ज्वाला से प्रज्वलित होते हुए से योगिराज बोले– "विक्रमराज्य में भी इस प्रकार दुराचारियों का पापमय उपद्रव कैसे ?" तब वे ब्रह्मचारी गुरु बोले– महात्मन् ! अब विक्रम का राज्य कहाँ है ? वीर विक्रम को तो भारतभूमि छोड़कर गये हुए सत्रह सौ वर्ष व्यतीत हो गये। इस समय मन्दिरों में जय–जय की ध्वनि कहाँ ? तीर्थों में इस समय घण्टानाद कहाँ ? मठों में आज वेदध्वनि कहाँ ? आज तो वेद फाड़कर वीथियों (मार्गों) में बिखेरे जा रहे हैं, धर्मशास्त्रों को उछालकर आग में डाला (झोंका) जाता हैं, पुराणों को पीसकर पानी में फेंका जा रहा हैं, भाष्य नष्ट करके भाड़ों (ईंट के बने हुए अग्निकुण्ड)

में झोंके जाते हैं, कहीं पर मन्दिर तोड़े जाते हैं (ध्वस्त किये जाते हैं), कहीं तुलसी के जंगल काटे जाते हैं, कहीं स्त्रियों का अपहरण किया जाता है, कहीं रुधिर की धारा, कहीं अग्निदाह है तो कहीं घर गिराये जाते हैं," चारों ओर यही सुनाई देता है और यही दिखाई देता है।

विशेष –

(1) "शोकज्वालावलीढम्" – शोकरूपी ज्वाला से व्याप्त। यहाँ "रूपक" अलंकार है।

(2) "पलाशपलाशिश्रेण्याम्" में यमक अलंकार है।

(3) "कोपज्वालाज्वलित इव" में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

(4) प्रस्तुत गद्यांश में प्रसाद गुण एवं वैदर्भीरीति का हृदयग्राही चित्रण है।

(5) भयाकुला बालिका का सुन्दर एवं स्वाभाविक चित्रण किया गया है।

(6) √भुज् + लोट् = भुङ्क्ष्व –"भुज्" धातु भक्षण के अर्थ में आत्मनेपद तथा अन्य अर्थ में परस्मैपद होता है।

(7) धुणाक्षरन्यायेन = संयोगवश, जिस प्रकार घुण (काष्ठ भेदन करने वाला कीड़ा) जब लकड़ी का भेदन करता है तो कभी–कभी उसकी पंक्तियाँ अक्षर के रूप में बन जाती हैं, उसी प्रकार से बिना सोचे हुए काम के अकस्मात् हो जाने को घुणाक्षरन्याय कहते हैं।

3.2.1 व्याकरणात्मक टिप्पणी –

(1)	प्रापयिष्यामः	–	प्र + आ + √अप् + णिच् + लृट् (मिप्)।
(2)	मा वह	–	मत करो। यहाँ मा निषेधार्थक हैं, अतः लोट्लकार का प्रयोग हुआ।
(3)	शोकज्वालावलीढम्	–	शोक एव ज्वाला तया व्याप्तम्, (तत्पुरुष) अवलीढम्।
(4)	अपरिकलितवाक्पाटवा	–	अपरिकलितम् वाक्पाटवम् यया सा।
(5)	विशिथिलवचनविन्यासा	–	विशिथिलः वचनविन्यासः यस्याः सा। (बहुव्रीहि समास)
(6)	नेदीयसि	–	अतिशयेन अन्तिकमिति नेदीयान् अन्तिकनेद। ईयसुन् "अन्तिकबाढयोर्ने–दसाधौ" से।
(7)	नदीतटात्	–	नद्याः तटम्, तस्मात् (तत्पुरुष)
(8)	क्रन्दन्तीम्	–	क्रन्द + शतृ (द्वितीया एकवचन)
(9)	अतिक्रम्य	–	अति + √क्रम् + ल्यप्।
(10)	सन्दर्श्य	–	सम् + √दृश् + णि + ल्यप्।
(11)	कालकम्बल इव	–	(अ) कालश्चासौ कम्बलः, काल कम्बलः (कर्मधारय) अथवा (ब) कालस्य (यमस्य) कम्बलः, काल कम्बलः (तत्पुरुष समास)
(12)	वनान्तात्	–	वनस्य अन्तः, तस्मात् (तत्पुरुष)
(13)	पलाशपलाशिश्रेण्याम्	–	पलाशाश्च ते पलाशिनः (वृक्षाः) तेषां श्रेणी, तस्याम् (तत्पुरुष)
(14)	पुनारोदितुम्	–	पुनः रोने के लिये, "पुनः" के विसर्ग का सन्धि नियम

"रोरि" सूत्र से लोप होकर 'न' को "द्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः" से दीर्घ।

(15)	आरब्धवती	–	आ + √रभ् + क्तवतु + ङीप् (स्त्रियाम्)।
(16)	कोपज्वालाज्वलित इव	–	कोपस्य ज्वालया ज्वलितः (तत्पुरुष)।
(17)	महात्मन्	–	महान् आत्मा यस्य सः, तत्सम्बुद्धौ महात्मन्।
(18)	धूमध्वजेषु	–	धूमः ध्वजा यस्य सः तेषु (बहुव्रीहि)।
(19)	दाराः	–	√दृ + णि + घञ्। दारयति हृदयम् इति दाराः। नित्य बहुवचन में ("दाराक्षतलाजासूनां बहुत्वम्")

3.3 तदाकर्ण्य दुखितश्चकितश्च.................आर्य्यवंश्यांश्चाभिमन्यामहे–"।
पर्यन्त अंश का सप्रसंग हिन्दी अनुवाद।

तदाकर्ण्य दुखितश्चकितश्च योगिराडुवाच – "कथमेतत् ? ह्य एव पर्वतीयाञ्छकान् विनिर्जित्य महता जयघोषेण स्वराजधानीमायातः श्रीमानादित्यपदलाञ्छनो वीरविक्रमः। अद्यापि तद विजयपताका मम चक्षुषोरग्रतः इव समुद्धूयन्ते, अधुनाऽपि तेषां पटहगोमुखादीनां निनादः कर्णशष्कुलीं पूरयतीव, तत्कथमद्य वर्षाणाम् सप्तदशशतकानि व्यतीतानि" इति ?

ततः सर्वेषु स्तब्धेषु च ब्रह्मचारिगुरूणा प्रणम्य कथिप्तमभगवन् ? बद्धसिद्धासनैर्निरुद्ध–निश्वासैः प्रबोधितकुण्डलिनीकैर्विजितदशेन्दि्यैरनाहतनाद– तन्तुमवलम्ब्याऽऽज्ञाचक्रं संस्पृश्य, चन्द्रमण्डलं भित्वा तेजःपुञ्जमविगणय्य, सहस्त्रदलकमलस्यान्तः प्रविश्य, परमात्मानं साक्षात् कृत्य, तत्रैव रमगाणै– मृत्युञ्जयैरानन्दमात्रस्वरुपैर्ध्यानावस्थितैर्भवादृशैर्न ज्ञायते कालवेगः। तस्मिन् समये भवता ये पुरुषा अवलोकिताः तेषां पञ्चादशत्तमोऽपि पुरुषो नावलोक्यते। अद्य न तानि स्त्रोतांसि नदीनाम्, न सा संस्था नगराणाम् आकृतिर्गिरीणाम्, न सा सान्द्रता विपिनानाम्। किमधिक कथयामो भारतवर्षमधुना अन्यादृशमेव सम्पन्नामस्ति।

इदमाकर्ण्य किञ्चित्स्मित्वेव परितोऽवलोक्य च योगी जगाद – "सत्यं न लक्षितो मया समयवेगः। यौधिष्ठरे समये कलितसमाधिरह वैक्रम समये उदस्थाम्। पुनश्च वैक्रमसमये समाधिमाकलय्य अस्मिन् दुराचारमये समयेऽहमुत्थि– तोऽस्मि। अह पुनर्गत्वा समाधिमेव कलयिष्यामि, किन्तु तावत् संक्षिप्य कथ्यतां का दशा भारतवर्षस्येति।"

तत्संश्रुत्य भारतवर्षीयदशासंस्मरण संजातशोको हृदयस्थप्रसाद– सम्भारोद्गिरणश्रमेणेवातिमन्यरेण स्वरेण "मा स्म धर्मध्वंसनघोषणैर्योगिराजस्य धैर्यमवधीरय" इति कण्ठ रुन्धतो वाष्पानविगणय्य, नेत्रे प्रमृज्य, उष्णं निःश्वस्य कातराभ्यामिव नयनाभ्याम् परितोऽवलोक्य, ब्रह्मचारिगुरुः प्रवक्तुमारभत– "भगवन्! दम्भोलिघटितेयं रसना, या दारुणदानवोदन्तोदीरणैर्न दीर्य्यते, लौहसारमयम्, हृदयम्, यत्संस्मृत्य यावनान्परस्सहस्त्रान् दुराचारान् शतधा न भिद्यते, भस्मसाच्च न भवति। धिगस्मान्, येऽद्यापि जीवामः, श्वसिमः, विचरामः, आत्मन आर्य्यवंश्यांश्चाभिमन्यामहे"–

प्रसंग – ब्रह्मचारी गुरु ने यवनों के शासन में हो रहे दुराचारों का वर्णन योगिराज के समक्ष किया। तब योगिराज ने प्रश्न किया कि क्या विक्रमादित्य के शासन में भी दुराचारियों का उपद्रव है ? तब ब्रह्मचारी गुरु ने कहा महात्मन् ! विक्रम का राज्य कहाँ हैं, उन्हें भारतभूमि छोड़कर गये हुए 1700 वर्ष व्यतीत हो गये। पर्वतखण्ड पर सत्रह सौ वर्ष की तपस्या कर उठने वाले योगिराज द्वारा बालिका के बारे में पूछने तथा ब्रह्मचारी गुरु द्वारा भारतवर्ष की वस्तुस्थिति के बारे में जानकर उस विक्रमादित्य के राज्य का वर्णन

करते हुए कहते हैं–

हिन्दी अनुवाद – योगिराज (ब्रह्मचारी गुरु के वचन सुनकर) दुखित और चकित होते हुए बोले– यह कैसे ? अभी तो कल ही आदित्य पद विभूषित श्रीमान् वीर विक्रमादित्य पर्वतीय शकों को जीतकर बहुताधिक जयघोष के साथ अपनी राजधानी उज्जयिनी को आये हैं। आज भी उनकी विजयिनी पताकाएँ मेरे नेत्रों के सामने फहरा–सी रही हैं, इस समय भी उनके नगाड़े और तुरही आदि वाद्य–यन्त्रों की ध्वनि मेरे कानों के छिद्र को पूरित सी कर रही हैं, तो कैसे आज सत्रह सौ वर्ष व्यतीत हो गए।

(योगिराज के ऐसे वचनों को सुनकर) सभी के स्तब्ध एवं आश्चर्यचकित हो जाने पर, ब्रह्मचारी के गुरु ने प्रणाम करके कहा – "भगवन् ! सिद्धासन बाँधकर, साँस (श्वास) रोककर, कुण्डलिनी जगाकर (जागृत करके), दशों इन्द्रियों को जीतकर, अनाहत नाद के तन्तु का अवलम्बन करके, आज्ञाचक्र को ध्यान का लक्ष्य बना करके, चन्द्र–मण्डल का भेदन करके, तेजःपुञ्ज (चन्द्र–चक्रवर्ती महाप्रकाश) का तिरस्कार करके, सहस्त्रार चक्र में अन्तःप्रविष्ट होकर के, परमात्मा का साक्षात्कार करके उसी में रमण करने वाले, मृत्यु को जीतने वाले, आनन्दमात्र स्वरुप वाले तथा ध्यान में स्थित रहने वाले आप जैसे महात्माओं के द्वारा समय का वेग नहीं जाना जाता है। इस समय (विक्रमादित्य के समय में) आप ने जिन पुरुषों को देखा था, अब उनका पचासवाँ (पचासवीं पीढी का) पुरुष भी नहीं दृष्टिगोचर होता हैं। आज नदियों की वे धारायें नहीं हैं, नगरों की वह स्थिति नहीं है, पर्वतों की वह आकृति (वस्तुस्थिति) नहीं हैं, जंगलों की वह सान्द्रता (सघनता) नहीं है। और अधिक क्या कहें ? भारतवर्ष इस समय दूसरे ही प्रकार का हो गया है।"

यह सुनकर कुछ मुस्कराते हुये से, चारों और देखकर योगिराज बोले – "सत्य हैं, मैंने समय वेग को नहीं देखा। युधिष्ठिर के समय में समाधि लगाकर विक्रमादित्य के समय में उठा और पुनः विक्रमादित्य के समय में समाधि लगाकर दुराचारमय इस समय में जागृत हुआ हूँ। मैं पुनः जाकर समाधि ही लगाऊँगा अथवा समाधिस्थ हो जाऊँगा, किन्तु तब तक आप संक्षेप में बताइये कि वर्तमान में भारतवर्ष की क्या दशा है।" (योगिराज के ऐसे वचनों को सुनकर)– भारतवर्ष की दशा के स्मरण से उत्पन्न हुए शोक वाले, मानो हृदय में स्थित प्रसन्नता को व्यक्त करने के श्रम से अति मन्द स्वर से "धर्म–विध्वंस की कथाओं से योगिराज के धैर्य को मत डिगाओं", इस प्रकार गले को रुँधने वाले आँसुओं की चिन्ता न करके, नेत्रों को पोंछकर, गर्म सांस लेकर, कातर हुए के समान नेत्रों से चारों ओर देखकर ब्रह्मचारी के गुरु ने कहना आरम्भ किया– "भगवन् ! यह मेरी जिह्वा वज्र से बनी हैं, जो कि दारुण (भीषण) दानवों अर्थात् यवनों के वृत्तान्त के वर्णन से विदीर्ण नहीं हो जाती, हृदय लोहे का बना हुआ है, जो यवनों के हजारों दुराचारों का स्मरण करके टुकड़े–टुकड़े (खण्डित) नहीं हो जाता है और जल कर राख (भस्म) नहीं हो जाता। हम सबको धिक्कार है, जो आज भी जीवित हैं, श्वास (सांस) ले रहे हैं, विचरण कर रहे हैं और अपने आप को आर्यों का वंशज मान रहे हैं।"

विशेष –

(1) "अद्यापि तद विजयपताका.....कर्णशष्कुलींपूरयतीव" यहाँ पर "उत्प्रेक्षा अलंकार" है।

(2) पूर्व की पंक्तियों में योग के अनुसार समाधि की व्यावहारिक प्रक्रियाओं का वर्णन किया गया है। योगशास्त्र के आधार पर मानव शरीर में आठ चक्र होते हैं– (अ) आधारचक्र, (ब) स्वाधिष्ठान चक्र, (स) मणिपूरक चक्र, (द) चन्द्र चक्र, (य) अनाहत चक्र, (र) विशुद्धाख्य चक्र, (ल) आज्ञाचक्र, (व) सहस्त्रार चक्र।

(3) प्रस्तुत अवतरण में गौडी रीति का प्रयोग हुआ है।

(4) शब्दयोजना और भावात्मकता दोनों की विशेष प्रवाहशालिता है।

(5) "तत्संश्रुत्य.....मन्यामहे।" सम्पूर्ण अवतरण में समासबहुला गौडी रीति, एवं व्यासशैली का

प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। इसे चूर्णक शैली अथवा दण्डक शैली भी कहा जाता है।

(6) "हृदयस्थप्रसाद सम्भारोद्गिरणश्रमेणेव" में सम्भावना व्यक्त होने से "उत्प्रेक्षा अलंकार" है।

(7) "कातराभ्यामिव" में सादृश्यकथनात् "उपमा अलंकार" का प्रयोग हुआ है, "इव" उपमावाचक है।

(8) जीवामः, श्वसिमः, विचरामः में अन्यार्थ की प्रतिपत्ति से अर्थापत्ति अलंकार है।

(9) "येऽद्यापि.....मन्यामहे–" में दीपक अलंकार है।

3.3.1 व्याकरणात्मक टिप्पणी

(1) पर्वतीयान् – पर्वते भवाः पर्वतीयाः, पर्वत + छ।

(2) स्वराजधानीम् – स्वस्य राजधानीम् (तत्पुरुष)।

(3) तद्विजयपताकाः – तेषां विजयस्य पताकाः (तत्पुरुष)।

(4) समुद्धूयन्ते – "सम् + उद् + √धूञ् + लट्" (आत्मनेपद)

(5) कर्णशष्कुलीम् – कर्णयोः शष्कुली, ताम्।

(6) बद्धसिद्धासनैः – बद्धम् सिद्धासनम् यैस्तैः (बहुव्रीहि)

(7) निरुद्धनिश्वासैः – निरुद्धाः निश्वासाः यैः, तैः (बहुव्रीहि)

(8) प्रबोधितकुण्डलिनीकैः – प्रबोधिता कुण्डलिनी यैस्तैः (बहुव्रीहि)

(9) अनाहतनादतन्तुम् – "अनाहतश्चासौ नादः तस्य तन्तुः तम्"

(10) अविगणय्य – अ + वि + √गण् + ल्यप्।

(11) परमात्मानम् – परमश्चासौ आत्मा, तम्।

(12) मृत्युञ्जयैः – मृत्युम् जयन्तीति मृत्युञ्जयास्तैः।

(13) आनन्दस्वरुपैः – आनन्दमये ब्रह्मणि लीनत्वात्।

(14) ध्यानावस्थितैः – ध्याने अवस्थिताः तैः।

(15) सान्द्रता – सान्द्रभ्य भावः, सान्द्रः + तल्।

(16) समयवेगः – समयस्य वेगः (तत्पुरुष)

(17) यौधिष्ठिरे – युधिष्ठिरस्य अयम्–यौधिष्ठिरः, तस्मिन्, यौधिष्ठिरे।

(18) कलितसमाधिः – कलितः समाधिः येन सः (बहुव्रीहि)

(19) वैक्रमसमये – विक्रमस्य अयम् = वैक्रमेः, सः चासौ समयः, वैक्रमसमयः, तस्मिन्।

(20) दुराचारमये – दुराचारेण युक्तः, दुराचारमयः तस्मिन्।

(21) उत्थितः – उद् + स्था + इट् + क्त।

(22) भारतवर्षीयदशासंस्मरणसंजातशोकः – भारतवर्षीयाया दशायाः संस्मरणेन सजातः, शोकः यस्य (बहुव्रीहि)

(23) हृदयस्थप्रसादसम्भारोद्गिरणश्रमेण – हृदयस्थः यः प्रसादः, तस्य सम्भारस्य उद्गिरणे यः श्रमस्तेन (तत्पुरुष)

(24) उद्गिरण – उद् + √गृ + ल्युट्।

(25) दम्भोलिघटिता – 'दम्भोलिना घटिते दम्भोलिघटिता। (तत्पुरुष)

(26) दारुणदानवोदन्तोदीरणैः – दारुणः, ये दानवाः तेषाम् उदन्तस्य उदीरणैः (तत्पुरुष)

(27) उदीरण – उद् + √ईर् + ल्युट्।

(28) परसहस्रान् – सहस्त्रात् पराः इति परसहस्त्राः तान्।

(29) धिक् अस्मान् – 'धिक्' के योग में द्वितीया विभक्ति।

(30) आर्यवंश्यान् – आर्याणाम् वंशे भवाः आर्यवंश्याः, तान्।

3.4 "उपक्रममुमाकर्ण्य ..... महादेवमूर्तावपि, गदामुदतूतुलत"। पर्यन्त अंश का सप्रसंग हिन्दी अनुवाद।

उपक्रममुमाकर्ण्य अवलोक्य च मुनेर्विमनायमानं हरिद्राद्रवक्षालितमिव वदनम्, निपतद्वारिबिन्दुनी नयने, अञ्चितरोमकञ्चुक शरीरम्, कम्पमानमधरम्, भज्यमानञ्चस्वरम्, अवागच्छत् "सकलानर्थमयः, सकलवञ्चनामयः, सकलपापमयः सकलोपद्रवमयश्चायं वृत्तान्तः" इति, अतएव तत्स्मरणमात्रेणापि खिद्यत एष हृदये, तत्नाहमेनं निरर्थं जिग्लापयिषामि, न वा चिखेदयिषामि" इति च विचिन्त्य–

"मुने ! विलक्षणोऽयं भगवान् सकल–कला–कलाप–कलनः सकलकालनः करालः कालः। स एव कदाचित् पयःपुर–पुरितान्यकूपारतलानि मरुकरोति। सिंह–व्याघ्र–भल्लूक–गण्डक फेरू–शश–सहस्त्र–व्याप्तान्यरण्यानि जनपदी करोति, मन्दिर–प्रासाद–हर्म्य–श्रृङ्गाटक–चत्वरोद्यान–तडागगोष्ठमयानि नगराणि च काननीकरोति। निरीक्ष्यताम् कदाचिदस्मिन्नेव भारतेवर्षे यायजूकै राजसूयादियज्ञा व्ययाजिषत, कदाचिदिहैव वर्षवाताऽऽतप–हिम–सहानि तपांसि अतापिषत। सम्प्रति तु म्लेच्छैर्गावो हन्यन्ते, वेदां विदीर्य्यन्ते, स्मृतयः समृद्यन्ते; मन्दिराणि मन्दुरी क्रियन्ते, सत्यःपात्यन्ते, सन्तश्च सन्ताप्यन्ते। "सर्वमेतन्माहात्म्यं तस्यैव महाकालस्येति कथं धीरधौरेयोऽपि धैर्यं विधुरयसि ? शान्तिमाकलय्याति– संक्षेपेण कथय यवनराजवृत्तान्तम्। न जाने किमित्यनावश्यकमपि शुश्रूषते मे हृदयम्" इति कथयित्वा तूष्णीमवतस्थे।

अथ स मुनिः – "भगवन् ! धैर्येण, प्रसादेन, प्रतापेन, तेजसा, वीर्येण विक्रमेण, शान्त्या, श्रिया, सौख्येन, धर्मेण विद्यया च सममेव परलोकं सनाथितवति तत्र भवति विक्रमादित्ये शनैः शनैः पारस्परिकविरोधविशिथिली–कृतस्नेहबन्धनेषु राजसु, भामिनि–भू–भङ्ग–भूरिभाव प्रभावपराभूत–वैभवेषु भटेषु, स्वार्थ चिन्ता–सन्तान वितानैकतान्येष्वमात्यवर्गेषु, प्रशंसामात्रप्रियेषु प्रभुषु, "इन्द्रस्त्वं वरुणस्त्वं कुबेरस्त्वम्" इतिवर्णनामात्रसक्तेषु बुद्धजनेषु कश्चन् गजनीस्थाननिवासी महामदो यवनः ससेनः प्राविशद् भारतेवर्षे। स च प्रजाः विलुण्ठ्य, मन्दिराणि निपात्य, प्रतिमांविभिद्य परश्शतान् जनांश्च दासीकृत्य, शतश उष्ट्रेषु रत्नान्यारोप्य स्वदेशमनैषीत्। एवं स ज्ञातास्वादः पौनः पुन्येन द्वादशवारमागत्य भारतमलुलुण्ठत्। तस्मिन्नेव च स्वसंरम्भे एकदा गुर्जरदेश चूडायितं सोमनाथतीर्थमपि धूलीचकार।

अद्य तु तत्तीर्थस्य नामापि केनापि न स्मर्यते; परं तत्समये तु लोकोत्तरं तस्य वैभवमासीत्। तत्र हि महार्ह–वैदूर्य–पद्मराग–माणिक्य–मुक्ताफलादि जटितानि कपाटानि, स्तम्भान् गृहावग्रहणीः, भित्तीः, वलभीः विटङ्कानि च निर्मथ्य, रत्ननिचयमादाय, शतद्वयमणसुवर्णश्रृङ्खलावलम्बिनीं चञ्चच्चाकचक्य– चकिती.तावलोचक–लोचन–निचयां महाघण्टां प्रसह्य संगृह्य, महादेवमूर्तावपि, गदामुदतूतुलत्।

प्रसंगः– जब समाधि से जागृत हुए योगिराज ने ब्रह्मचारी गुरु से आश्रम में स्थित कन्या के विषय में जाना तो गुरु ने वह सम्पूर्ण घटना योगिराज को बताई जिसकी वजह से उस कन्या की यह दुर्दशा हुई,

यह सुनकर योगिराज ने कहा कि विक्रमादित्य के शासन काल में ऐसा दुराचार नहीं हो सकता तब ब्रह्मचारी गुरु ने कहा कि – विक्रमादित्य को भारत–भूमि छोड़कर गये हुए 1700 वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। आप तो समाधि में स्थित होकर समय की गति को पहचान नहीं पाये। यह जानकर योगिराज को भारतवर्ष की वर्तमान दशा को जानने की अत्यधिक जिज्ञासा हुई। ब्रह्मचारी गुरु भारतवर्ष का वर्णन करते हुए कहते हैं कि –

हिन्दी अनुवादः– इस उपक्रम (भूमिका) को सुनकर और मुनि के हल्दी के रंग से रंगे हुए के समान (पीत वर्ण वाले) उदास चेहरे को, आँसू बहाते हुए नयनों को, रोमाञ्चित शरीरावयव को, कम्पमान ओष्ठ तथा लड़खड़ाते (अस्पष्ट) स्वर को देखकर योगिराज समझ गये कि – "यह सम्पूर्ण वृत्तान्त अतिशय अनर्थों, वञ्चनाओं, पापों तथा उपद्रवों से भरा हुआ (परिपूर्ण) है" इसलिए उसके (इस वृत्तान्त के) स्मरण–मात्र से इनका (ब्रह्मचारी गुरु का) हृदय खिन्न हो रहा हैं, अतः मैं इनको व्यर्थ में मलिन नहीं करूँगा और न ही दुःखी करूँगा यह सोचकर – (योगिराज ने कहा) – "मुने ! सम्पूर्ण कलाओं के निर्माता तथा सभी के संहारक भगवान् महाकाल अत्यन्त विलक्षण हैं। वे ही कभी जलप्रवाह से पूर्ण समुद्रतल को मरुभूमि बना देते हैं। सहस्रों सिंहों, बाघों, भालुओं, गैंडों, शृगालों तथा खरगोशों से भरे हुए जंगल को नगर बना देते हैं तथा मन्दिरों, महलों अट्टालिकाओं, चौराहों, उद्यानों, तालाबों तथा गोशालाओं से युक्त नगरों को जंगल बना देते हैं। द्रष्टव्य है – कभी–कभी भारतवर्ष में याज्ञिकों ने राजसूर्यादि यज्ञ किये थे, कभी इसी भारतवर्ष में वर्षा, आँधी, धूप, हिमपात आदि को सहन करके तपस्यायें की गई थीं। इस समय तो यवनों के द्वारा गायें मारी जा रही हैं। वेद की पुस्तकें नष्ट की जा रही है, स्मृति–ग्रन्थों को कुचला जा रहा है, मन्दिरों को घुड़साल बनाया जा रहा है, सत्यवती स्त्रियों को पतिता बनाया जा रहा है और सन्त–महात्माओं को सन्तप्त किया जा रहा है। यह सब–कुछ उसी महाकाल का प्रभाव है अतः आप धैर्यशालियों में सर्वश्रेष्ठ होते हुए भी धैर्य क्यों खो रहे हैं ? अथवा आपका धैर्य क्यों डगमगा रहा हैं ? शान्त होकर अतिसंक्षेप से यवन राज्य के वृत्तान्त को कहिए। "न जाने क्यों अनावश्यक होते हुए भी मेरा हृदय (मन) इसे सुनने की प्रबल इच्छा कर रहा है।" यह कहकर योगिराज शान्त हो गये।

इसके पश्चात् ब्रह्मचारी गुरु ने कहना आरम्भ किया– "भगवन् ! धैर्य, प्रसन्नता, प्रताप, तेज, बल, विक्रम, शान्ति, लक्ष्मी, सुख, धर्म और विद्या के साथ ही श्रेष्ठ वीर विक्रमादित्य के परलोक को सनाथित करने पर अर्थात् स्वर्गलोक चले जाने पर, धीरे–धीरे राजाओं के परस्पर विरोध के कारण स्नेह बन्धन के शिथिल हो जाने पर, वीरों के कामिनियों के कटाक्षों और हाव–भाव के प्रभाव में आने से सम्पूर्ण सम्पत्ति के नष्ट हो जाने पर, अमात्य अर्थात् मन्त्रीजनों के स्वार्थपरायण हो जाने तथा सन्तान की स्वार्थचिन्ता में परायण हो जाने पर, राजाओं का प्रशंसामात्र से सन्तुष्ट हो जोने पर, और विद्वानों के द्वारा "आप ही इन्द्र हैं, आप ही वरुण हैं, आप ही कुबेर हैं" इस प्रकार के वर्णनों में आसक्त हो जाने पर कोई गजनी नामक स्थान का निवासी महामदशाली (महमूद गजनवी नामक) यवन ने, सेना सहित भारतवर्ष में प्रवेश किया। वह प्रजा को लूटकर, मन्दिरों को ध्वस्त करके, प्रतिमाओं को तोड़कर सहस्त्र लोगों को दास (सेवक) बनाकर, सैंकड़ों ऊँटों पर रत्नों को लादकर अपने देश ले गया। इस प्रकार स्वाद को जानने वाला अर्थात् (लूटने के स्वाद को जानने वाला) वह यवनराज बार–बार यहाँ आकर भारतवर्ष को बारह बार लूटा। अपने उन्हीं आक्रमणों में एकबार उसने गुजराज देश (प्रान्त) के आभूषण के समान सोमनाथ–तीर्थ को भी धूलि में मिला दिया।

आज तो उस तीर्थ का नाम भी किसी के द्वारा स्मरण नहीं किया जाता; किन्तु उस समय तो उस तीर्थ का वैभव लोकोत्तर था। वहाँ पर बहुमूल्य वैदूर्य (मूंगा रत्न), पद्मराग, हीरे और मोतियों से जड़े (विभूषित) किवाड़ों (दरवाजों) का तथा स्तम्भों, देहलियों, दीवारों, वल्लियों और विटङ्कों (कबूतरों के दरबों) को मथकर (तोड़कर) सम्पूर्ण रत्न राशियों को लेकर; दो सौ मन सोने की जंजीर में लटकने वाले तथा देदीप्यमान चाकचिक्य (चारों ओर फैली हुई चकाचौंध) से दर्शकों के नेत्रों को चकित कर देने वाले, विशाल घण्टा को भी बलात् (बलपूर्वक, जबर्दस्ती) प्राप्त करके, भगवान् शिव (महादेव) की मूर्ति पर भी

उस महमूद गजनवी ने गदा उठाई अर्थात् महादेव के शिवलिंङ्ग को भी खण्डित कर दिया।

विशेष –

(1) "हरिद्राद्रवक्षालितमिव" – मानो हल्दी के वर्ण से घुला हुआ सा, अतः यहाँ "उत्प्रेक्षा" अलंकार है।

(2) "सकलकलाकलापकलनः सकलकालनः करालः कालः" में कला–कला, कल–कल तथा काल–काल में "सभंग पद यमक" अलंकार है।

(3) "सकलकला.....काननी करोति" तक "अनुप्रास" अलंकार की अनुपम छटा आकर्षक है।

(4) देश की पूर्व स्थिति और तत्कालीन स्थिति के सुन्दर वर्णन के साथ ही "विषयालङ्कार" भी प्रभावशाली है।

(5) "अथ स मुनि.....भारतवर्षे।" पर्यन्त अंश में राजाओं का आपसी विरोध, भोग–विलास में लिप्त होना, चापलूस मन्त्रियों तथा अमात्यवर्ग का स्वार्थलिप्सा में प्रवृत्त होना – राजा, राष्ट्र, समाज एवं प्रजा के विनाश का कारण बनता है। भारवि ने भी लिखा है –

"सदानुकूलेषु हि कुर्वते रतिं
नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः"।

(6) धैर्य, प्रसादादि के साथ ही विक्रमादित्य ने स्वर्गलोक को अलंकृत किया हैं, अतः "सहोक्ति" अलंकार है।

(7) सोमनाथ मन्दिर के वैभव का वर्णन करने से "उदात्तालंकार" है।

(8) "चञ्चच्चाकचक्यचकितीकृतावलोचकलोचन–निचयां" में "अनुप्रास" अलंकार की छटा दर्शनीय है।

(9) सम्पूर्ण अवतरण में ऐतिहासिक तत्त्वों का समावेश है।

3.4.1 व्याकरणात्मक टिप्पणीः–

(1) विमनायमानम् – वि + √मन् + क्यच् + शानच्।

(2) हरिद्राद्रवक्षालितम् – हरिद्रायाः द्रवस्तेनः क्षालितम्। (तत्पुरुष)।

(3) निपतद्वारिबिन्दुनी – निपतन्तः वारिबिन्दवः याभ्यां ते (बहुव्रीहि)।

(4) अञ्चिरोमकञ्चुकम् – अञ्चितः रोमकञ्चुकः यस्य तत्।

(5) जिग्लापयिषामि – √ग्लै + पुक् + णिच् + सन् + लट्।

(6) सकलकलाकलापकलनः – सकलाः कलाः तासां कलापः तस्य कलनः (तत्पुरुष)।

(7) सिंह–व्याघ्र–भल्लूक–गण्डक फेरु–शश–सहस्त्र व्याप्तानि – सिंहाश्च, व्याघ्राश्च, भल्लूकाश्च, गण्डकाश्च, फेरवश्च, शशाश्च, तेषां सहस्त्राणि, तैः व्याप्तानि (तत्पुरुष)।

(8) वर्षवाताऽऽतपहिमसहानि – वर्षाश्च–वाताश्च–आतपाश्च–हिमाश्च ते, एव सह्यन्ते येषु तानि (तत्पुरुष)।

(9) विदीर्यन्ते – वि + दृ + यक् + लट्।

(10) यवनराजवृत्तान्तम् – यवनानां राज्यं तस्य वृत्तान्तः, तम् (तत्पुरुष)।

(11) धैर्येण.....विद्यया – सभी पदों में तृतीया विभक्ति "समम्" के योग से हुई है।

(12) पारस्परिकविरोधविशिथिली

तस्नेहबन्धनेषु – पारस्परिकः विरोधः तेन विशिथिलीतानि स्नेहबन्धनानि यैः तेषु (बहुव्रीहि)

(13) भामिनी–भ्रू–भङ्ग–भूरिभाव प्रभावपराभूत–वैभवेषु – भामिनीनाम् भ्रूभङ्गाः भूरिभावाश्च तेषां प्रभावेण पराभूतानि वैभवानि येषां तेषु तादृशेषु (बहुव्रीहि)।

(14) स्वार्थचिन्तासन्तानवितानैकतानेषु – स्वार्थेचिन्ता, तस्याः सन्तानवितानैकतानां येषां तेषु। (बहुव्रीहि)।

(15) ज्ञातास्वादः – ज्ञातः आस्वादः येन सः।

(16) चूडायितम् – चूडा इव जातमिति चूडायितम्। चूडा + क्यप् + इ + क्त।

(17) महार्ह–वैदूर्य–पद्मराग–माणिक्य मुक्ताफलादि जटितानि – महार्हाः वैदूर्याः पद्मरागाः माणिक्याः मुक्ताफलानि च ते, तैः जटितानि। (तत्पुरुष)।

(18) चञ्चच्चाकचक्यचकिती कृतावलोचक–लोचन–निचयां – चञ्चता चाकचाक्येन चकितीकृतः अवलोचकानां लोचनानि तेषां निचयः, यया सा ताम् (बहुव्रीहि)

3.5 अथ "वीर गृहीतमखिलं.....देवमन्दिराणिभूमिसात्कृतानि।" पर्यन्त अंश का सप्रसंग हिन्दी अनुवाद।

अथ "वीर गृहीतमखिलं वित्तं, पराजिता आर्यसेनाः, बन्दीकृता वयम्, संचितममलं यश, इतोऽपि न शाम्यति ते क्रोधश्वेदस्माँस्ताड्य, मारय, छिन्धि, भिन्धि, पातय, मज्जय, खण्डय, कर्तय, ज्वलय; किन्तु त्यजेमामकिंचित्करी जडांमहादेवप्रतिमाम्। यद्येवं न स्वीकरोपि तद् गृहाणास्मत्तोऽन्यदपि सुवर्णकोटिद्वयम्, त्रायस्व, मैनां भगवन्मूर्तिस्प्राक्षीः" इति साम्रेड कथयत्सु रुदत्सु पतत्सु विलुण्ठत्सु प्रणमत्सु च पूजकवर्गेषु; "नाहं मूर्तीर्विक्रीणामि; किन्तु भिनद्मि" इति संगर्ज्य जनतायाः हाहाकार–कल–कलमाकर्णयन् धोरगदया मूर्तिमतुत्रुटत्। गदापातसमकालमेव चानेकार्बुदपद्ममुद्रामूल्यानि रत्नानि मूर्तिमध्यादुच्छलितानि परितोऽवाकीर्यन्ते। स च दग्धमुखः तानि रत्नानि मूर्तिखण्डानि च क्रमेलकपृष्ठेष्वारोप्य सिन्धुनदमुत्तीर्य स्वकीयां विजयध्वजिनीं गजिनीं नाम राजधानीं प्राविशत्।

अथ कालक्रमेण सप्ताशीत्युत्तरसहस्त्रतमे (1087) वैक्रमाब्दे सशोकं सकष्टंच प्राणाँस्त्यक्तवति महामदे, गोरदेशवासी कश्चित् शहाबुद्दीननामा प्रथमं गजिनीदेशमाक्रम्य, महामदकुलं धर्मराजलोकाध्वन्यध्वनीनं विधाय, सर्वाः प्रजाश्च पशुमारं मारयित्वा तद्रुधिरार्द्रमृदा गोरदेशे बहून् गृहान् निर्माय चतुरङ्गिण्याऽनीकिन्या भारतवर्षप्रविश्य, शीतलशोणितानप्यसयन् पञ्चाशदुत्तर द्वादशशतमितेऽब्दे (1250) दिल्लीमश्वयाम्बभूव।

ततो दिल्लीश्वरं पृथ्वीराजं कान्यकुब्जेश्वरं जयचन्द्रं च पारस्परिकविरोध– ज्वरग्रस्तं विस्मृतराजनीतिं भारतवर्षदुर्भाग्यायमाणमाकलय्यानायासेनोभावपि विशस्य, वाराणसीपर्यन्तमखण्डमण्डलमकण्टकोटकिट्टं महारत्नमिव महाराज्यमङ्गीचकार। तेन वाराणस्यामपि बहवोऽस्थिगिरयः प्रचिताः रिङ्गतरङ्ग–भङ्गगङ्गाऽपि शोणितशोणा शोणीकृता, परस्सहस्त्राणि च देवमन्दिराणि भूमिसात्कृतानि।।

प्रसंगः– भारतवर्ष पर मुसलमानों के आक्रमण द्वारा अनेक बार लूट–पाट की गई, गजनवी ने सोमनाथ के मन्दिर को भी लूट लिया तथा सम्पूर्ण रत्नों को ऊँटों पर लादकर ले गया और जाते हुए अन्त में भगवान् महादेव की मूर्ति पर भी गदा चला दी। गजनवी के पश्चात् गोरदेशवासी शहाबुद्दीन ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया, जिसका वर्णन करते हुए ब्रह्मचारी के गुरु कहते हैं कि –

हिन्दी अनुवादः– इसके बाद – "हे वीर ! तुमने सब धन ले लिया, आर्य सेना को पराजित कर दिया, हम सब को बन्दी बना लिया, निर्मल यश अर्जित कर लिया; यदि इतने पर भी तुम्हारा क्रोध शान्त नहीं हुआ तो हम सब को पीट डालो, मार डालो, चीर डालो, काट डालो, कत्ल कर डालो, जला डालो; किन्तु इस कुछ न करने वाली महादेव की जड़ प्रतिमा को छोड़ दो। यदि ऐसा भी स्वीकार न हो तो हम से दो करोड़ स्वर्ण मुद्रायें और ले लो, रक्षा करो, इस भगवान् शंकर की मूर्ति का स्पर्श मत करो।" इस प्रकार मन्दिर के पुजारियों के बार–बार कहने पर, रोने पर, पैरों में पड़ने पर, भूमि में लौटने पर और बार–बार प्रणाम करने पर – "मैं मूर्ति बेचता नहीं हूँ, किन्तु तोड़ता हूँ" इस प्रकार गरजकर जनता के हाहाकार के कोलाहल को सुनता हुआ अपनी भीषण गदा से महमूद गजनवी ने मूर्ति को तोड़ दिया। गदा के प्रहार के साथ ही अनेक अरब पद्म मुद्रा के मूल्य के रत्न मूर्ति के मध्य से उछलकर चारों ओर फैल गये और वह दग्धमुख उन रत्नों और मूर्ति के टुकड़ों को ऊँटों की पीठ पर लादकर सिन्धु नदी के पार अपनी विजय–पताका वाली "गजिनी" नामक राजधानी में प्रवेश कर लिया।

तदनन्तर, कालक्रम से विक्रम सम्वत् 1087 में कष्ट और शोक के साथ महमूद के प्राण त्याग देने पर 'गोरदेश' निवासी कोई शहाबुद्दीन नामक यवन पहले गजिनी देश पर आक्रमण करके महमूद (गजनवी) के वंशजों को धर्मराज के लोक का पथिक बनाकर, सभी प्रजाजनों को पशुओं के समान मार कर, उन्हीं के रुधिर से गीली मिट्टी से गोरदेश में बहुत से घर बना कर, चतुरङ्गिणी सेना के साथ भारतवर्ष में प्रवेश करके शीतल रक्त वाले अर्थात् युद्ध की इच्छा न करने वाले भारतीयों को भी तलवार का निशाना बनाते हुए 1250 में दिल्ली को अश्वारोहियों से घेर लिया।

तत्पश्चात् दिल्ली के राजा पृथ्वीराज और कन्नौज के राजा जयचन्द को पारस्परिक विरोधज्वर से ग्रस्त, राजनीति से विस्मृत हुआ जानकर तथा भारतवर्ष पर आने वाले दुर्भाग्य को समझकर, अनायास ही दोनों को (पृथ्वीराज एवं जयचन्द को) मार कर, वाराणसी तक अखण्ड, निष्कण्टक तथा कीट और मल से रहित, महारत्न के समान इस महाराज्य दिल्ली को अपने अधिकार में कर लिया। उसने वाराणसी में भी हड्डियों के अनेक पहाड़ बना दिए। चंचल तंरगों वाली गंगा को भी रक्त के रंग से लाल वर्ण का कर दिया और हजारों देव–मन्दिरों को धूल में मिला दिया।

विशेषः–

(1) पराजित हिन्दूओं की दुर्दशा के साथ ही महमूद गजनवी की क्रूरता और हठता का वर्णन किया गया है।

(2) "पशुमारम् मारयित्वा" में "लुप्तोपमालंकार" हैं।

(3) लेखक ने काल–क्रम से भाग्यचक्र के परिवर्तन का संकेत किया है –

"चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः।"

(4) "महारत्नमिव" में "उपमा अलंकार" है।

(5) "अस्थिगिरयः" में अस्थिनिचय पर पर्वत का आरोप होने से "रूपक अलंकार" है।

(6) "रिंगत्तरंगभङ्गा गङ्गाऽपि शोणितशोणा शोणीकृता, परस्सहस्त्राणि च देवमन्दिराणि" – में "अनुप्रास" का सुन्दर सन्निवेश है।

(7) हिन्दूओं के पराजय का सबसे मुख्य कारण आपसी कलह तथा वैमनस्य ही था। आपसी विरोधभाव विनाश का कारण होता है।

3.5.1 व्याकरणात्मक टिप्पणीः–

(1) पराजिता – पर + आ + √जि + क्त।

(2) बन्दीकृता – बन्द + च्वि + √कृ + क्त।

(3) पातय – पत् + णिच् + लोट्।

(4) अकिञ्चित्करीम् – किञ्चित्करोति इति किञ्चित्करी, न किञ्चित्करी इति अकिञ्चित्करी, ताम्।

(5) सुवर्णकोटिद्वयम् – कोटीनां द्वयम् इति कोटिद्वयम्, सुवर्णस्य कोटिद्वयम् इति (तत्पुरुष)।

(6) गदापातसमकालमेव – गदायाः पातः तस्य समकालम्।

(7) दग्धमुखः – दग्धम् मुखम् यस्य सः।

(8) कमेलकपृष्ठेषु – क्रमेलकानां पृष्ठेषु इति (तत्पुरुष)।

(9) धर्मराजलोकध्वनि – धर्मराजस्य लोकः तस्य अध्वनि (तत्पुरुष)।

(10) तद्रुधिरार्द्रमृदा – तेषां रुधिरेण आद्रा मृत् तया (तत्पुरुष)

(11) अनीकिन्या – अनीकाः सन्ति अस्यामिति अनीकिनी, तया;।

(12) शीतलशोणितान् – शीतलं शोणितम् येषां तान्। (बहुव्रीहि)

(13) पारस्परिकविरोधज्वरग्रस्तम् – पारस्परिकः विरोधः एव ज्वरः तेन ग्रस्ता तम् (तत्पुरुष)।

(14) विस्मृतराजनीतिम् – विस्मृता राजनीतिः येन तम्।

(15) अकण्टकम् – नास्ति कण्टकाः यस्मिन् तत्।

(16) रिङ्गत्तरगभङ्गा – रिङ्गन्तः तरङ्गाः, तेषां भङ्गाः यस्या सा (बहुव्रीहि)।

3.6 गद्य–शैली की विशेषताएँ –

लौकिक गद्य का सर्वप्रथम दर्शन हमें दण्डी, सुबन्धु और बाण की रचनाओं में मिलता है। इनकी रचनाओं का गद्य अत्यन्त विकसित रूप में प्राप्त होता है। अतः निश्चय ही ये गद्य–काव्य के चरमोत्कर्ष के प्रतीक हैं। संस्कृत गद्य–काव्य का समृद्धियुग गद्यकाव्यकार दण्डी, सुबन्धु और बाण का युग माना जाता है। इन्होंने संस्कृत गद्य–काव्य को अपनी उत्कृष्ट गद्यात्मक रचनाओं से चरम उन्नति प्रदान की।

आधुनिक युग के प्रमुख गद्य–कवि अम्बिकादत्त व्यास हैं जिन्होंने क्षत्रपति शिवाजी के जीवन को आधार बना कर "शिवराजविजय" उपन्यास की रचना की। व्यास जी का गद्य दण्डी, सुबन्धु और बाणभट्ट तीनों से प्रभावित है। गद्य साहित्य की मुख्यतः दो धाराएँ उपलब्ध होती हैं:–

(क) कथा या आख्यान साहित्य – (नीतिपरक कथासाहित्य)

(ख) गद्यकाव्य की विधायें – (काव्यपरक कथासाहित्य)

काव्यपरक कथा साहित्य – चार रूपों में प्राप्त होता है–

(1) कथा, (2) आख्यायिका, (3) लघुकथा और (4) उपन्यास।

कथा – कवि–कल्पित होती है।

आख्यायिका – ऐतिहासिक इतिवृत्त पर अवलम्बित होती है।

लघुकथा – गद्य में ही सरस वस्तु का निर्माण हो।

उपन्यास – नई काव्यरीति कहा जा सकता है।

अर्वाचीन गद्य की धाराओं में उपन्यास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। संस्कृत–साहित्य का सर्वप्रथम उपन्यास अम्बिकादत्त व्यास द्वारा विरचित "शिवराजविजय" है। "शिवराजविजय" संस्कृत गद्य–साहित्य में अन्यतम

स्थान रखता है।

3.6.1 भाषा–शैली :– "शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्" – अर्थात् अर्थ काव्य की आत्मा है तो शब्द या शैली काव्य का शरीर। मनोगत भावों को परहृदय – संवेद्य बनाने का प्रमुख साधन भाषा है और भाषा की क्रमबद्धता या रचना–विधान को शैली भी कहा जाता है। अतः भाव की मनोहरता, स्थिरता और सूक्ष्मता शैली पर ही निर्भर होती है।

"शिवराजविजय" की भाषा सरल, सुबोध एवं स्पष्ट है। "शिवराजविजय" में उचित शब्दावलियों का प्रयोग, अर्थपूर्ण वाक्य–विन्यास तथा अवसर के अनुकूल कोमल तथा कठोर वर्णों का प्रयोग किया गया है। व्यास जी ने अवसर के अनुकूल एक ओर दीर्घ समासबहुला पदावली का प्रयोग किया है तो दूसरी ओर सरल लघु पदावली का। "शिवराजविजय" में व्यास जी ने "पाञ्चाली" रीति का प्रयोग किया है। उदाहरणतया–

दीर्घ–समास पदावलीः– अफजल खाँ के शिविर का वर्णन करते समय कहते हैं –

इतस्तु स्वतन्त्र यवनकुल–भुज्यमान–विजयपुराधीश–प्रेषितः पुण्यनगरस्य समीपे एव प्रक्षालित–गण्डशैल–मण्डलायाः निर्झरवारि–धारा–पूर–पूरित–प्रबल– प्रवाहायाः।

लघु–समास शैलीः– एष भगवान् मणिराकाशमण्डलस्य, चक्रवर्ती खेचरचक्रस्य, कुण्डलमाखलदिशः, दीपको ब्रह्माण्डभागस्य, प्रेयान् पुण्डरीकपटलस्य, शोकविमोकः कोकलोकस्य अवलम्बो रोलकदम्बस्य, सूत्रधारः सर्वव्यवहारस्य, इनश्च दिनस्य।

भाषा पर व्यासजी का पूर्ण अधिकार था और भावाभिव्यक्ति की पूर्ण क्षमता थी। "शिवराजविजय" के अवलोकन से स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने भाषा और शैली का प्रयोग मनोभावों के अनुसार ही किया है।

3.6.2 अलंकार–योजना :– कविता–कामिनी का शृङ्गार है–अलंकारयोजना। जिस प्रकार आभूषण से नारी का सौन्दर्य बढ़ जाता है उसी प्रकार अलंकार से काव्य का भी चमत्कार एवं हृदयसंवेद्यता बढ़ जाती है। अलंकार के अभाव में काव्य अपनी पूर्णता को प्राप्त करने में कभी भी समर्थ नहीं हो सकता। व्यास जी ने "शिवराजविजय" में अनुकूल एवं समुचित अलंकारों का संयोजन किया है। उन्होंने शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का सावसर प्रयोग किया है। उदाहरणतया –

अनुप्रास अलंकारः–

(अ) "भामिनी–भ्रू भङ्गभूरिभाव प्रभाव–पराभूतवैभवेषु भटेषु"।

(ब) "चञ्चचन्द्रहास–चमत्कार–चाकचक्यचिल्लीभूत–चक्षुष्का"।

यमक अलंकार :– "विलक्षणोऽयं भगवान् सकलकलाकलापकलनः सकलकालनः करालः कालः।"

उत्प्रेक्षा अलंकार :– "गगनसागरमीने इव, मनोजमनोज्ञहंसे इव, विरहिनिव.न्तेन रौप्यकुन्तप्रांते इव, पुण्डरीकाक्षपत्नीकरपुण्डरीकपत्रे इव।"

उपमा अलंकार :– "सेयं वर्णेन सुवर्णम्, कलरवेण पुंस्कोकिलान्, केशैरोलम्बकदम्बान्, ललाटेन कलाधरकलाम् लोचनाभ्याम् खञ्जनान्, अधरेण बन्धुजीवम्, हासेन ज्योत्स्नाम्।"

इसके अतिरिक्त दीपक, श्लेष, रूपक, उदात्त, यथासंख्य आदि अलंकारों की भी योजना की है।

3.6.3 रस–योजना :– "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" के अनुसार रस ही काव्य की आत्मा है। "शिवराजविजय" का प्रधान रस है "वीर"। शिवाजी के शौर्य का जो अद्भुत वर्णन किया गया हैं, वह अत्यन्त स्पृहणीय है। "शिवराजविजय" में वीर रस का प्रयोग मुख्यतः किया गया है।

यथा –

वीर रस :– "को नामापरः शिववीरात् ? स एव राजनीतौ निष्णातः, स एव सैन्धवारोहविद्यासिन्धुः, स एव चन्द्रहासचालनेचतुरः, स एव मल्लविद्यामर्मज्ञ, स एव बाणविद्यावारिधिः, स एव वीरवारवरः पुरुषपौरुष परीक्षकः, स एव दीनदुःखदावदहनः, स एव स्वधर्मरक्षणसक्षणः।"

शृङ्गार रस :– "सा चावलोक्य तमेव पूर्वावलोकितं युवानम्, वीराभरमन्थरापि ताताज्ञया बलादिवप्रेरिता ग्रीवां नमयन्ती" आत्मनाऽऽत्मन्येव निविशमाना स्वपादाग्रमेवालोकयन्ती मोदकभाजनसमाजितं सव्येतरं करं तदग्रे प्रसारयत्।

कहीं–कहीं करुण रस एवं वात्सल्य रस का भी हृदयग्राही चित्रण किया गया है। इस प्रकार व्यास जी द्वारा रस–योजना अत्यन्त परिपक्व और साधिकार है, मुख्यतः वीररस का चित्रण करते समय इसमें सभी रस यत्किंचिद् रूप में उपलब्ध होते हैं।

3.6.4 वस्तु एवं प्रकृति का चित्रण :– हृदयग्राही मार्मिक भावों की अभिव्यंजना ही काव्य की सफलता है। वस्तुघटना, भाव या दृश्य याथातथ्येन वर्णन करना ही कवि की विशेषता है। इसमें व्यास जी अत्यन्त निपुण और बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। आश्रम की शोभा का वर्णन करते हुए प्रकृति–चित्रण द्वारा कवि कहता है कि –

"कदलीदलकुञ्जायितस्य एतत्कुटीरस्य समन्तात् पुष्पवाटिका, पूर्वतः परमपवित्रपानीयं परस्सहस्रपुण्डरीकपटलपरिलसितं पतत्रिकुलकूजितपूजितं पयःपूर–पूरितं सर आसीत्। दक्षिणतश्चैको निर्झरझर्झर–ध्वनि–ध्वनित–दिगन्तरः, फलपटलाऽऽस्वादनचपलित–चञ्चुपतङ्गकुलाऽऽक्रमणा–धिकविनतशाखशाखि– समूहव्याप्तः सुन्दरकन्दरः पर्वतखण्ड आसीत्।"

व्यास जी रात्रि की नीरवता, झञ्झावात के चित्रण, प्रकृति के कठोर एव कोमल मनोहारी चित्रण के साथ–साथ अन्य वस्तुओं के वर्णन में भी सचेष्ट रहे हैं। वस्तु या दृश्यवर्णन की कुशलता व्यास जी में कूट–कूट कर भरी है।

3.6.5 चरित्र–चित्रण :– उपन्यास में चरित्र–चित्रण का विशेष स्थान होता है। काव्य की सफलता अधिकांश रूप में चरित्र–चित्रण पर निर्भर होती है। पं. व्यास जी अपने "शिवराजविजय" में सभी पात्रों के चरित्राङ्कन में विशेष सफल हुए हैं। आश्रमवासी ब्रह्मचारी गुरु, गौरबटु तथा योगिराज आदि का वर्णन अत्यन्त सरल एवं स्पष्ट है। महाराष्ट्रकेसरि वीर शिवाजी, रघुवीर सिंह तथा अफजल खाँ आदि के चित्रण में व्यास जी ने अत्यन्त वास्तविकता और स्वाभाविकता का आश्रय लिया है। शिवाजी के आतंककारी वीरता का वर्णन करते हुए व्यास जी ने लिखा है –

"कथं वा आगत एष शिववीरः इति भ्रमेणापि सम्भाव्य अस्य विरोधिषु केचन मूर्च्छिता निपतन्ति, अन्ये विस्मृतशस्त्रास्त्राः पलायन्ते, इतरे महात्रासा कुञ्चितोदरा विशिथिल वाससो नग्ना भवन्ति, अपरे च शुष्कमुखा दशनेषु तृणं सन्धाय साग्रेडम् प्रणिपातपरम्परा रचयन्तो जीवनं याचन्ते।"

व्यास जी ने अफजल खाँ के सैनिकों की कायरता, भयाकुलता तथा अत्याचारों का चरित्र–चित्रण किया है। अन्य जितने भी उपन्यास के पात्र हैं, उन सभी का चरित्र व्यास जी ने अपनी प्रतिभा लेखनी से अत्यन्त जीवन्त रूप में चित्रित किया है।

अस्तु, "शिवराजविजय" भाषा और भाव दोनों ही दृष्टि से एक उत्तम कोटि का काव्य कहा जा सकता है। इसमें प्रतिभा की प्रौढता, कल्पना की सूक्ष्मता, अनुभव की गहनता, अभिव्यक्ति की स्पष्टता, भावों की यथार्थता और रमणीयता, पदावलियों की मधुरता, कथानक की प्रवाहमयता, आदर्श की स्थापना, शिव की भावना और सुन्दर की सुन्दरता निहित है। उपन्यास की दृष्टि से भी कथानक, पात्र, घटना, संवाद, अन्तर्द्वन्द्व, आकांक्षा आदि तत्त्वों से पूर्ण है और "गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति" की कसौटी पर खरा उतरता है।

3.7 शब्दावलीः–

(1)	मा भैषीः	–	मत डरो।
(2)	क्रोडे	–	गोद में।
(3)	मुग्धतया	–	बालस्वभाव के कारण।
(4)	अतिमन्दस्वरा	–	अत्यन्त मन्द स्वरों वाली।
(5)	रुद्धकण्ठा	–	रुँधे हुए गले वाली।
(6)	यवनतनयः	–	मुसलमान का पुत्र।
(7)	विभीषकया	–	भय से।
(8)	वनान्तात्	–	जंगल के किनारे से।
(9)	पातकमयः	–	पापमय।
(10)	वीथीषु	–	मार्गों में।
(11)	भ्रंशयित्वा	–	नष्ट करके।
(12)	गृहनिपातः	–	घरों का विध्वंस।
(13)	शकान्	–	शकवंशी, राजाओं को।
(14)	निनादः	–	ध्वनि।
(15)	सर्वेषु स्तब्धेषु	–	सभी के शान्त हो जाने पर।
(16)	तेजः पुञ्जम्	–	चन्द्रमण्डल चक्र से सम्बद्ध महाप्रकाश को।
(17)	अविगणय्य	–	तिरस्कार करके।
(18)	सान्द्रता	–	गहनता, सघनता।
(19)	मृत्युञ्जयैः	–	मृत्यु को जीतने वाले।
(20)	समयवेगः	–	कालचक्र को।
(21)	धर्मध्वंसनधीयः	–	धर्म के विध्वंस की कथाओं से।
(22)	प्रमृज्य	–	पोंछकर।
(23)	लोहसारमयम्	–	लोहे का बना हुआ।
(24)	भस्मसात्	–	राख के समान।
(25)	आर्यवंश्यान्	–	आर्यवंश में उत्पन्न होने वाले।
(26)	उपक्रमम्	–	भूमिका को।
(27)	सकलानर्थमयः	–	सम्पूर्ण अनर्थों से युक्त।
(28)	जिग्लापयिषामि	–	मलिन करना चाहता हूँ।
(29)	सकलकालनः	–	सभी को नष्ट करने वाला।
(30)	मस्करोति	–	मरुस्थल के समान कर देता है।
(31)	पयःपूरपूरितानि	–	जलप्रवाह से पूर्ण।

(32) यायजूकैः – याजिकों के द्वारा।

(33) व्ययाजिषत – सम्पादित किये जाते थे।

(34) मन्दुरीक्रियन्ते – घुड़साल बनाये जा रहे हैं।

(35) आकलय्य – धारण करके।

(36) सनाथितवति – सनाथित होने पर।

(37) महामदः – महामदशाली अर्थात् महमूद।

(38) विभिद्य – भेदन करके।

(39) अनैषीत – ले गया।

(40) पौनः पुन्येन – बार–बार करके। पुनः पुनः।

(41) धूलीचकार – धूलि में मिला दिया।

(42) लोकोत्तरम् – अति–प्रचुर।

(43) भित्तीः – दीवारों को।

(44) विकङ्गानि – कबूतरों के दरबों को।

(45) प्रसह्य – बलपूर्वक।

(46) सञ्चितम् – सञ्चय किया।

(47) शाम्यति – शान्त होता है।

(48) मा स्प्राक्षीः – मत छुओ।

(49) विलुण्ठत्सु – भूमि में लेटने पर।

(50) उत्तीर्य – उतरकर।

(51) विजयध्वजिनीम् – विजयपताका से युक्त।

(52) आक्रम्य – आक्रमण करके।

(53) अध्वनीनम् – पथिक को।

(54) अनीकिन्या – सेना के साथ।

(55) असयन् – तलवार से मारना।

(56) महारत्नमिव – महारत्न के समान।

(57) प्रचिताः – बना दिये गये।

(58) देवमन्दिराणि – देवताओं के मन्दिरों को।

3.8 सारांश

"शिवराजविजय" एक ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें वर्णित कथा ऐतिहासिक है, किन्तु व्यास जी ने अपनी प्रतिभा और कल्पना के सहारे उसे उच्च कोटि की साहित्यिकता प्रदान कर दी है। कथा अधिकांश रूप में मौलिक होते हुये भी उसमें साहित्यिक कल्पना का समावेश है। इसमें कथावस्तु की संघटना प्राच्य और पाश्चात्य शिल्प के समन्वय से की गई है। यद्यपि इसमें दो स्वतन्त्र धाराएं समानान्तर रूप से प्रवाहित होती हैं – एक के नायक शिवाजी हैं, तो दूसरे के नायक रघुवीरसिंह हैं, तथापि एक दूसरे से

पूर्ण स्वतन्त्र और निरपेक्ष नहीं है। एक–दूसरे के पूरक हैं। एक का महत्त्व दूसरे से उद्‌भासित होता है। अतः दोनों परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। कथा में इतना प्रवाह और सम्प्रेषणीयता है कि पाठक की आकांक्षा उत्तरोत्तर वृद्धिगत होती जाती है।

"शिवराजविजय" में इतिहास और कल्पना, आदर्श और यथार्थ, अनुभव और कल्पना का सुन्दर समन्वय है। "शिवराजविजय" में वर्णित समाज की स्थिति को निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर प्रस्तुत किया जा सकता है :–

(1) **सूर्योपासना** :– पं. व्यास जी ने शिवराजविजय में मुगलकालीन समाज का सुन्दर चित्रण किया है। उस समय के लोग सूर्य के उपासक थे। सूर्य के लिए अनेक विशेषण प्रयुक्त हुए हैं। जैसे – आकाशमण्डल के मणि, नक्षत्रसमूह के सम्राट, पूर्व दिशा के कुण्डल, ब्रह्माण्ड–रूपी घर के दीपक आदि। अतः सर्वजन (विश्व) के द्वारा प्रणाम करने योग्य है।

(2) **आश्रमव्यवस्था तथा गुरुशिष्य–सम्बन्ध** :– तत्कालीन समाज में सुन्दर आश्रमव्यवस्था थी। गुरुकुलपरम्परा में शिष्यगण आचार्य के समीप रहकर विद्याध्ययन करते थे। आश्रम नदी या तालाब के समीप होते थे।

(3) **योगसाधना तथा तपस्या** :– तत्कालीन समाज में समाधि का अत्यन्त महत्त्व था, अनेक ऐसे ऋषि थे जो हजारों वर्षों तक तपस्या में लीन रहते थे। स्वयं योगिराज भी युधिष्ठिर के समय समाधि लगाकर विक्रमादित्य के समयकाल में जागृत हुए थे। वस्तुतः जो व्यक्ति सिद्धासन बाँध कर, प्राणायाम, कुण्डिलिनी–जागरण और इन्द्रिय–संयम से परमात्मा का साक्षात्कार करता है उसे कालावधि का ज्ञान नहीं होता।

(4) **धार्मिक–स्थलों की दुर्दशा** :– मुगलकालीन समाज में मन्दिरों में जय–जयकार की ध्वनि पर प्रतिबन्ध लगाया जाता था। मठों तथा आश्रमों में वेदोच्चारण पर रोक थी। वेदों को फाड़ कर मार्गों में फेंक दिया जाता था। पुराणों तथा भाष्यग्रन्थों को नष्ट करके अग्नि में जलाया जाता था। मन्दिर तथा तुलसी के पौधों को नष्ट कर दिया जाता था।

(5) **राजनीतिक दशा** :– मुगलकालीन समाज में भारतीय राजाओं में परस्पर वैमनस्य था। मन्त्रियों द्वारा स्वार्थ–सिद्धि की चिन्ता करना प्रारम्भ कर दिया गया। दिल्ली के राजा पृथ्वीराज और कन्नौज के राजा जयचन्द का पारस्परिक राजनीतिक विरोध ही था जिसके कारण गोरदेश–निवासी शहाबुद्दीन नामक यवन ने दोनों को मार कर, वाराणसी तक अखण्ड, निष्कण्टक तथा कीट और मल से रहित, महारत्न के समान भारतवर्ष के साम्राज्य को अपने अधिकार में कर लिया।

स्त्री–दशा, सामाजिक दशा तथा मुस्लिम शासकों के नैतिक पतन आदि के वर्णन की दृष्टि से "शिवराजविजय" अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथ पठनीय उपन्यास है।

3.9 बोध–प्रश्न –

(1) ब्रह्मचारी गुरु के समीप लायी गई बालिका किसकी पुत्री थी ?

(अ) क्षत्रिय (ब) ब्राह्मण (स) वैश्य (द) शूद्र

(2) वीर–विक्रम को भारत भूमि छोड़कर गये हुए कितना समय व्यतीत हो गया था ?

(अ) 1300 वर्ष (ब) 1500 वर्ष (स) 1700 वर्ष (द) 500 वर्ष

(3) "सकलकलाकलापकलनः सकलकालनः करालः कालः" प्रस्तुत अंश में कौनसा अलंकार है :–

(अ) यमक (ब) श्लेष (स) अनुप्रास (द) उत्प्रेक्षा

(4) गुजरात देश (प्रान्त) के आभूषण रूप सोमनाथ मन्दिर को किसने तोड़ा था ?

(अ) शहाबुद्दीन (ब) महमूद गजनवी (स) अफजल खाँ (द) कुतुबुद्दीन

(5) भयाकुला बालिका का स्वाभाविक चित्रण प्रस्तुत कीजिये ?

(6) समाध्यवस्था की व्यावहारिक प्रक्रियाओं का वर्णन कीजिये ?

(7) भारतवर्ष की दुर्दशा का वर्णन करते समय ब्रह्मचारी गुरु की कैसी दशा हो गयी थी ?

(8) भारतवर्ष की दुर्दशा का मुख्य कारण क्या था ?

(9) सोमनाथ–मन्दिर के वैभव का वर्णन कीजिये ?

(10) भगवान् सोमनाथ महादेव की मूर्ति को तोड़ने से बचाने के लिए पुजारियों ने क्या–क्या प्रयास किये ?

(11) निम्नलिखित गद्यांशों का सप्रसंग हिन्दी अनुवाद कीजिये :–

(अ) एनां च सुन्दरीमाकलय्य ..... तावदस्मच्छात्रेणैवाऽनीतेन।

(ब) महात्मन् ! क्वाधुना विक्रमराज्यम् ?.....श्रूयतेऽवलोक्यते च परितः।

(स) तत्संश्रुत्य रतवर्षीयदशासंस्मरण.....आर्य्यवंश्यांश्चाभिमन्यामहे–।

(द) अथ कालक्रमेण ..... दिल्लीमश्वयाम्बभूव।

3.10 कतिपय उपयोगी पुस्तकें –

(1) शिवराजविजयः (प्रथमो विरामः) – श्रीरामजी पाण्डेय शास्त्री, व्यास–पुस्तकालय, वाराणसी।

(2) "शिवराजविजय" – डॉ. देवनारायण मिश्र, साहित्य–भण्डार, मेरठ।

(3) "शिवराजविजय" – डॉ. रूपनारायण त्रिपाठी, हंसा–प्रकाशन, जयपुर।

(4) संस्कृत साहित्य का इतिहास – पं. बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा–प्रकाशन, वाराणसी।

3.11 बोध–प्रश्नों के उत्तर –

(1) ब

(2) स

(3) अ

(4) ब

(5) द्रष्टव्य भाग–संख्या – 3.2

(6) द्रष्टव्य भाग–संख्या – 3.3

(7) द्रष्टव्य भाग–संख्या – 3.4

(8) द्रष्टव्य भाग–संख्या – 3.4

(9) द्रष्टव्य भाग–संख्या – 3.4

(10) द्रष्टव्य भाग–संख्या – 3.5

(11) (अ) द्रष्टव्य भाग–संख्या – 3.2

(ब) द्रष्टव्य भाग–संख्या – 3.2

(स) द्रष्टव्य भाग–संख्या – 3.3

(द) द्रष्टव्य भाग–संख्या – 3.5

इकाई –4

शिवराजविजयः (प्रथमनिश्वासः)

''स एव प्राधान्येन भारते....'' से प्रारम्भ कर ''.....पत्रमेकमादाय सगणः स्वकुटीरं प्रविवेश।'' पर्यन्त अंश का हिन्दी में सप्रसङ्ग अनुवाद, व्याकरण–सम्बन्धी टिप्पणी तथा गद्य शैली की विशेषता

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 निर्धारित अंशों का हिन्दी में सप्रसंग अनुवाद

4.3 अम्बिकादत्त व्यास की गद्यशैली का वैशिष्ट्य

4.4 सारांश

4.5 शब्दावली

4.6 बोध–प्रश्न

4.7 उपयोगी पुस्तकें

4.8 बोध–प्रश्नों के उत्तर

4.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में साहित्याचार्य पं. अम्बिकादत्त व्यास द्वारा रचित 'शिवराजविजय' के निर्धारित व्याख्या स्थलों का हिन्दी में सप्रंसग अनुवाद, उस स्थल में आये शब्दों की व्याकरण सम्बंधी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। पं. अम्बिकादत्त व्यास ने 'शिवराजविजय' की रचना 1870 ई. में की। यह उनकी मौलिक कृति है। 'शिवराजविजय' के अध्ययन से आप इसकी ऐतिहासिकता तथा तत्कालीन देश की दुर्दशा के विषय में भी ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

इस इकाई में निर्धारित अंशों के अध्ययन के आधार पर आप पं. अम्बिकादत्त व्यास की गद्य शैली, उनकी मौलिकता, भाषा के रचना विधान तथा उनकी भाषागत प्रौढ़ता के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। पं. अम्बिकादत्त व्यास आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य के श्रेष्ठ कवि तथा संस्कृत में उपन्यास शैली के प्रतिष्ठापक आचार्य हैं। संस्कृत गद्य को नवीनता व मौलिकता प्रधान करना तथा ऐतिहासिक घटनाओं के साथ कवि कल्पना का सुन्दर सामञ्जस्य शिवराजविजय में देखने को मिलेगा। इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य पं. अम्बिकादत्त व्यास की गद्य शैली का परिचय कराना है।

4.2 'शिवराजविजय' के निर्धारित अंशों की व्याख्या

पं. अम्बिकादत्त व्यास द्वारा रचित शिवराजविजय एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास है। इससे पूर्व संस्कृत में गद्य शैली में कथा व आख्यायिका दोनों विधायें लिखी जाती रही है। कथानक के नायक के रूप में शिवाजी देश, जाति व धर्म के उद्धारक के रूप में विशेष रूप से आदृत है। इस उपन्यास में

तत्कालीन भारत की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए शिवाजी का नायक के रूप में चित्रण किया गया है।

<u>गद्यांश संख्या–1</u>

स एव प्रधान्येन भारते यावनराज्याङ्कुराऽऽरोपकोऽभूत्। तस्यैव च कश्चित् क्रीतदासः कुतुबुद्दीननामा प्रथमभारतसम्राट् संजातः।

तमारभ्याद्यावधि राक्षसा एव राज्यमकार्षुः। दानवा एव च दीनानदीदलन्। अभूत केवलम् अकबरशाह नामा यद्यपि गूढ शत्रुभारतवर्षस्य तथापि शान्तिप्रियो विद्वत्प्रियश्च अस्यैव प्रपौत्रो मूर्तिमदिव कलियुगः, गृहीतविग्रह इव चाधर्मः, आलमगीरोपाधिधारी अवरंगजीवः सम्प्रति दिल्लीवल्लभतां कलंकयति। अस्यैव पताकाः केकयेषु मत्स्येषु मगधेषु अंगेषु बंगेषु कलिंगेषु च दोधूयन्ते, केवलं दक्षिणदेशेऽधुनाऽप्यस्य परिपूर्णो नाधिकारः संवृत्तः।

संदर्भ – प्रस्तुत गद्यांश साहित्याचार्य पं. अम्बिकादत्त व्यास कृत 'शिवराजविजय' से उद्धृत है। व्यास जी आधुनिक संस्कृत साहित्य में उपन्यास शैली के प्रतिष्ठापक आचार्य हैं। उन्होंने अपनी प्रतिभा से शिवाजी जैसे ऐतिहासिक पात्र को साहित्यिकता प्रदान की है।

प्रसंग – शिवाजी के पूर्व भारत की बहुत दुर्दशा थी। भारतीय नरेशों की परस्पर फूट तथा आपसी विरोध के कारण भारत में यवन साम्राज्य का बीजारोपण हो चुका था। यवनों ने अपनी क्रूरता के कारण भारतीयों पर अनेक अत्याचार किये। इस अंश में यवनों की राक्षसवृत्ति का ही वर्णन है।

अनुवाद – उसी (शाहाबुद्दीन) ने मुख्यतः भारत में यवन राज्य का बीजारोपण किया। उसी का कोई कुतुबुद्दीन नाम का गुलाम भारत का प्रथम यवन सम्राट हुआ।

उससे लेकर आज तक राक्षसों ने ही राज्य किया। दानवों ने ही दीनों की निर्मम हत्या की। केवल अकबर नाम का यद्यपि वह भी भारतवर्ष का गुप्त शत्रु था, तथापि शान्ति प्रिय और विद्वानों का आदर करने वाला था। उसी का प्रपौत्र 'आलमगीर' उपाधि धारण करने वाला 'औरंगजेब' जो मूर्तिमान कलयुग के समान, साक्षात् शरीरधारी अधर्म के समान वर्तमान में दिल्ली के शासकपद को कलंकित कर रहा है। इसी की पताकाएँ केकय (पंजाब) मत्स्य (राजपूताना) मगध (दक्षिण बिहार) अंग (पूर्वी बिहार) बंग (बंगाल) और कलिंग (उड़ीसा) में आज तक फहर रही हैं, केवल दक्षिण देश ही ऐसा है जहाँ अभी इसका पूरा अधिकार नहीं हुआ है, अर्थात् भारतवर्ष के तत्कालीन राजाओं की फूट का फायदा उठाकर भारत के सम्पूर्ण प्रान्तों पर यवनों ने अपना अधिकार कर लिया था सिर्फ दक्षिण देश ही बचा था जिस पर अभी यवनों ने अपना अधिकार नहीं किया था।

व्याकरण–सम्बंधी टिप्पणी–

1. यावनराज्याङ्कुराऽऽरोपकः–यवनानां राज्यं तस्य अङ्कुरः, तस्य आरोपकः (तत्पुरूष समास)
2. केकयेषु – पंजाब में झेलम व चनाब के बीच के भाग को केकय देश कहा जाता है। यह भरत माता कैकेयी की जन्मभूमि है। यवन काल में इसे 'जलालपुर' कहा जाने लगा।
3. मत्स्येषु – इन्द्रप्रस्थ के पश्चिम, दृषद्वती से दक्षिण रेगिस्तान के पूर्व का मत्स्य देश कहलाता है। वर्तमान में इसे राजपूताना या राजस्थान कहते है।
4. मगधेषु – दक्षिण बिहार में (गया आदि का भाग)
5. अंगेषु – पूर्वी बिहार (भागलपुर) में
6. बंगेषु – बंगाल में

7. कलिंगेषु – कलिंग में (वर्तमान नाम उड़ीसा है)

8. अदीदलन् – दल् + लुङ् (झि)

9. अभूत् – भू + लुङ्

10. शान्तिप्रियः – शान्तिः प्रिया यस्यै सः (बहुब्रीहि)

11. विद्वत्प्रियः – विद्वांसः प्रियाः यस्य सः (बहुब्रीहि)

12. गृहीतविग्रहः – गृहीतः विग्रहः येन सः (बहुब्रीहि)

13. अवरंगजीवः – औरंगजेब

14. सञ्जातः – सम् + जन् + क्त।

विशेष – मूर्तिमिव कलियुगम्–मानो कलियुग की मूर्ति हो। यहाँ संभावनात्मक वर्णन होने से उत्प्रेक्षा अलंकार है। गृहीत विग्रह इव चाधर्मः – यहाँ भी अधर्म के शरीर धारण की सम्भावना होने से उत्प्रेक्षा अलंकार है। उपर्युक्त गद्यांश में भारतवर्ष के तत्कालीन प्रान्तों व राज्यों के नामों का उल्लेख है।

<u>गद्यांश संख्या–2</u>

दक्षिणदेशो हि पर्वतबहुलोऽस्ति अरण्यानीसप्रुलश्चास्तीति चिरोद्योगेनापि नायमशकन्महाराष्ट्र– केसरिणो हस्तयितुम्। साम्प्रतमस्यैवाऽऽत्मीयो दक्षिणदेशे–शासकत्वेन 'शास्तिखान' नामा प्रेष्यत इति श्रूयते। महाराष्ट्रदेशरत्नम्, यवन– शोणितपिपासाऽऽकुल– कृपाणः,वीरता–सीमान्तिनी– सीमन्त–सुन्दर–सान्द्र–सिन्दूर–दान–देदीप्यमान–दोर्दण्डः, मुकुटमणिर्महाराष्ट्राणाम्, भूषणं भटानाम्–,निधिर्नीतीनाम – कुलभवनं कौशलानाम, पारावार परमोत्साहानाम्, कश्चन् प्रातः स्मरणीयः, स्वधर्माऽऽग्रह – गुह–ग्रहिलः, शिव इव धृतावतारः शिववीरश्चास्मिन् पुण्यनगरान्नेदीयस्येव सिंहदुर्गे ससेनो निवसति। विजयपुराधीश्वरेण साम्प्रतमस्य प्रवृद्ध वैरम्। "कार्यः वा साधयेयं देहं वा पातयेयम्" इत्यस्य सारगर्भा महती प्रतिज्ञा। सतीनाम्, सताम्, त्रैवर्णिकस्य, आर्यकुलस्य, धर्मस्य, भारतवर्षस्य च आशा–सन्तान –वितानस्यायमेवाऽऽश्रयः। इयमेव वर्तमाना दशा भारतवर्षस्य। किमधिकं विनिवेदयामो योगबलावगत–सकल–गोप्यतम– वृत्तान्तेषु योगिराजेषु" इति कथयित्वा विरराम।

संदर्भ – प्रस्तुत गद्यांश साहित्याचार्य पं. अम्बिकादत्त व्यास रचित 'शिवराजविजय' से उद्धृत है। उपन्यास शैली के प्रतिष्ठापक पं. व्यास की यह अभूतपूर्व गद्य रचना है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में कवि ने दक्षिण देश की भौगोलिक स्थिति का वर्णन किया है। पर्वत बहुल होने के कारण औरंगजेब दक्षिण देश पर अधिकार नहीं कर सका इस गद्यांश में ब्रह्मचारी गुरु द्वारा तत्कालीन भारत की दशा तथा मराठों की वीरता का वृतान्त इस प्रकार वर्णित किया गया है।

अनुवाद – दक्षिण देश में पर्वतों की अधिकता तथा घने जंगल होने के कारण बहुत प्रयत्नों के बाद भी औरंगजेब सिंहसदृश मराठों को वश में नहीं कर सका। ऐसा सुना जा रहा है कि अब उसी का सम्बंधी शाइस्ता खाँ दक्षिण देश का शासक बना कर भेजा जा रहा है। महाराष्ट्र देश के रत्न, यवनों के रुधिर की प्यासी तलवार वाले, वीरता रूपी नायिका की मांग में सुन्दर चमकीला सिन्दूर लगाने से देदीप्यमान भुजाओं वाले, मराठों के मुकुटमणि, योद्धाओं के आभूषण, नीतियों के निधान, निपुणताओं के कुलगृह, परम उत्साह के सागर, प्रातः स्मरणीय सनातन धर्म के पालन में दृढ़, अवतार धारण किये हुए शिव के समान महाराज शिवाजी पूना नगर के समीप ही सिंह दुर्ग में सेना सहित रह रहे हैं। इस समय विजयपुर के राजा से उनकी शत्रुता बढ़ी हुई है।

'यह कार्य सिद्ध होगा अथवा शरीर नष्ट होगा' अर्थात् या तो यह कार्य पूरा होगा या मैं शरीर नष्ट कर डालूंगा। इस प्रकार की सारगर्भित उनकी महान् प्रतिज्ञा है।

पतिव्रता स्त्रियों, सज्जनों, द्विजों, आर्यो, धर्म और भारतवर्ष के एकमात्र आधार ये ही हैं। यही भारतवर्ष की वर्तमान दशा है। योगबल से गोपनीय वृत्तान्तों को भी जानने वाले योगिराज से मैं अधिक क्या निवेदन करुं इतना कहकर मुनि चुप हो गये।

व्याकरण सम्बंधी टिप्पणी –

1. अरण्यानी – अरण्य+आनुक्+ङीप्। 'महारण्यमरण्यानी' इत्यमरः।
2. महाराष्ट्रकेसरिणः– महाराष्ट्र के सिंहों अर्थात् मराठों को (यहाँ केसरी शब्द श्रेष्ठतावाचक है।)
3. यवनशोणितपिपासाऽऽकुलितकृपाण :– यवनानां शोणितस्य पिपासया आकुलः कृपाणो यस्य सः (बहुब्रीहि)।
4. वीरता–सीमान्तिनी–सीमन्त–सुन्दर–सान्द्र–सिन्दूर–दान–देदीप्यमान–दोर्दण्ड :– वीरता एवं सीमन्तिनी, तस्याः सीमन्ते सुन्दरं सान्द्रं च यत् सिन्दूरदानं तेन देदीप्यमानो दोर्दण्ड यस्य सः (शिवाजी का विशेषण है) (बहुब्रीहि)।
5. मुकुटमणि :– मुकुटस्य मणिः (ष. तत्पुरूष)।
6. धृतावतार :– धृतः अवतारः येन स (बहुब्रीहि)
7. प्रवृद्धम् :– प्र+वर्ध्+क्त।
8. आशासन्तानवितानस्य – आशायाः सन्तानम् तस्य वितानम् , तस्य (तत्पु.)।
8. योगबलावगतसकलगोप्यतमवृत्तान्तेषु :– योगबलेन अवगतः सकलो गोप्यतमः वृत्तान्तो यैस्तेषु (बहुब्रीहि)।
9. विरराम :– वि+रम्+लिट्।

विशेष – वीरता–सीमान्तिनी–सीमन्त–सुन्दर–सान्द्र– सिन्दूर–दान–देदीप्यमान–दोर्दण्डः यहाँ रुपक श्रुत्यनुप्रास अलंकार है। शिव इव धृतावतार में उत्प्रेक्षालंकार है।

<u>गद्यांश संख्या–3</u>

तदाकर्ण्य विविध–भाव–भंग–भासुर–वदनो योगिराजो मुनिराजं तत्सहचरांश्च निपुणं निरीक्ष्य, तेषामपि शिववीरान्तरंगतामंगीकृत्य, मुनिवेषव्याजेन स्वधर्मरक्षाव्रतिनश्चोररीकृत्य 'विजयतां शिववीरः, सिद्धयन्तु भवतां मनोरथाः' इति मन्दं व्याहार्षीत्।

संदर्भ – प्रस्तुत गद्यांश साहित्याचार्य पं. अम्बिकादत्त व्यास रचित 'शिवराजविजय' से उद्धृत है। उपन्यास शैली के प्रतिष्ठापक पं. व्यास की यह अभूतपूर्व गद्य रचना है।

प्रसंग – जब ब्रह्मचारी के गुरु ने योगिराज को भारत की तत्कालीन स्थिति के विषय में बताया तथा यह भी बताया कि एक दक्षिण प्रान्त ही ऐसा है जहाँ पर यवनों का आधिपत्य नहीं हुआ है तथा औरंगजेब भरसक प्रयत्न करने पर भी शिवाजी को हराने में असमर्थ रहा है।

अनुवाद :– यह वृत्तान्त सुनकर विविध भावों की भंगिमा से दीप्तिमान् मुखवाले योगिराज मुनिराज तथा उनके सहचरों को भली–भाँति देखकर, उनको शिवाजी का अंतरंग सहायक समझकर तथा मुनिवेश के बहाने अपने धर्म की रक्षा के व्रती जानकर "वीर शिवाजी विजयी हों, आप के मनोरथ सिद्ध हो" धीरे से कहा।

व्याकरण–सम्बंधी टिप्पणी –

1. विविधभावभंगभासुरवदनः – विविधाः भावभंगाः तैः भासुरं वदनं यस्य सः (बहुब्रीहि)

2. तत्सहचरान् – सहचरन्तीति सहचराः तान् (तत्पुरुष)

3. अंगीकृत्य – अंग + च्वि + कृ + ल्यप्।

4. मुनिवेषव्याजेन – मुनीनां वेशः तस्य व्याजेन (तत्पुरुष)

5. उरीकृत्य – उरी+च्वि+कृ+ल्यप्।

6. व्याहार्षीत् – वि+आ+हञ्+लुंग।

<u>गद्यांश संख्या–4</u>

अथ "किमपि पिपृच्छिषामीति" शनैरभिधाय बद्धकरसम्पुटे सोत्कण्ठे जटिलमुनौ "अवगतम् यवनयुद्धे विजय एव, दैवादापद्ग्रस्तोऽपि च सखिसहाय्येनाऽऽत्मानमुद्ध– रिष्यति" इति समभाणीत्। मुनिश्च गृहीतमित्युदीर्य, पुनः किञ्चिद् विचार्य्येव, स्मृत्वेव च, दीर्घमुष्णं निःश्वस्य, रोरुध्यमानैरपि किञ्चिदुद्गतैर्वाष्पबिन्दुभिराकुलनयनो "भगवन्। प्रायो दुर्लभो युष्मादृक्षाणां साक्षात्कार इत्यपराऽपि पृच्छाऽऽच्छादयति माम्" इति न्यवेदीत्। स च "आम्! ऊरीकृतम्, जीवति सः, सुखनैवाऽऽस्ते" इत्युदतीतरत्। अथ "तं कदा द्रक्ष्यामि" इति पुनः पृष्टवति "तद्विवाहसमये द्रक्ष्यसि" इत्यभिधाय, बहूनि सान्त्वना– वचनानि च गम्भीर– स्वरेणोक्त्वा, सपदि उपत्यकाम्, गण्डशैलाम् अधित्यकां चाऽऽरुह्य पुनस्तस्मिन्नेव पर्वतकन्दरे तपस्तप्तुं जगाम।

संदर्भ – प्रस्तुत गद्यांश पं. अम्बिका दत्त व्यास विरचित 'शिवराजविजय' के प्रथम निश्वास से उद्धृत है।

प्रसंग – भारत पर यवनों का आधिपत्य हो चुका था परंतु दक्षिण देश में वीर शिवाजी औरंगजेब की दासता स्वीकार न करते हुए उनसे छापामार पद्धति से युद्ध कर रहे थे। प्रस्तुत गद्यांश में जटाधारी मुनि के शिवाजी के बारे में कुछ पूछने पर योगिराज इस प्रकार कहते हैं –

अनुवाद – इसके बाद "मैं कुछ पूछना चाहता हूँ" ऐसा धीरे से कहकर जटाधारी मुनि ने उत्कण्ठापूर्वक हाथ जोड़ने पर योगिराज ने कहा–समझ लिया, यवन युद्ध में (शिवाजी की) विजय होगी दैववश आपत्ति ग्रस्त होकर भी मित्रों की सहायता से अपने को उबार लेंगे। मुनि ने 'ग्रहण कर लिया' ऐसा कहकर फिर कुछ विचार करके, स्मरण सा करके, दीर्घ उष्ण सांस लेकर, रोके जाने पर भी निकल आये आंसुओं से आकुल नेत्र वाले होकर इस प्रकार निवेदन किया–"भगवान्! आप जैसे महात्माओं के दर्शन दुर्लभ होते हैं, अतः एक अन्य प्रश्न भी मुझे उत्सुक कर रहा है।" अर्थात् एक और प्रश्न पूछना चाहता हूँ। योगीराज के हाँ समझ गया, वह जीवित है सुख पूर्वक ही है ऐसा उत्तर दिया। तब मुनि के पुनः पूछने पर कि 'मैं' उसे कब देखूँगा? "उसके विवाह के अवसर पर देखोगे" ऐसा कहकर और बहुत से सान्त्वना वचनों को गंभीर स्वर से कहकर, शीघ्र ही पर्वत की घाटी, पर्वत से घिरे शिलाखण्डों और पर्वत की ऊपरी भूमि पर चढ़कर पुनः उसी पर्वत की गुफा में तपस्या करने चले गये।

व्याकरण–सम्बंधी टिप्पणी

1. पिपृच्छिषामि – प्रष्टुमिच्छामि। पृच्छ्+सन्+लट्।

2. अभिधाय – अभि+धा+ल्यप्।

3. बद्धकायम्पुटे – बद्धः करयोः सम्पुटः येन सः (बहुव्रीहि), तस्मिन्।

4. सोत्कण्ठे – उत्कण्ठया सहितः सोत्कण्ठः, तस्मिन्।

5. जटिलमुनौ – जटिलः मुनिः, तस्मिन्। जटा+इलच्।

6. अवगतम् – अव+गम्+क्त।

7. आपद्ग्रस्तः – आपदि ग्रस्तः (तत्पु.)।

8. उदीर्य–उत्+ईर्+ल्यप्

9. सान्त्वनावचनानि – सान्त्वनायाः वचनानि (तत्पु.)

10. गण्डशैलान्– 'गण्डशैलास्तुच्युताः स्थूलोपला गिरेः इत्यमरः। (पर्वत से गिरे हुए पाषाण खण्ड)

11. अधित्यकाम् – उपत्यकाऽद्रेदासन्ना भूमिरुर्ध्वमधित्यका इत्यमरः (पर्वत की ऊपरी भूमि)।

12. आरुह्य – आ+रुह्+ल्यप्

13. तपस्तप्तुम् – तपः+तप् + तुमुन्

विशेष – प्रस्तुत गद्यांश में प्रश्नोत्तर शैली में सुन्दर संवाद योजना प्रस्तुत की गई है। विचार्य्येव स्मृत्वेव में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

<u>गद्यांश संख्या–5</u>

ततः शनैः शनैर्निर्यातेष्वपरिचितिजनेषु, संवृत्ते च निर्मक्षिके, मुनिर्गौरबटुमाहूय, विजयपुराधीशाऽऽज्ञया शिववीरेण सह योद्धुं ससेनं प्रस्थितस्य अपजलखानस्य विषये यावत् किमपि प्रष्टुमियेष, तावत् पादचारध्वनिमिव कस्याप्यश्रौषीत्। तमवधार्याऽन्यमनस्के इव मुनौ गौरबटुरपि तेनैव ध्वनिना कर्णयोः कृष्ट इव समुत्थाय, निपुणं परितो निरीक्ष्य, पर्य्यट्य, "कोऽयम्?" इति च साम्रेडं व्याहृत्य, कमप्यनवलोक्य, पुनर्निवृत्य, "मन्ये मार्जारः कोऽपि" इति मन्दं गुरवे निवेद्य, पुनस्तथैवोपविवेश। मुनिश्च 'मा स्म कश्चिदितरः श्रौषीत्' इतिसशङ्कः क्षणं विरम्य पुनरुपन्यस्तुमारेभे।

संदर्भ – प्रस्तुत गद्यांश साहित्याचार्य पं. अम्बिकादत्त व्यास रचित 'शिवराजविजय' से उद्धृत है। उपन्यास शैली के प्रतिष्ठापक पं. व्यास की यह अभूतपूर्व गद्य रचना है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में ब्रह्मचारी गुरु तथा गौरसिंह की गुप्त मंत्रणा का उल्लेख है। औरंगजेब की आज्ञा से अफजल खान विशाल सेना लेकर शिवाजी पर आक्रमण करने आया था परन्तु शिवाजी ने उसे अपनी कूटनीति से परास्त कर दिया था।

अनुवाद – उसके बाद धीरे–धीरे अपरिचित लोगों के चले जाने पर और एकान्त हो जाने पर मुनि ने गौरबदु को बुलाकर विजयपुर (बीजापुर) राजा की आज्ञा से वीर शिवाजी के साथ लड़ने के लिए सेना के साथ कूच कर चुके अफजल खान के विषय में कुछ पूछना चाहा कि किसी के पैरों की आहट सुनाई पड़ी। उसे सुनकर मुनि के अन्यमनस्क से हो जाने पर, गौर बटु ने उसी ध्वनि से आकृष्ट होने पर उठकर, चारों ओर अच्छी प्रकार देखकर, घूमकर, कौन है? इस प्रकार बार–बार कहकर, किसी को भी न देखकर पुनः लौटकर ऐसा लगता है कोई बिल्ली है, यह धीरे से गुरुजी से कहकर पुनः वैसे ही बैठ गया। मुनि ने भी कोई दूसरा न सुन ले इस प्रकार आशंका से क्षण भर ठहर कर पुनः कहना आरम्भ किया।

व्याकरण–सम्बंधी टिप्पणी –

1. निर्यातेषु – निर्+या+क्त (सप्तमी)।

2. अपरिचितजनेषु – न परिचितजनः अपरिचित जनः (नञ्तत्पु.) तेषुः "यस्य च भावेन भावलक्षणम्" सूत्र से सप्तमी।

3. निर्मक्षिके – मक्खियों से भी रहित एकान्त। मक्षिकाणां अभावः निर्मक्षिकम् तस्मिन्। (अव्यभीभाव)।

4. आहूय – आ+हू+ल्यप्।

5. विजयपुराधीशाज्ञया – विजयपुरस्य अधीशःतस्यआज्ञा तया (तत्पु.)।

6. योद्धुम् – युध् + तुमुन्।

7. ससेनम् – सेनया सहितम्।

8. प्रष्टुम् प्रच्छ् + तुमुन्।

9. पादचारध्वनिम् – पादयोः चारः तस्य ध्वनिः (तत्पु.) तम्।

10. अवधार्य – अव + धृ + ल्यप्।

11. पर्य्यट्य – परि + अट् + ल्यप्।

12. अनवलोक्य – अन् + अव + लुक् + ल्यप्।

13. विरम्य – वि + रम् + ल्यप्।

14. सशंकः – शंकया सहितः सशंकः।

15. उपन्यस्तुम् – उप + नि+ अस् + तुमुन्।

विशेष – अन्यमनस्के इव मुनौ में उत्प्रेक्षा अलंकार है। औरंगजेब की आज्ञा से अफज़ल खान ने विशाल सेना लेकर शिवाजी पर आक्रमण किया था परंतु शिवाजी की चातुर्य बुद्धि से वह परास्त हो गया। इस गद्यांश में इसी ऐतिहासिक घटना का उल्लेख किया गया है।

<u>गद्यांश संख्या–6</u>

"वत्स गौरसिंह! अहमत्यन्तं तुष्यामि त्वयि, यत् त्वमेकाकी अपजलखानस्य त्रीनश्वान् तेन दासीकृतान् पञ्च ब्राह्मणतनयांश्च मोचयित्वा आनीतवानसीति। कथं न भवेरीदृशः? कुलमेवेदृशं राजपुत्रदेशीयंक्षत्रियाणाम्।" तावत् पुनस्श्रूयतमर्मरः पादक्षेपश्च ततो विरम्य, मुनिः, स्वयमुत्थाय, प्रोच्चं शिलापीठमेकमारूह्य निपुणतया परितः पश्यन्नपि कारणं किमपि नावलोकयामास चरणाक्षेपशब्दस्य। अतः पुनरेकतानेन निपुणं निरीक्षमाणेन गौरसिंहेन दृष्टम्, यत् कुटीर–निकटस्थ–निष्कुटक–कदलीकूटे द्वित्रास्तरवोऽतितरां कम्पन्ते इति।

संदर्भ – प्रस्तुत गद्यांश साहित्याचार्य पं. अम्बिकादत्त व्यास रचित 'शिवराजविजय' से उद्धृत है। उपन्यास शैली के प्रतिष्ठापक पं. व्यास की यह अभूतपूर्व गद्य रचना है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में ब्रह्मचारी गुरु एवं गौरसिंह के वार्तालाप का वर्णन है। गौरसिंह अफजल खान से तीन घोड़ों व पाँच ब्राह्मण बालकों को छुड़ाकर लाये है। यवन युवक गृह वाटिका में आकर छिप जाता है। अतः बार–बार आती ध्वनि से मुनि आशंकित है।

अनुवाद – पुत्र गौरसिंह! मैं तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हूँ जो तुम अकेले ही अफजल खान के तीन घोड़ों और उसके द्वारा दास बनाये गये पाँच ब्राह्मण पुत्रों को छुड़ाकर लाये हो। तुम ऐसे क्यों नहीं हो? राजपूताने के क्षत्रियों का कुल ऐसा ही है अर्थात् राजपूताने के क्षत्रिय वीरता के लिए प्रसिद्ध है। तभी पुनः मर्मर–ध्वनि व पैरों की आहट सुनाई दी। तब बोलना बंद कर मुनि स्वयं उठकर, एक ऊँची शिला पर चढ़कर, भली भाँति चारों और देखते हुए भी पैरों की आहट का कोई कारण नहीं देखा। फिर एकाग्रता से अच्छी तरह देखते हुए गौरसिंह ने देखा कि कुटी के निकट गृहवाटिका में केलों के झुरमुट में दो तीन पेड़ अधिक हिल रहे हैं।

व्याकरण–सम्बंधी टिप्पणी –

1. मोचयित्वा – मुच् + णिच् + क्त्वा।

2. दासीकृतान् – दास + च्वि + कृ + क्त।

3. मर्मरः – (पत्तों की चरचराहट) अथ मर्मरः स्वनिते वस्त्रपर्णानाम् इत्यमरः।

4. विरम्य वि + रम् + ल्यप्।

5. निरीक्षमाणेन – निर् + ईक्ष् + शानच् (तृतीया वि.)

6. कुटीरनिकटस्थनिष्कुटककदलीकूटे – कुटीरस्य निकटे स्थिता ये निष्कुटकाः तेषु यः कदलीनाम् कूटः तस्मिन् (तत्पु.)। 'गृहारामाास्तु निष्कुटाः' इत्यमरः।

7. द्वित्राः – दौ वा त्रयो वेति द्वित्राः।

8. अतितराम् – अति+तरप्।

विशेष – प्रस्तुत गद्यांश में राजपूताने के क्षत्रियों की वीरता की प्रशंसा की गई है।

<u>गद्यांश संख्या–7</u>

तदेव संशयस्थानमित्यङ्गुल्या निर्दिश्य, कुटीर–वलीके गोपयित्वा स्थापितानामसी– नामेकमाकृष्य रिक्तहस्तेनैव मुनिना पृष्ठतोऽनुगम्यमानः कपोल – तल – विलम्बमानान् चक्षुश्चुम्बिनः कुटिल – कचान् वामकराङ्गुलिभिरपसारयन्, मुनिवेषोऽपि किञ्चित् कोप–कषायित – नयनः, कर–कम्पित–कृपा–कृपण–कृपाणो महादेवमारिराायिषुस्त–पस्विवेषोऽर्जुन इव शान्तवीररसद्वयस्नातः सपदि समागतवान् तन्निकटे अपश्यच्च लता –प्रतानवितान – वेष्टित – रम्भा – स्तम्भ त्रितयस्य मध्ये नीलवस्त्रखण्ड–वेष्टित–मूर्द्धानं हरित–कञ्चुकं श्याम – वसनानद्ध – कटितट – कर्बुराधोवसनम्, काकासनेनोपविष्टम् रम्भालवाल – लग्नाधोमुख – खड्गत्सरुन्यस्ते – विपर्यस्त – हस्त – युगलम्, लशुनगन्धिभिर्निश्वासैः कदली – किसलयानि मलिनयन्तम्, नवाङ्गुरित् श्मश्रु श्रेणि च्छलेनकन्या कन्यकापहरण – पंक –कलंकपंक – कलंकिताननम्, विंशतिवर्ष कल्पं यवनयुवकम्। ततः परस्परं चाक्षुषे सम्पन्ने दृष्टोऽहमिति निश्चित्य उत्प्लुत्य, कोशात् कृपाणमाकृष्य युयुत्सुः सोऽपि सम्मुखमवतस्थे। ततस्तयोरेवं सञजाताः परस्परमालापाः।

संदर्भ – प्रस्तुत गद्यांश साहित्याचार्य पं. अम्बिकादत्त व्यास रचित 'शिवराजविजय' से उद्धृत है। उपन्यास शैली के प्रतिष्ठापक पं. व्यास की यह अभूतपूर्व गद्य रचना है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में उस आश्रम की वाटिका में छिपे म्लेच्छ युवक जो कि कन्या अपहरण जैसे कुकृत्यों में लिप्त था, देखकर गौरसिंह तलवार खींच लेता है। तपस्वी वेषधारी गौरसिंह की तुलना कवि ने अर्जुन से की है तथा शान्त व वीर रस दोनों का सम्मिलन बताया है।

अनुवाद – 'वही सन्देह का स्थान है' – ऐसा अंगुली से निर्देश करके कुटीर की वल्ली (पटल प्रान्त) में छिपा कर रखी हुई तलवारों में से एक तलवार खींच कर खाली हाथ वाले मुनि के द्वारा पीछा किया जाता हुआ, कपोलों तक लटकने वाले और आँखों पर आ जाने वाले घुँघराले बालों को बाँयें हाथ की अंगुलियों से हटाता हुआ, मुनि वेष में होते हुए भी कुछ क्रोध से लाल नेत्र किये हुए, हाथ में कम्पित और निर्दय तलवार लिए हुए, महादेव की आराधना करने के लिए तपस्वी वेषधारी अर्जुन के समान शान्त और वीर दोनों रसों से नहाया हुआ सा गौर सिंह शीघ्र ही उसके समीप पहुँचा और उसने वहाँ लताओं के विस्तृत बेलों से वेष्टित केले के तीन स्तम्भों के बीच नीले कपड़े के टुकड़े को सिर पर लपेटे हुए, हरे रंग का कुर्त्ता पहने हुए, कमर में काला कपड़ा बाँधें हुए, चित्तकबरे रंग का अधोवस्त्र पहने हुए, काकासन से बैठे हुए, केले के थांवले पर अधोमुख रखी तलवार की मूंठ पर दोनों हाथ उलटे रखे हुए, लहसुन की दुर्गन्ध से युक्त श्वासों से केले के कोमल पत्तों को मलिन करते हुए, जरा–जरा सी निकलती रेखा (मूँछ और दाढ़ी) के बहाने, कन्या अपहरण रूप पाप कर्म से उत्पन्न अपयस रूपी कीचड़ से कलंकित मुख वाले, लगभग 20 वर्ष की उम्र के एक मुसलमान युवक को देखा। तब आपस में दोनों की आँखें मिल जाने पर "मैं देख लिया गया हूँ" यह सोचकर, उचककर म्यान से तलवार निकालकर लड़ने की इच्छा से वह मुसलमान युवक भी सामने खड़ा हो गया। तब उन दोनों की परस्पर इस प्रकार बातचीत हुई।

इस प्रकार गृहवाटिका में छिपे उस यवन युवक ने जब यह देखा कि वह गौरसिंह द्वारा देख लिया गया है तो वह उछलकर सामने आ जाता है तथा बाद में उन दोनों के मध्य वार्तालाप होती है।

व्याकरण–सम्बंधी टिप्पणी

1. संशयस्थानम् – संशयस्य स्थानम् (तत्पु.)।
2. निर्दिश्य – निर्+दिश्+ल्यप्।
3. कुटीरवलीके – कुटीरस्य वलीकम् तस्मिन्।
4. गोपयित्वा – गुप्+णिच्+कत्वा।
5. आकृष्य – आ+कृष्+ल्यप्।
6. अनुगम्यमानः – अनु+गम्+शानच्।
7. कुटिललकचान् – कुटिलाः कचाः, तान्।
8. अपसारयन् – अप+सृ+णिच्+शतृ।
9. किंचित्कोपकषायितनयनः – किंचित् कोपेन कषायिते नयने यस्य सः (बहु.)।
10. करकम्पितकृपाकृपणकृपाणः – कृपायाः कृपणः कृपाकृपणः, करे कम्पितः कृपाकृपणश्च कृपाणः यस्य सः (बहु.)।
11. शान्तवीररसद्वयस्नातः – शान्तश्च वीरश्च शान्तवीरौ, ताभ्याम् रसाभ्याम् स्नातः।
12. समागतवान् – सम्+आ+गम्+क्तवतु।
13. लताप्रतानवितानवेष्टितरम्भास्तम्भत्रितयस्य – लतानां प्रतानानि, तेषां वितानम्, तेन वेष्टितम् रम्भास्तम्भानां त्रितयम्।
14. नीलवस्त्रखण्डवेष्टितमूर्द्धानम् – नीलं च वस्त्रखण्डं नीलवस्त्रखण्डं, तेन वेष्टितो मूर्धा यस्य तम् (बहु.)।
15. श्यामवसनानद्धकटितटकर्बुराधोवसनम् – श्यामवसनेन आनद्धम् कटितटे कर्बुरम् अधोवसनम् यस्य तम्।
16. आनद्धम् – आ+नध् + क्त।
17. कर्बुरम् – चित्रं किर्मीर कल्माबशब लैताश्च कर्बुरम् इत्यमरः।
18. काकासनेन – घुटने के बीच ठोड़ी डालकर बैठने की स्थिति को काकासन कहते है।
19. उपविष्टम् – उप + विश् + क्त।
20. रम्भालवाललग्नाधोमुखखड्गत्सरून्यस्तविपर्यस्तहस्तयुगलम् – रम्भायाः आलवाले लग्नः, अधोमुखः यः खड्गः त्सरौ न्यस्तं विपर्यस्तं हस्तयुगलं यस्य (बहुब्रीहि.) तम्।
21. लशुनगन्धिभिः – लशुनस्य गन्ध इव गन्धो येषां तैः।
22. कदलीकिसलयानि – कदलीनां किसलयानि।
23. नवाङ्कुरितश्मश्रुश्रेणिच्छलेन – नवांकुरितायाः श्मश्रुश्रेण्याः छलेन (तत्पु.)।
24. कन्याकापहरणंपककलंककलंकिताननम् – कन्यकायाः अपहरणरूपं यत् पंकम्, तस्य यः कलंकः, स एव पंकः, तेन कलंकितम् आननं यस्य तम्। (बहु.)।

25. सम्पन्ने – सम् + पद् + क्त (सप्तमी)

26. उत्प्लुत्य – उत् प्लुङ् + ल्यप्।

27. आकृष्य – आ + कृष् + ल्यप्।

28. युयुत्सु – युह्य् + सन् + उ (योद्धुमिच्छुः)

विशेष – तपस्वी वेशधारी गौरसिंह की तलवार उठाने पर अर्जुन से तुलना करने पर उपमा अलंकार है। इसमें महाभारत की कथा के अनुसार अर्जुन ने मुनि वेश धारण कर शिवजी की कठोर तपस्या की थी। अतः मुनिवेश धारी गौरसिहं की अर्जुन से तुलना की गई है। इस गद्यांश में अनुप्रास की छटा भी दर्शनीय है।

<u>गद्यांश संख्या–8</u>

गौरसिंह – कुतो रे यवन – कुल – कलंक।

यवन–युवक – आः। वयमपि कुत इति प्रष्टव्याः? भारतीयकन्दरिकन्दरेष्वपि वयं विचरामः, शृंग–लांगूल – विहीनानां हिन्दुपद – व्यवहार्याणां च युष्मादृक्षाणां पशूनामाखेट क्रीडया रमामहे।

गौरसिंहः (सक्रोधं विहस्य) – वयमपि तु स्वाङ्कागतसत्ववृत्तय शिवस्य गणाः अत्रैव निवसामः, तत्सुप्रभातमद्य, स्वयमेव त्वं दीर्घदावदहने पतंगायितोऽसि।

यवनयुवकः – अरे रे वाचालः! ह्यो रात्रौ युष्मत्कुटीरे रुदतीं समायातां ब्राह्मणतनयां सपदि प्रयच्छथ, तदा कदाचिद् दयया जीवतोऽपि त्यजेयम्, अन्यथा मदसिभुजंगिन्या दंष्टा क्षणात् कथावशेषाः संवर्त्स्यथ।

संदर्भ – प्रस्तुत गद्यांश साहित्याचार्य पं. अम्बिकादत्त व्यास–रचित 'शिवराजविजय' से उद्धृत है। उपन्यास शैली के प्रतिष्ठापक पं. व्यास की यह अभूतपूर्व गद्य रचना है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में गौरसिंह व यवन युवक के परस्पर वार्तालाप का वर्णन है। इससे यवनों का हिन्दुओं पर अत्याचार करना और यहाँ की स्त्रियों का अपहरण करना तथा हिन्दुओं को हीन दृष्टि से देखना आदि परिस्थितयों का वर्णन है। शिवाजी के सैनिकों द्वारा उनका विरोध किया गया है।

अनुवाद – गौरसिंह – रे यवन कुलकलंक! कहाँ से आया?

यवन–युवक – हम कहाँ से आये हैं? यह पूछना है? हम भारत की पर्वत गुफाओं में भी विचरण करते हैं और हिन्दू नामधारी तुम जैसे सींग–पूंछ से रहित पशुओं का शिकार कर आनन्द मनाते है।

गौरसिंह – (क्रोध से हंसकर) अपने पास में आए हुए दुष्ट जीवों पर ही जीवित रहने वाले हम शिवाजी के गण भी यही रहते हैं, तो आज की सुबह बहुत शुभ है, तुम स्वयं ही धधकती हुई दावाग्नि में पतंगे के समान जलने आये हो।

यवन युवक – अरे वाचाल। कल रात तुम्हारी कुटी में रोती हुई जो ब्राह्मण पुत्री आयी थी, उसे तुरंत दे दो, तो शायद दया करके तुम्हें जीवित छोड़ दूँ, अन्यथा क्षण भर में ही मेरी सर्पिणी सी तलवार के द्वारा डंसे जाने पर कथामात्र शेष रह जाओगे।

व्याकरण–सम्बंधी टिप्पणी –

1. भारतीयकन्दरिकन्दरेषु – भारतीयाः ये कन्दरिणः तेषां कन्दरेषु (तत्पु.) कन्दरा सन्ति अस्मिन् इति कन्दरी।

2. आखेटक्रीडया – आखेटस्य क्रीडा (तत्पु.) तया।

3. स्वाङ्कगतसत्ववृत्तयः – स्वाङ्क आगताः सत्वाः एव वृत्तयः येषां ते (बहुब्रीहि)

4. दीर्घदावदहने – दीर्घश्चासौ दावदहनः (कर्मधारय) तस्मिन्

5. रूदतीम् – रूद्+शतृ (स्त्री.)

4. दष्टा – दंश् + क्त।

विशेष – प्रस्तुत गद्यांश में अम्बिकादत्त व्यास की सुन्दर सुगठित प्रभावपूर्ण संवाद शैली का परिचायक है। पतंगायितोऽसि में लुप्तोपमालंकार है। मदसिभुजंगिन्या – में यहाँ "तलवार रूपी सर्पिणी में" रूपक अलंकार है। शिवजी के गण तथा शिवाजी के सैनिकों में श्लेष अलंकार का प्रयोग हुआ है।

<u>गद्यांश संख्या–9</u>

कलकलमेतमाकर्ण्य श्यामबटुरपि कन्यासमीपादुत्थाय दृष्ट्वा च हन्तुमेतं यवनवराकं पर्याप्तोऽयं गौरसिंह इति मा स्म गमदन्योऽपि कश्चित् कन्यकामपजिहीर्षुरिति वलीकादेकं विकटखड्गमाकृष्य त्सयै गृहीत्वा कन्यकां रक्षन् तदध्युषित कुटीर – निकट एव तस्थौ।

गौर सिंहस्तु 'कुटीरान्तः' कन्यकाऽस्ति, सा च यवन – वध – व्यसनिनि मयि जीवति न शक्या द्रष्टुमपि, किं नाम स्प्रष्टुम्? तद् यावत् तव कवोष्णशोणित तृषित एष चन्द्रहासो न चलति, तावत् कूर्दनं वा, उत्फालं वा यच्चिकीर्षसि तद् विधेहि' इत्युक्त्वा व्यालीढमर्य्यादया सज्जः समतिष्ठत।

संदर्भ – प्रस्तुत गद्यांश साहित्याचार्य पं. अम्बिकादत्त व्यास रचित 'शिवराजविजय' से उद्धृत है। उपन्यास शैली के प्रतिष्ठापक पं. व्यास की यह अभूतपूर्व गद्य रचना है।

प्रसंग – इस गद्यांश में आश्रम के यवन युवक के घुस आने पर तथा गौरसिंह को यवन युवक को मारने के लिए पर्याप्त समझ एक अन्य ब्रह्मचारी आश्रम में छिपी कन्या की रक्षा के लिए तैनात हो जाता है।

अनुवाद – यह कोलाहल सुनकर श्यामवर्ण का ब्रह्मचारी भी कन्या के पास से उठकर और देखकर कि यवन युवक को मारने के लिए अकेला गौरसिंह पर्याप्त है यह समझकर, कन्या का अपहरण करने के लिए कोई अन्य न आ जाये, यह सोचकर छप्पर से एक भयंकर तलवार खींच कर उसी की मूँठ पकड़कर, बालिका की रक्षा करता हुआ, जिस कुटी में बालिका थी, वहीं समीप खड़ा हो गया।

गौरसिंह 'कन्या कुटी के अन्दर है' यवनों के वध के व्यसनी मेरे जीवित रहते तू उसे छू भी नहीं सकता। तो जब तक तेरे गर्म खून की प्यासी यह तलवार नहीं चलती है, तब तक तुम चाहो जितनी उछल–कूद कर लो यह कहकर पैंतरा बनाकर (वह) खड़ा हो गया। इस प्रकार यवन युवक के साथ गौरसिंह के लड़ने के लिये तैयार हो जाने की मुद्रा का वर्णन है।

व्याकरण–सम्बंधी टिप्पणी –

1. अपजिहीर्षुः – अप + हृ + सन् + उ।

2. रक्षन् – रक्ष् + शतृ।

3. तदध्युषितकुटीरनिकटे – तया अध्युषितस्य कुटीरस्य निकटे (तत्पु.) अधि + वस् (व = उ सम्प्रसारण) + क्त।

4. यवनवधव्यसनिनि – यवनानां वधः एव व्यसनम् यस्य सः तस्मिन्।

5. कवोष्णशोणिततृषितः – ईषद् उष्णम् कवोष्णम् (अव्ययी.) कवोष्णस्य शोणितस्य तृषित (तत्पु.) "कोषणम् कवोष्णम् मन्दोष्णम् कदुष्णं त्रिषुतद्वति" (अमरकोष)

6. चिकीर्षति – कृ + सन् + लट् (तिप्)

7. समतिष्ठत – सम् + स्थ + ल (तिप्)

विशेष – प्रस्तुत गद्यांश में गौरसिंह व श्यामबटु के शौर्य, वीरता तथा तत्परता का निदर्शन होता है।

गद्यांश संख्या–10

ततो गौरसिंहः दक्षिणान् वामांश्च परश्शतान् कृपाण–मार्गानङ्गीनकृतवतः दिनकरस्पर्शचतुर्गुणीकृतं चाकचक्यैः चञ्चच्चन्द्रहासचमत्कारैश्चक्षूंषि मुष्णतः यवनयुवकह तकस्य, केनाप्यनुपलक्षितोद्योगः अकस्मादेव स्वासिना कलितक्लेदसंजातस्वेदजलजालं विशिथिलकचकुलमालं भग्नभ्रूभयानकभालं शिरश्चिच्छेद।

संदर्भ – प्रस्तुत गद्यांश साहित्याचार्य पं. अम्बिकादत्त व्यास–रचित 'शिवराजविजय' से उद्धृत है। उपन्यास शैली के प्रतिष्ठापक पं. व्यास की यह अभूतपूर्व गद्य रचना है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में गौरसिंह के तलवार संचालन व उस यवन युवक को तुरंत मौत के घाट उतारने का वर्णन है।

अनुवाद – उसके बाद गौरसिंह ने दायें बायें सैकड़ों कृपाण मार्ग को अंगीकार करने वाले, सूर्य की किरणों के स्पर्श से चौगुनी किये हुए चाकचिक्य वाले, चलती हुई तलवार के चमत्कार से चौंधियाई हुई आँखों वाले उस दुष्ट यवन युवक के, श्रम जनित स्वेद कण से व्याप्त, अस्त–व्यस्त बालों वाले तथा विछिन्न भौहों से भयानक भाल वाले शिर को अपनी तलवार से एकाएक काट डाला, उसका यह उद्योग किसी के द्वारा देखा नहीं जा सका। अर्थात् कार्य इतनी तीव्रता से किया गया कि उसके इस कार्य को किसी ने नहीं देखा।

व्याकरण–सम्बंधी टिप्पणी –

1. कृपाणमार्गान् – कृपाणस्य मार्गः (तत्पु.) तान्।
2. दिनकरकरस्पर्शचतुर्गुणीकृतचाकचक्यैः – दिनकरस्य कराणाम् स्पर्शेन चतुर्गुणीकृतम् चाकचक्यम् यैस्तैः (बहुब्रीहि)
3. चंचच्चन्द्रहासचमत्कारैः – चंचन् यः चन्द्रहासः तस्य चमत्कारः तैः।
4. अनुपलक्षितोद्योगः – अनुपलक्षितः उद्योगः यस्य सः (बहुब्रीहि)।
5. कलितक्लेदसंजातस्वेदजलजालम् – कलितेन क्लेदेन संजातस्य स्वेदजलस्य जालम् यस्मिन् तत्। 'धर्मो निदाघः स्वेद' इत्यमरः
6. विशिथिलकचकुलमालम् – शिशिथिलाः कचाः तेषां कुलस्य माला यस्मिन् तत् (बहुब्रीहिः)।
7. भग्नभ्रूभयानकभालम् – भग्नया भ्रुवा भयानकं भालं यस्मिन् तत्।

विशेष – उपर्युक्त गद्यांश में गौरसिंह के तलवार संचालन की चतुराई व त्वरता अनुपम है। कलितक्लेद आदि में यमक व अनुप्रास की छटा दर्शनीय है।

गद्यांश संख्या–11

अथ मुनिरपि दाडिम कुसुमास्तरणच्छन्नायामिव गाढ–रूधिर दिग्धायां ज्वलदङ्गार चितायां चितायामिव वसुधायां शयानं वियुज्यमानभारतभुवमालिङ्गन्तमिव निर्जीवीभवदङ्गबन्ध – चालनं परं शोणितसङ्घातव्याजेनान्तः स्थितरजोराशिमिवोद्गिरन्तं कलितसायन्तनघनाऽऽडम्बर– विभ्रमं सतत ताम्रचूडभक्षणपातकेनेव ताम्रीकृतं छिन्नकन्धरं यवनहतकमक्लोक्य सहर्षं ससाधुवादं सरोमोद्गमं च गौरसिंहमाश्लिष्य, भ्रूभङ्गमात्राऽऽज्ञप्तेन भृत्येन मृतककञ्चुककटि–बन्धोष्णीषादिकमन्विष्याऽऽनीतं पत्रमेकमादाय सगणः स्वकुटीरं प्रविवेश।

संदर्भ – प्रस्तुत गद्यांश साहित्याचार्य पं. अम्बिकादत्त व्यास रचित 'शिवराजविजय' से उद्धृत है। उपन्यास शैली के प्रतिष्ठापक पं. व्यास की यह अभूतपूर्व गद्य रचना है।

प्रसंग – गौरसिंह ने जब अपनी तलवार से गृह वाटिका में प्रवेश किये यवन–युवक को मार गिराया तथा

उसके मारने के बाद प्रसन्नता व्यक्त की गई है। तथा तलाशी के दौरान उस युवक से एक पत्र प्राप्त होता है इस गद्यांश में इसी प्रसंग का उल्लेख है।

अनुवाद – तत्पश्चात् मुनि ने भी, अनार के फूलों के बिछौने से ढकी हुई सी, गाढ़े खून से लथपथ, जलते अंगारों से व्याप्त चिता के समान पृथ्वी पर लुढ़के हुए, बिछुड़ती हुई भारत भूमि का आलिंगन करते हुए से, निर्जीव होती हुई अंग संधियों को हिलाते और छटपटाते हुए, रूधिर–राशि के बहाने भीतर के रजोगुण की राशि को उगलते हुए से, सायंकालीन मेध के विभ्रम को धारण किए हुए, मानों निरन्तर मुर्गा खाने के पाप से लाल हुए, कटे हुए सिर वाले दुष्ट यवन को देखकर हर्षपूर्वक (गौरसिंह को) शाबासी देते हुए रोमांच से युक्त होकर, गौरसिंह का आलिंगन कर आँखों के इशारे मात्र से आज्ञा प्राप्त किये गये सेवक द्वारा मृतक के कुर्त्ते (कञ्चुक), कमरबन्ध और पगड़ी आदि की तलाशी लेकर लाये गये एक पत्र को लेकर साथियों सहित अपनी कुटी में प्रवेश किया।

व्याकरण–सम्बंधी टिप्पणी –

1. दाडिमकुसुमास्तरणाच्छन्नायाम् – दाडिमस्य कुसुमानाम् आस्तरणम् तेन आच्छन्नम् (तत्पु.) तस्याम्। आ+छद्+क्त।
2. शयामं – शी+शानच्।
3. गाढरूधिरदिग्धायाम् – गाढेन रूधिरेण दिग्धायाम् (तत्पु.)।
4. शोणितसंघातव्याजेन – शोणितस्य संघातः तस्य व्याजः तेन (तत्पु.)।
5. ताम्रचूड – मुर्गा। 'कृकवाकस्तु ताम्रचूडः कुक्कुटश्चरणायुधः' (इत्यमरः)।
6. ताम्रीकृतम् – ताम्र+च्वि + कृ + क्त।
7. छिन्नकन्धरम् – छिन्नाकन्धरा यस्य सः (बहुब्रीहि) तम्।
8. ससाधुवादम् – साधुवादेन सहितम्।
9. आशिलष्य – आ + श्लिष् + ल्यप्।
10. कंचुककटिबन्धोष्णीषादिकम् – कंचुकं च कटिबन्धः च उष्णीसम् च आदिकम् च इति।

विशेष – गद्य की ओज समासपूर्ण शैली तथा अनुप्रास का वैचित्र्य कवि की रचना में यत्र–तत्र दर्शनीय है। "ज्वलदङ्गारचितायां चितायामिव" जलते हुए अंगारों से व्याप्त चिता में यहाँ कवि ने इव का सम्भावनात्मक प्रयोग किया है। क्योंकि यवनों में चिता नहीं जलाई जाती, बल्कि शव को दफन किया जाता है।

4.3 पं. अम्बिकादत्त व्यास की गद्य शैली का वैशिष्ट्य

पं. अम्बिकादत्त व्यास आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य के प्रतिष्ठित गद्यकार है। व्यास जी का जन्म 1859 ई. में राजस्थान में हुआ। यह बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। इन्होंने संस्कृत में लगभग 80 रचनाओं का प्रणयन किया। इनके द्वारा लिखित 'सामवतम्' नाटक भाव, भाषा व वर्ण्य की दृष्टि से उच्च कोटि का है। संस्कृत गद्य जगत् में यह अपनी रचना 'शिवराजविजय' से जाने जाते है। आधुनिक गद्य शैली तथा उपन्यास विधा के प्रणेता व्यास जी की रचना 'शिवराजविजय' ने उन्हें बाण, दण्डी व सुबंधु की समकक्ष श्रेणी में खड़ा कर दिया है।

पं. अम्बिका दत्त व्यास कृत 'शिवराजविजय' उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है। 'शिवराजविजय' एक ऐतिहासिक उपन्यास है किंतु व्यास जी ने ऐतिहासिक कथावस्तु को अपनी प्रतिभा व कल्पना से उच्च कोटि की साहित्यिकता प्रदान की है। उपन्यासकार ने इस रचना को ऐतिहासिक घटनाओं, नवीन पात्रों व कुछ

नूतन घटनाओं व काल्पनिकता के पुट से अधिक रोचक व व्यापक बनाया है। 'शिवराजविजय' में इतिहास व कल्पना, आदर्श व यथार्थ और अनुभव व कल्पना का सुन्दर समन्वय दिखाई देता है। कथावस्तु की संघटना भी प्राच्य व पाश्चात्य शिल्प के समन्वय से की गयी है। कथा में इतना प्रवाह व गतिमयता है कि पाठक की आकांक्षा उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होती जाती है। 'शिवराजविजय' की सम्पूर्ण कथा तीन विश्वासों में विभाजित है। आपके पाठ्यक्रम में प्रथम निश्वास निर्धारित है अतः उसी संदर्भ में व्यास जी की गद्य शैली की समीक्षा की जायेगी।

'शिवराजविजय' में एक ओर शिवाजी नायक के रूप में चित्रित है तो दूसरी ओर रघुवीर सिंह है यह दोनों ही पात्र एक दूसरे के समानान्तर व पूरक है। कथा के सभी पात्र अपने चरित्र निर्वाह में पूरी तरह खरे उतरते हैं। शिवाजी व रघुवीर सिंह के अतिरिक्त गौरसिंह, शाइस्ता खान, अफजल खान, ब्रह्मचारी सभी पात्र यथार्थता का निर्वहन करते हैं।

शिवराज विजय की भाषा सरल, सुबोध, भावानुकूल तथा वर्ण्यविषय के अनुकूल है। अर्थपूर्ण वाक्य विन्यास तथा ओजपूर्ण गौरवगंभीर समासयुक्त पदावलियों का प्रयोग यथा स्थान किया गया है। उदाहरणार्थ दीर्घ समासयुक्त पदावली का उदाहरण देखिये –

"महाराष्ट्रदेशरत्नम् यवनशोणितपिपासाऽऽकुलकृपाणः वीरता–सीमन्तिनी – सीमन्त – सुन्दर – सान्द्र सिंन्दूरदानदेदीप्यमान दोर्दण्डः, मुकुटमणिर्महाराष्ट्राणाम्, भूषणं भटानाम्, निधिर्नीतीनाम्, कुलभवनं कौशलनाम्, पारावारः परमोत्साहानाम्, कश्चन् प्रातः स्मरणीयः, स्वधर्माऽऽग्रह, ग्रह. ग्रहिलः, शिव इव धृतावतारः शिववीरश्चास्मिन् पुण्यनगरान्नेदीयस्येव सिंहदुर्गे ससेनो निवसति।"

समासयुक्त पदावली के साथ–साथ व्यास जी की समासरहित सुन्दर पदावली का प्रयोग भी हृदय ग्राह्य है।

यथा – "बटुरसौ आकृत्या सुन्दरः, वर्णेन गौरः जटाभिः ब्रह्मचारी, वयसा षोडशवर्षवर्षीयः कम्बुकण्ठः, आयतललाटः सुबाहुर्विशाललोचनश्चासीत्।"

पं. अम्बिकादत्त व्यास का भाषा पर पूर्ण अधिकार था और भावों को पूर्णरुपेण अभिव्यक्त करने की उनकी क्षमता अद्‌भुत है। भाषा उनके भावों का अनुगमन करती है, कोमल व कठोर भावों की अभिव्यक्ति में उनकी लेखनी सिद्धस्त है। भाषा शैली में संवाद लेखन का अपना महत्व होता है। गौरसिंह व यवन युवक के संवाद देश व जाति के लिए मर मिटने वाले भावों को प्रकट करने में पूर्ण सक्षम है। उदाहरणार्थ–

गौरसिंह :– कुतो रे यवनकुलकलंक।

यवन–युवक – आः। वयमपि कुत इति प्रष्टव्याः? भारतीयकन्दरिकन्दरेष्वपि वयं विचरामः, शृंग–लांगूल – विहीनानां हिन्दुपद – व्यवहार्याणां च युष्मादृक्षाणां पशूनामाखेट क्रीडया रमामहे।

गौरसिंहः (सक्रोधं विहस्य) – वयमपि तु स्वाङ्कागतसत्ववृत्तय शिवस्य गणाः अत्रैव निवसामः, तत्सुप्रभातमद्य, स्वयमेव त्वं दीर्घदावदहने पतङ्गायितोऽसि।

इस प्रकार उचित संवाद योजना से कवि ने उपन्यास में नाटकीयता व रोचकता का समावेश किया है। अम्बिकादत्त व्यास संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित एवं विद्वान् थे अतः भाषा में व्याकरणिक शब्दों के प्रयोग भी मिलते है। सन्नतं, यङन्त यङलुङन्त शब्दों के प्रयोग यत्र–तत्र मिलते है। यथा समभाणीत् आरिराधयिषु, युयुत्सु, अकार्षु (लुङ्)। अलंकार योजना में भी कवि सिद्धहस्त है। पठित अंश में यत्र–तत्र अनुप्रास की छटा दर्शनीय है। इसी प्रकार अनुप्रासों की चित्रात्मकता के प्रयोग जहाँ वहाँ तो बिखरे पड़े है। यथा–

दिनकरस्पर्शचतुर्गुणीकृतचाकचक्यैः चञ्चच्चन्द्रहासचमत्कारैश्चक्षूंषि मुष्णतः।

कवि ने अपनी कल्पना को मूर्त रूप देने के लिए यत्र–तत्र उत्प्रेक्षा के बहुत सुन्दर प्रयोग किये है। इस प्रकार अलंकारों के चमत्कारपूर्ण प्रयोग यथा– स्थान देखने को मिल जाते है। डॉ. भगवानदास अम्बिकादत्त व्यास कृत 'शिवराजविजय' की तुलना 'कादम्बरी' व 'वासवदत्ता' से करते हुए कहते है कि–

"वासवदत्ता व कादम्बरी के शब्दों की अरण्यानी में तो बेचारा अर्थपथिक सर्वथा भूल भटक कर खो जाता है, उसका पता ही नहीं लगता। कविता के गुणों में प्रसाद गुण एक मुख्य गुण है, वह इन दो काव्याभासों में मिलता नहीं– विपरीत इसके 'शिवराजविजय' में भाषा उत्तमोतम, ओजस्विनी, अर्थपूर्ण, सुबोध्य, यथा–स्थान यथावसर उद्दाम और कोमल भी है।"

निष्कर्षरूपेण यह कह सकते है कि व्यास जी की सरस, धीर, गंभीर भाव व तदनुसार सरल सहज और कहीं ओज समासपूर्ण पदावली, पात्रों का यथार्थ चित्रण तथा उनके परस्पर संवाद, प्रकृति वर्णन व अनुप्रासों की छटा, तथा अन्य अलंकारों के सुललित प्रयोगों के आधार पर कह सकते है कि 'शिवराजविजय' संस्कृत का एक अद्‌भुत उपन्यास है तथा ऐसी प्रभावशाली रचना है जो जनमानस को हमेशा अनुप्राणित करती रहेगी।

4.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई में 'स एव प्राधान्येन भारते.....पत्रमेकमादाय सगणः स्वकुटीरं प्रविवेश।' पर्यन्त अंश का हिन्दी में सप्रसंग अनुवाद व उनकी व्याकरण सम्बंधी टिप्पणी तथा विशेष स्थलों पर प्रकाश डाला गया है। शिवराजविजय के इन गद्यांशों के अध्ययन से आपने यह जाना कि पं. अम्बिकादत्त व्यास ने अपने इस उपन्यास में तत्कालीन भारत की दुर्दशा का वर्णन किया है। सम्पूर्ण भारत पर उस समय यवनों का साम्राज्य था सिर्फ एक दक्षिण देश ही ऐसा था जो यवनों के अधिकार से बचा हुआ था क्योंकि पर्वतों की बहुलता होने से और शिवाजी तथा उनके सैनिक छापामार पद्धति से मुगलों पर आक्रमण कर उनके साथ युद्धरत थे। शिवाजी के सैनिकों के अड्डे मन्दिर व मठ आदि होते थे तथा अपने धर्म व संस्कृति की रक्षा के लिए वे प्राण पण से लगे हुए थे। शिवाजी के सैनिक मुगलों से अपहृत स्त्रियों, युवकों को छुड़ाते तथा अपनी संस्कृति की रक्षा में तत्पर थे। गौरसिंह व मुनिराज के वार्तालाप से यह स्पष्ट होता है। यवनों के चंगुल से भाग कर आयी कन्या की रक्षा में ब्रह्मचारी बटुक पूर्णतः सन्नद्ध हैं तथा उसकी तलाश में आये यवन युवक को गौरसिंह तुरंत मार देता है। निर्धारित पाठ्यांशों की व्याख्या और व्याकरणात्मक टिप्पणियों के आधार पर पाठ्यांश को समझने में सहायता तो मिली होगी साथ ही आपने यह जाना होगा कि पं. अम्बिकादत्त व्यास की गद्य शैली सरस, सरल, अर्थगौरवपूर्ण, ओजगुण युक्त तथा समासपूर्ण है। स्थान–स्थान पर अनुप्रास की छटा भाषा को गतिमयता व चित्रमयता प्रदान करती है। यथार्थ के साथ कल्पना का पुट कवि की अपनी विशेषता है। शब्द प्रयोग में निष्णात कवि के गद्य के पठन से यह निश्चित हो जाता है कि 'गद्य कवीनां निकषं वदन्ति' अर्थात् गद्य कवि की कसौटी है। अतः इस आधार पर कह सकते है कि गद्य लेखन में पं. अम्बिकादत्त व्यास निष्णात कवि है। गहनगंभीर व्यक्तित्व व अप्रतिम प्रतिभा के धनी व्यास जी ने अपनी लेखनी से 'शिवराजविजयं' जैसे अद्‌भुत ग्रन्थ की रचना की है। संस्कृत में उपन्यास विधा की स्थापना तथा गद्य शैली की सम्प्रेषणीयता को गतिमान् रखने में व्यास का प्रमुख स्थान है।

4.5 शब्दावली

1.	अदीदलन्	–	दलित किया (हिंसा की)।
2.	दोधूयन्ते	–	फहरा रहे है।
3.	त्रैवर्णिकस्य	–	द्विज के।
4.	व्याहार्षीत्	–	प्रसन्नता व्यक्त की।

5.	उपत्यकाम्	–	पर्वत की घाटी।
6.	अधित्यकान्	–	पर्वत के ऊपर की भूमि। उपत्यकाद्रेरासन्नाभूमिरूर्ध्वमधित्यका (अमरकोष)।
7.	निर्मक्षिके	–	एकान्त। मक्खियों तक का भी अभाव हो अर्थात् जन रहितता द्योतित होती है।
8.	मर्मर	–	ध्वनि (वस्त्र तथा पत्तों की आवाज को 'मर्मर' कहते है।)
9.	निष्कुटक	–	गृहवाटिका।
10.	आरिराधयिषुः	–	आराधना करने की इच्छा वाले।
11.	कर्बुरम्	–	चित्तकबरा रंग।
12.	आलवाल	–	वृक्ष के चारों ओर पानी रोकने के लिए बनाया गया थांवला।
13.	वलीकात्	–	छप्पर की ओर से।
14.	कवोष्णशोणिततृषितः	–	कुछ–कुछ गरम खून की प्यासी (कवोष्ण–कम गरम)।
15.	चन्द्रहास	–	तलवार।
16.	व्यालीढमर्यादया	–	युद्ध स्थान में विशेष ढंग से (पैंतरे आदि के साथ)।
17.	परश्शतान्	–	सैकड़ों।
18.	चाकचिक्य	–	चकाचौंध (प्रतिभास)।
19.	अनुपलक्षितोद्योगः	–	जिसका उद्योग नहीं देखा गया।
20.	भग्नभ्रूभयानकभालम्	–	विच्छिन्न भौहों से भयानक भाल वाले अर्थात् छिन्न–भिन्न या टेड़ी–मेड़ी भौंहों के कारण भयानक ललाट वाले।
20.	ताम्रचूड	–	मुर्गा।
21.	छिन्नकन्धरं	–	कटे हुए सिर वाला।
22.	सायन्तन	–	सायंकालीन
23.	त्सरू	–	तलवार की मूंठ।

4.6 बोध–प्रश्न –

प्र.1 निम्न में से कौनसा यवन सम्राट शान्तिप्रिय व विद्वानों का आदर करने वाला था?

(अ) औरंगजेब (ब) कुतुबुद्दीन (स) अकबर (द) शहाबुद्दीन ( )

प्र.2 औरंगजेब के अधिकार से कौनसा देश बचा हुआ था?

(अ) केकय (ब) दक्षिण देश (स) कलिंग (द) बंग ( )

प्र.3 कवि ने तलवार धारण किये हुए गौरसिंह की उपमा दी है?

(अ) शिवजी से (ब) विष्णु से (स) अर्जुन से (द) किसी से नहीं ( )

प्र.4 महाराज शिवाजी कहाँ रह रहे थे ?

प्र.5 औरंगजेब की पताका किन–किन देशों में फहर रही थी ?

प्र.6 निम्न गद्यांशों की व्याख्या कीजिए –

(अ) दक्षिणदेशे.....विरराम।

(ब) अथकिमपि.....तपस्तप्तुं जगाम।

(स) तदेव संशय.....परस्परमालापाः।

(द) अथ मुनिरपि.....स्वकुटीरं प्रविवेश।

प्र.7 पं. अम्बिकादत्त व्यास की गद्य शैली पर एक विस्तृत लेख लिखिये।

4.7 उपयोगी पुस्तकें

1. 'शिवराजविजयः' – (प्रथमोविरामः) श्री रामजी पाण्डेय शास्त्री, व्यास पुस्तकालय, वाराणसी।
2. शिवराजविजय – डॉ. देव नारायण मिश्र, साहित्य भंडार, मेरठ।
3. शिवराज विजय – डॉ. रूपनारायण त्रिपाठी, हंसा प्रकाशन, जयपुर।
4. संस्कृत साहित्य का इतिहास – पं. बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।

4.8 बोध–प्रश्नों के उत्तर

उ.1 स

उ.2 ब

उ.3 स

उ.4 शिवाजी पूना नगर के पास सिंह दुर्ग में रह रहे थे।

उ.5 दिल्ली के शासक पद के साथ–साथ केकय (पंजाब), मत्स्य (राजपूताना), मगध (दक्षिण बिहार), अंग (पूर्वी बिहार), बंग (बंगाल), कलिंग (उड़ीसा) आदि सर्वत्र औरंगजेब का ही शासन था।

उ.6 (अ) देखिये गद्यांश संख्या 2

(ब) देखिये गद्यांश संख्या 4

(स) देखिये गद्यांश संख्या 7

(द) देखिये गद्यांश संख्या 11

उ.7 देखिये भाग 4.3

इकाई–5

शुकनासोपदेश–वर्णनम्

शुकनासोपदेश के आधार पर बाणभट्ट की गद्य शैली की विशेषताएँ, लक्ष्मी के दोषों का निरूपण, लक्ष्मी–परिगृहीत राजाओं की दशा का वर्णन

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 संस्कृत में गद्य की उत्पत्ति एवं विकास

5.2.1 कथा व आख्यायिका में भेद

5.2.2 संस्कृत गद्य साहित्य के प्रमुख गद्यकार

5.2.2.1 दण्डी

5.2.2.2 सुबन्धु

5.2.2.3 बाणभट्ट

5.2.2.3.1 बाणभट्ट का समय

5.2.2.3.2 बाणभट्ट की कृतियाँ

5.2.2.3.3 बाणभट्ट की गद्य शैली

5.3 शुकनासोपदेश के आधार पर बाणभट्ट की गद्य–शैली की विशेषतायें

5.4 लक्ष्मी के दोषों का निरूपण

5.5 लक्ष्मी – परिगृहीत राजाओं की दशा का वर्णन

5.6 सारांश

5.7 शब्दावली

5.8 बोध–प्रश्न

5.9 उपयोगी पुस्तकें

5.10 बोध–प्रश्नों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आप गद्य कवि बाणभट्ट के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। बाणभट्ट संस्कृत गद्य साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि है। संस्कृत गद्य काव्य परम्परा के विकास में बाण की दोनों कृतियों 'हर्षचरित' एवं 'कादम्बरी' का महत्वपूर्ण स्थान है। बाणभट्ट हर्षवर्धन के सभापण्डित थे अतः इनका समय 7वीं सदीं में सिद्ध होता है। 'हर्षचरित' व 'कादम्बरी' इन दोनों रचनाओं के अतिरिक्त पार्वती परिणय, चण्डीशतक तथा मुकुटताडितक आदि अन्य रचनाओं का भी उल्लेख प्राप्त होता है। प्रस्तुत इकाई में आप कादम्बरी से उद्धृत 'शुकनासोपदेश' के आधार पर बाणभट्ट की गद्य शैली के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। कादम्बरी बाणभट्ट की सर्वोत्कृष्ट कृति है तथा उसकी वर्णन शैली अद्भुत है। ओज व समास पूर्ण शैली के कारण बाण की तुलना किसी अन्य से करना बहुत कठिन है अतः कवि समुदाय में यह उक्ति प्रचलित

रही है कि "बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्।" इस इकाई में बाणभट्ट की इन्हीं विशेषताओं तथा उनकी गद्य शैली व वर्णना शक्ति के विषय में आप परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में पाठ्यक्रम में निर्धारित 'शुकनासोपदेश' कादम्बरी से उद्धृत है। कादम्बरी दो खण्डों में विभाजित है पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध। पूर्वार्द्ध स्वयं बाणभट्ट ने लिखा है तथा उत्तरार्द्ध उनकी मृत्यु के बाद उनके पुत्र भूषण भट्ट ने पूर्ण किया है। कथा का प्रारम्भ राजा शूद्रक के वर्णन से होता है तथा इसमें तीन जन्मों की कथा वर्णित है। कादम्बरी कथा का मुख्य तत्त्व प्रेम है परन्तु आपके पाठ्यांश में निर्धारित शुकनासोपदेश है जिसमें मंत्री शुकनास द्वारा राजकुमार चंद्रापीड को उपदेश दिया गया है जो जीवन को उचित दिशा की ओर प्रेरित करने वाला है। बाण भट्ट का यह उपदेश अपनी सारगर्भित मार्मिकता, व्याख्यात्मकता व ओजस्विता के लिए विख्यात है। शुकनास द्वारा चन्द्रापीड को दिया जाने वाला उपदेश वर्तमान में यौवन व ऐश्वर्य के मद में डूबे युवकों को लोक मर्यादा का पाठ पढ़ाने में सक्षम है। युवा वर्ग में बढ़ती उत्छृंखलता व निरंकुशता पर अंकुश लगाने के लिए शुकनासोपदेश की वर्तमान में महती उपयोगिता है। अतः इस इकाई के माध्यम से आप यह प्रेरणा प्राप्त कर सकेंगे कि व्यक्ति गुरुओं द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलकर तथा जीवन में संयम व मर्यादा का पालन करके एक सार्थक जीवन जी सकता है।

5.2 संस्कृत में गद्य की उत्पत्ति एवं विकास

संस्कृत साहित्य मूलतः दो भागों में विभक्त किया गया है– गद्य एवं पद्य। गद्य का सर्वप्रथम दर्शन हमें वैदिक संहिताओं में देखने को मिलता है। कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता में तथा काठक एवं मैत्रायणी संहिताओं में गद्य के प्राचीन प्रयोग प्राप्त होते है। 'वृत्तब– न्धोज्झितगद्यम्' इस लक्षण के अनुसार छंद रहित रचना गद्य कहलाती है। महाभारत में भी गद्य के प्रयोग मिलते है। महर्षि पतञ्जलि ने 150 ई. पू. महाभाष्य ग्रन्थ की रचना गद्य में की है। पद्य की अपेक्षा गद्य लेखन कठिन होता है।

"गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति।"

गद्य कवियों की योग्यता की कसौटी है। संस्कृत में गद्य के प्रयोग टीका के रूप में प्राप्त होते है। दर्शन ग्रन्थों में गद्य का प्रयोग ही हुआ है। उपनिषद् व आरण्यकों में परिष्कृत गद्य के प्रयोग मिलते है अतः विद्वानों ने गद्य को वैदिक गद्य, पौराणिक गद्य, शास्त्रीय गद्य तथा साहित्यिक गद्य चार भागों में विभाजित किया गया है। वर्तमान समय में गद्य साहित्य का प्रथम व प्रौढ़ रूप हमें सुबन्धु की वासवदत्ता में देखने को मिलता है। इसके पश्चात् दण्डी, बाणभट्ट, अम्बिकादत्तव्यास तथा वर्तमान के अनेकानेक कवियों ने गद्य के नवीन प्रयोग कर इस परम्परा को जीवित रखा है। साहित्यशास्त्रियों ने साहित्यिक गद्य के दो भेद स्वीकार किये है कथा एवं आख्यायिका।

5.2.1 कथा व आख्यायिका में भेद

कथा व आख्यायिका दोनों के स्वरूप व परिभाषा को लेकर विद्वानों में मतभेद रहा है। अलंकार सर्वस्वकार ने इन दोनों की परिभाषा इस प्रकार दी है–

गद्यं तु कथितं द्वेधा कथेत्याख्यायिकेति च।
कथा कल्पित वृत्तान्ता सत्यार्थाख्यायिकामता।।

"अर्थात् गद्य काव्य के दो भेद है कथा और आख्यायिका कथा कल्पना प्रसूत होती है तथा आख्यायिका की कथावस्तु इतिहास पर आधारित होती है।" आचार्य दण्डी ने इन दोनों के भेद को अपने 'काव्यादर्श' में स्पष्ट किया है–

1. कथा कवि कल्पित होती है तथा आख्यायिका इतिहास पर आधारित होती है।

2. आख्यायिका उच्छवासों में विभाजित होती है। इसमें वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्दों की योजना होती है।

3. आख्यायिका का वक्ता स्वयं नायक होता है अतः वह एक प्रकार की आत्मकथा होती है तथा कथा का वक्ता स्वयं नायक या अन्य कोई व्यक्ति भी हो सकता है।

4. कथा में सूर्योदय, चन्द्रोदय आदि का विशद वर्णन होता है अर्थात् कथा में वर्णनात्मकता अधिक होती है परन्तु आख्यायिका में इन वर्णनों का महत्त्व नहीं होता।

5. कथा में कुछ विशिष्ट सांकेतिक शब्दों का प्रयोग होता है जबकि आख्यायिका में ऐसे शब्द प्रयुक्त नहीं होते आख्यायिका भावात्मक शैली में लिखी जाती है।

कथा व आख्यायिका के भेद को दण्डी अपितु भामह एवं रूद्रट आदि ने भी प्रस्तुत किया है। दण्डी का मत है कि कथा व आख्यायिका में कोई विशेष भेद नहीं है।

5.2.2 संस्कृत गद्य साहित्य के प्रमुख गद्यकार

संस्कृत गद्य के प्रमुख महाकवि दण्डी, सुबन्धु तथा बाणभट्ट माने जाते हैं। इन कवियों की रचनायें गद्य काव्य की श्रेष्ठ कृतियाँ मानी जाती हैं। दण्डी व सुबन्धु को लेकर विद्वानों के बीच मतभेद है। कुछ विद्वान सुबन्धु को प्राचीन मानते है तथा कुछ दण्डी को प्राचीन मानते है।

5.2.2.1 दण्डी

संस्कृत गद्यकारों में सबसे प्राचीन रचना महाकवि दण्डी की प्राप्त होती है। दण्डी द्वारा रचित दो रचनाओं का उल्लेख मिलता है– 1. काव्यादर्श, 2. दशकुमारचरित।

कुछ विद्वान् "अवन्तिसुन्दरीकथा" नामक अपूर्ण गद्य काव्य को भी दण्डी की रचना मानते है, इस प्रकार कवि जगत् के दण्डी की तीन कृतियाँ मानी जाती है। दण्डी की शैली सरस मनोहर, वैदर्भी रीति से युक्त है। वह प्रवाहपूर्ण एवं प्रसादगुण युक्त है। दण्डी की भाषा न तो सुबन्धु की तरह प्रत्यक्षर श्लेषमयी है और न ही बाणभट्ट की तरह दीर्घ समासों से पूर्ण है और न ही कृत्रिम अलंकारों से बोझिल। दण्डी के काव्य में छोटे–छोटे ललित पदावली से युक्त वाक्य है अतः 'दण्डिनः पदलालित्यम्' इति संस्कृत जगत् में प्रसिद्ध है। किसी विद्वान् ने तो दण्डी की प्रशंसा करते हुए कहा है –

"कविर्दण्डीकविर्दण्डीकविर्दण्डी न संशयः।"

अर्थ की स्पष्टता, कल्पना की सुन्दरता, अभिव्यक्ति, रस की सरसता और सजीवता तथा शब्दों का लालित्य दण्डी की शैली की मुख्य विशेषताएं है। दण्डी पांचालीरीति के कवि है।

प्रो. कीथ ने दण्डी की मुख्य विशेषता उनका चरित्र–चित्रण माना है। उनकी इन्हीं काव्यात्मक विशेषताओं के कारण समालोचक उन्हें वाल्मीकि व व्यास के पश्चात् तीसरा कवि मानते है। अभिप्राय स्पष्ट है कि दण्डी का संस्कृत काव्य जगत् में अपना महत्वपूर्ण स्थान है।

5.2.2.2 सुबन्धु

गद्य साहित्य लेखन में सुबन्धु का भी अपना महत्वपूर्ण स्थान है। कुछ विद्वान् सुबन्धु को दण्डी का पूर्ववर्ती मानते है तथा कुछ समालोचक दण्डी का पश्चात्वर्ती स्वीकार करते है। अतः विद्वान् इनका स्थिति काल छठीं शताब्दी का अन्तिम भाग निर्धारित करते है। समय को लेकर विद्वानों में मतभेद चाहे हो परन्तु सुबन्धु को अलंकृत गद्य–शैली का

सर्वोत्कृष्ट कवि मानने में किसी को भी आपत्ति नहीं है।

सुबन्धु द्वारा रचित एक मात्र गद्य–रचना 'वासवदत्ता' है इसमें वासवदत्ता व कन्दर्पकेतु की प्रणय कथा का वर्णन है। इसमें कथानक तो बहुत छोटा है परन्तु वर्णन की प्रचुरता है। अलंकृत शैली में लिखे इस काव्य का मुख्य उद्देश्य पाण्डित्य प्रदर्शन करना है। सुबन्धु गौड़ी रीति के कवि है उनके प्रत्येक पद में श्लेषयुक्त शैली का समावेश है स्वयं सुबन्धु ने अपने विषय में कहा है कि –

"प्रत्यक्षरश्लेषमय प्रपञ्चविन्यासवैदग्ध्यनिधिप्रबन्धम्" आदि।

सुबन्धु की रचना में अतिश्योक्ति, अनुप्रास एवं समासप्रधान शैली की प्रधानता है। समासबाहुल शैली के कारण सुबन्धु की गद्य शैली में कृत्रिमता व क्लिष्टता ही अधिक है।

5.2.2.3 बाणभट्ट

संस्कृत गद्य काव्य के चरमोत्कर्ष के रुप में बाण का सर्वश्रेष्ठ स्थान है श्री हर्षवर्धन के सभापण्डित होने के कारण बाणभट्ट का समय भी निश्चित व विवाद रहित है। बाणभट्ट माँ सरस्वती के वरदपुत्र थे। उनका प्रारम्भिक जीवन तो संघर्षमय रहा किंतु बाद में कवि समाज ने उन्हें जितना सम्मान दिया उससे कहीं अधिक सम्मान उन्हें राजदरबार में मिला। 'हर्षचरित' के प्रारम्भिक दो परिच्छेदों में उनकी आत्मकथा वर्णित है। बाण वात्स्यायन गोत्र के ब्राह्मण थे। उनके पितामह का नाम अर्थपति तथा पिता का नाम चित्रभानु था। माता का नाम राजदेवी था। वे शोण नदी के किनारे प्रीतिकूट ग्राम में निवास करते थे। बचपन में ही माँ की मृत्यु के कारण तथा चौदह वर्ष की अवस्था में पिता की छत्रच्छाया भी उठ जाने के कारण बाण उत्छृंखल हो गये तथा अपनी पैतृक सम्पत्ति के कारण अपने मित्रों के साथ देशाटन पर निकल गये। सम्राट हर्षवर्धन के भाई श्री कृष्ण के एक पत्र से उन्हें पता चला कि हर्षवर्धन उनसे नाराज़ है। तत्पश्चात् वे हर्षवर्धन से मिले। प्रारम्भिक समय में तो हर्षवर्धन बाण भट्ट से नाराज रहे परन्तु बाद में इनकी विद्वता से प्रसन्न होकर इन्हें आश्रय प्रदान किया। सभापण्डित के रुप में सम्मानित होकर बाणभट्ट ने हर्षवर्धन के चरित पर 'हर्षचरित' गद्य काव्य की रचना की।

5.2.2.3.1 बाण का समय –

बाणभट्ट के समय को लेकर कोई भी विवाद नहीं है। सम्राट हर्षवर्धन के सभाकवि होने के कारण बाण का समय ईसा की सातवीं शतीं का पूर्वार्द्ध निश्चित है, क्योंकि हर्षवर्धन का राज्यकाल 606 ई. से 645 ई. तक है। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने 629 ई. से 645 ई. तक के भारत का तथा हर्षवर्धन का सविस्तार वर्णन किया है परन्तु उन्होंने बाण की चर्चा नहीं की। इस बात पर विद्वान् समीक्षक यह अनुमान लगाते है कि उस समय या तो बाण की मृत्यु हो चुकी थी या उनको सम्राट हर्षवर्धन के दरबार से सम्बंध विच्छेद हो गया था। विच्छेद का कारण या तो सैद्धान्तिक मतभेद या पुलकेशी द्वितीय से हर्षवर्धन की पराजय रही होगी। आचार्य वामन (779–813 ई.) ने कादम्बरी के दीर्घ समास वाले वाक्य को उद्धृत किया है।

पुरन्दर (800–850 ई.) ने हर्षचरित व कादम्बरी के आधार पर आख्यायिका व कथा के भेद को स्पष्ट किया है। इससे स्पष्ट है कि बाण सातवीं शताब्दी तक प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे तभी लक्षणग्रन्थकारों ने उनकी रचनाओं के उदाहरण

प्रस्तुत किये हैं।

5.2.2.3.2 बाण की कृतियाँ –

बाणभट्ट बहुमुखी प्रतिभा की धनी थे अतः उन्होंने अनेक रचनाओं का प्रणयन किया, परन्तु उनकी सारी कृतियाँ साहित्य मर्मज्ञों के सामने नहीं आ सकी। बाण द्वारा विरचित पाँच कृतियों का उल्लेख मिलता है–

1. हर्षचरित
2. चण्डीशतक
3. मुकुटताडितक
4. पार्वतीपरिणय
5. कादम्बरी

1. **हर्षचरित** – बाण की प्रथम कृति है। यह आठ उच्छ्वासों में विभक्त एक आख्यायिका है। बाण ने लिखा है कि–

   "तथापि नृपतेभर्क्त्या भीतोनिर्वार्हणाकुलाः।
   करोम्याख्यायिकाम्भोधौ जिह्वाप्लवनचापलम्।।"

   (सम्राट के प्रति असाधारण अनुराग के कारण आख्यायिका रुपी समुद्र को पार करने की आकुलता और भय का अनुभव करते हुए अपनी जिह्वा से तैरने की चपलता कर रहा हूँ।) आठ उच्छ्वासों की इस आख्यायिका में तीन उच्छ्वास बाण की आत्मकथा के है। शेष पाँच उच्छ्वासों में हर्ष के चरित का वर्णन है।

2. **चण्डीशतक** – ग्रन्थ भगवती देवी की स्तुति में गांढबन्धशैली में लिखा गया है। कुछ विद्वान चण्डीशतक को बाणभट्ट की रचना स्वीकार नहीं करते परन्तु पी.वी. काणे का कहना है कि चण्डी के प्रति बाण के मन में विशेष सम्मान था क्योंकि कादम्बरी में चण्डिका मन्दिर का वर्णन इसका प्रमाण है।

3. **मुकुटताडितक** – यह नाटक महाभारत के कथानक पर आधारित है। नलचम्पू के टीकाकार चण्डपाल व गुण विजयमणि ने भोजराज के 'श्रृंगारप्रकाश' में 'मुकुटताडितक' का उल्लेख किया है तथा इसे बाणभट्ट की रचना माना है परन्तु यह रचना अनुपलब्ध है।

4. **पार्वतीपरिणय** – कुछ विद्वान् पार्वतीपरिणय नाटक को बाण की कृति मानते परन्तु 'पार्वतीपरिणय' जैसी शिथिल रचना को बाण की रचना नहीं माना जा सकता। डॉ. कीथ का कहना है कि यह बाणभट्ट की रचना नहीं है क्योंकि इसकी रचना 15वीं शतब्दी में हुई है।

5. **कादम्बरी** – कादम्बरी बाणभट्ट की असाधारण रचना है तथा संस्कृत गद्य काव्य की सर्वोत्कृष्ट कृति है। गद्य काव्य के लक्षणों के आधार पर यदि कादम्बरी की समीक्षा करें तो कथा के लक्षणों के आधार पर कादम्बरी खरी उतरती है। बाणभट्ट की प्रथम कृति 'हर्षचरित' ऐतिहासिक कथा है और कादम्बरी एक काल्पनिक, कथा है। आपके पाठ्यक्रम में

निर्धारित 'शुकनासोपदेश–वर्णनम्' कादम्बरी से ही उद्धृत है। कुछ विद्वानों का मानना है कि कादम्बरी की कथा गुणाढ्य की बृहत्कथा से ली गयी है। तीन जन्मों के अनुकरण की कथा जैसी वृहत्कथा में प्राप्त होती है, वैसी ही कथा कादम्बरी में प्राप्त होती है अतः कादम्बरी को बृहत्कथा का अनुकरण माना गया है। परन्तु जैसी मनोहर शैली, जीवनोपयोगी भावों का सशक्त वर्णन तथा प्रकृति के कोमल उदात्त रूप तथा राजाओं के समृद्धि तथा तपोवन की पावनता के जो चित्र कादम्बरी में वर्णित है वे बाणभट्ट की अद्भुत प्रतिभा का ही कमाल है। कादम्बरी बाणभट्ट की सर्वोत्कृष्ट मौलिक रचना है। यह दो भागों में विभक्त है– पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध। पूर्वार्द्ध पूरे ग्रन्थ का दो तिहाई भाग है तथा यह बाणभट्ट की रचना है– और उत्तरार्ध उनके पुत्र भूषणभट्ट की कृति है। भाषा भाव, शब्द और अर्थ, कल्पना तथा यथार्थ का अद्भुत समन्वय इस रचना में दिखाई देता है। इसमें कादम्बरी व चन्द्रापीड़ तथा महाश्वेता व पुण्डरिक के जन्म–जन्मान्तर तक चलने वाले आन्तरिक प्रेम का आदर्श प्रस्तुत किया गया है। कादम्बरी की वर्णन शैली अनुपम है। वर्णनों व अलंकारों की सुन्दर छटा पाठक को आनन्दविभोर कर देती है। बलदेव उपाध्याय कादम्बरी की वर्णन–शैली के विषय में लिखते है–

"अलंकार तथा रस के मधुर मिलन में, भाषा तथा भाव के परस्पर सम्पर्क में, कल्पना तथा वर्णना के अनुरूप संघटन में, कादम्बरी संस्कृत साहित्य में अनुपम है, अद्वितीय है। कादम्बरी रसिक हृदयों को मत्त कर देने वाली सच्ची कादम्बरी मीठी मदिरा है।"

5.2.2.3.3 बाण भट्ट की गद्य शैली

बाण की दोनों प्रमुख कृतियाँ हर्षचरित, कादम्बरी घटना प्रधान नहीं वरन् शैली प्रधान कृतियाँ हैं। जहाँ वर्णन शैली की प्रधानता होती है वहाँ घटना को विशेष महत्व नहीं दिया जाता। 'हर्षचरित' की प्रस्तावना में बाणभट्ट ने विभिन्न देशों की शैलियों तथा अपने पूर्ववर्ती कवियों की गद्य शैली का परिचय दिया है। इस समन्वित शैली को ही साहित्य शास्त्रियों ने पाञ्चाली रीति कहा है–

"शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरिष्यते।
शीलाभट्टारिकावाचि बाणोक्तिषु च सा यदि।।"

"पाञ्चाली रीति में शब्द और अर्थ का समान गुम्फ अर्थात् शब्द व अर्थ का परस्पर सन्तुलन रहता है यह शैली शीला भट्टारिका के गद्य तथा बाण की उक्तियों के रूप में वर्तमान है।" अर्थ तथा वर्ण्यविषय यदि उदात्त, कठोर और ओजस्वी हो तो भाषा में भी ओज व कठोरता का आना अनिवार्य हो जाता है। ओज व समासों की बहुलता को गद्य का जीवित अर्थात् प्राणतत्व माना गया है।

"ओज समासभूयस्त्वम् एतत् गद्यस्य जीवितम्।"

एक कवि के गद्य काव्य में काव्य सौन्दर्य के साथ शब्द शास्त्र का पाण्डित्य भी अपेक्षित है जिससे वर्णन के अनुकूल शब्दों को सजाकर

गद्य का भव्य स्वरुप प्रस्तुत कर सके। पद्य कवि छंद के निर्धारित नियमों का अनुगमन करता है परन्तु गद्य कवि स्वछन्द होता है अतः दोष आ जाना स्वाभाविक है। पद्य के नियत छंद बन्धन में रचना के दोष छिप जाते हैं परन्तु गद्य के दोष तुरन्त प्रतीत होने लगते है अतः गद्य के परिमार्जित स्वरूप को प्रकट करने के लिए नवीन चमत्कारपूर्ण अर्थ, सुरूचिपूर्ण स्वभावोक्ति, सरस श्लेष, स्पष्ट रसाभिव्यक्ति और अक्षरों की दृढ़ बन्धता यह सभी गुण एक साथ किसी कवि में होना अत्यन्त दुर्लभ है, बाण की रचना में यह सभी गुण एक साथ प्राप्त होते है।

"नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽश्लिष्टः स्फुटोरसः।
विकटाक्षरबन्धश्चकृस्त्नमेकत्रदुर्लभम्।।"

बाणभट्ट पाञ्चाली गद्य–रीति के प्रवर्तक माने जाते है। बाणभट्ट की शैली गद्य कवियों के लिए आदर्श है। चित्रण की सजीवता तथा प्रभावशालिता उत्पन्न करने के लिए बाणभट्ट ने समासबहुल, ओजोगुण से मण्डित शैली का स्थान–स्थान पर अवश्य आश्रय लिया है परन्तु अन्यत्र छोटे–छोटे वाक्यों का प्रयोग कर उन्होंने अपनी शैली को सशक्त तथा प्रभावोत्पादक बनाया है। शुकनासोपदेश में उपदेश को हृदयंगम व प्रभावशाली बनाने के विचार से लघुकलेवर वाले प्रासादिक वाक्यों को प्रस्तुत किया है।

उदाहरणार्थ – "लब्धापि दुःखेन पाल्यते। न परिचयं रक्षति। नाभिजनममीक्षते। न रूपमालोकयते। न कुलक्रममनुवर्तते। न शीलं पश्यति। न वैदग्ध्यं गणयति।"

इस प्रकार बाण की शब्दावली भावों के अनुरूप गमन करती है जहाँ कोमल, मार्मिक ज्ञान और प्रेम की अभिव्यक्ति है वहाँ भाषा भी कोमल, मधुर, सहज व सरल है तथा जहाँ राजवैभव, रूपच्छटा तथा प्रकृति की रमणीयता का वर्णन है वहाँ दीर्घ समास तथा अलंकारों से खज्जित वाक्यों के प्रयोग है। यूं भी कादम्बरी एक शैली प्रधान रचना है तथा उस समय गद्य कवि द्वारा अपनी उत्कृष्टता सिद्ध करने का यह एक मानदण्ड थी। बाणभट्ट में गद्य की अपनी एक विशेषता है जिसकी समता या अनुकरण कोई भी परवर्ती गद्यकार नहीं कर पाया अतः अनेकानेककवियों, समीक्षकों तथा विद्वानों ने इनकी काव्य परिपक्वता की प्रशंसा की है। त्रिलोचन कवि बाण की रसमयी कविता के विषय में कहते है कि–

"हृदि लग्नेन बाणेन यन्मन्दोऽपि पदक्रमः।
भवेत् कविकुरङ्गाणां चापलं तत्र कारणम्।।"

बाण की कविता के समक्ष अन्य कवियों की कविता चपलता मात्र है। शब्दों के सम्पदा पर बाण का एकाधिपत्य है। शब्द प्रयोग के वैविध्य व वैचित्र्य को लेकर बाण की कोई सानी नहीं है। यही कारण है कि बाण के वर्णनों में स्निग्धता व रुचिरता है। **डॉ. बलदेव उपाध्याय** कहते है। कि "बाण संस्कृत भाषा के सम्राट हैं। शब्दों पर उनकी

अद्भुत प्रभुता है तथा गद्य में अद्भुत प्रवाह है। कहीं उनका गद्य घोर शोर करने वाली बरसाती नदियों की भांति बड़े वेग से बहता है, तो कहीं शान्त सरिता के समान मन्द गति से चलकर अपूर्व सौन्दर्य दिखलाता है। वाक्यों के नवीकरण की विलक्षण योग्यता बाणभट्ट में है।"

बाणभट्ट की रूचिर वर्णों वाली रसभावपूर्ण वाणी के विषय धर्मदास जी कहते है–

"रूचिर–स्वर – वर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति।
सा किं तरुणी? नहि नहि वाणी वाणस्य मधुरशीलस्य।।"

बाण के विषय में अन्य विद्वानों की मान्यता इस प्रकार है–

वागीश्वरं हन्त भजेऽमिनन्दमर्थेश्वरं वाक्यतिराजमीडे।
रसेश्वरं स्तौमि च कालिदासं, बाणं तु सर्वेश्वरमानतोऽस्मि।। (सोड्ढल)

सहर्षचरितारब्धाद्भुतकादम्बरी कथा।
बाणस्य वाण्यनार्येव स्वछन्दा भ्रमति क्षितौ।। (राजशेखर)

प्रतिकविभेदनबाणः कवितातरूगहनविहरणमयूरः।
सहृदयलोकसुबन्धुर्जयति श्रीबाणभट्टकविराजः।। (वीरनारायणचरित)

युक्तं कादम्बरीं श्रुत्वा कवयो मौनमाश्रिताः।
बाणध्वनावनाध्यायो भवतिति स्मृतिर्यतः।। (सोमेश्वरदेव)

दण्डीत्युपस्थितौ सद्यः कवीनां कम्पतां मनः।
प्राविष्टे त्वन्तरं बाणे कण्ठे वागेव रूध्यते।। (अज्ञात)

5.3 शुकनासोपदेश के आधार पर बाणभट्ट की गद्य–शैली की विशेषतायें

बाणभट्ट का स्थान संस्कृत गद्य साहित्य में अन्यतम है। हर्षचरित व कादम्बरी जैसे गद्य–काव्यों की रचना कर बाणभट्ट ने काव्य मर्मज्ञों के मध्य अपना विशेष स्थान बनाया है। अनेक समीक्षकों व विद्वानों ने बाण द्वारा लिखित कादम्बरी की भूरि–भूरि प्रशंसा की है।

कवि समुदाय में प्रचलित 'बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्' अर्थात् "यह सम्पूर्ण विश्व बाण की झूठन है।" बाण के काव्य के अध्ययन से यह सिद्ध हो जाता है कि बाण की शैली की प्रौढ़ता तथा प्रवाहमयता अन्य कवियों से अनूठी हैं।

बाण के काव्य में कल्पनाओं की सुन्दरता, शब्दों का अपूर्व भंडार, प्रकृति चित्रण की सजीवता, भावों की उदात्तता, अलंकारों की विवधता तथा समासों की बहुलता तथा सहज–सरल, भावों की गतिमयता व तरलता है। बाण ने कादम्बरी में भौतिक प्रेम का नहीं वरन् जन्म जन्मान्तर के प्रेम के आदर्श को प्रस्तुत किया है। परन्तु कादम्बरी सिर्फ प्रेम कथा ही नहीं है वह जीवन को सही मार्ग पर प्रेरित करने वाले उपदेशों व प्रेरणास्पद कथनों से भी परिपूर्ण है। 'शुकनासोपदेश' कादम्बरी से उद्धृत ऐसा ही उपदेश है जो शुकनास ने चन्द्रापीड को दिया है।

'शुकनासोपदेश' बाणभट्ट की कादम्बरी के पूर्वार्द्ध से उद्धृत है। शुकनास तारापीड़ का महामंत्री था। जब तारापीड़ के पुत्र राजकुमार चन्द्रापीड़ अपना विद्याध्ययन पूर्ण कर घर लौटते है, तब राजा तारापीड़ अपने पुत्र चन्द्रापीड़ का राज्याभिषेक करना चाहते हैं। राजा इस बात से भली भाँति परिचित थे कि चन्द्रापीड़ सिर्फ शास्त्र ज्ञान प्राप्त कर लौटे है परन्तु जीवन में व्यवहारिक व अनुभव जनित ज्ञान भी आवश्यक है।

तारापीड़ चाहते थे कि युवराज बनने के पूर्व चन्द्रापीड़ को व्यवहारिक जगत् की शिक्षा भी दी जाये। इसके लिए राजा का वयोवृद्ध मंत्री शुकनास सबसे योग्य व्यक्ति था जिसे राजकार्य व व्यवहारिक जीवन दोनों का ही अनुभव था अतः तारापीड़ विद्याध्ययन से लौटने के बाद सर्वप्रथम चन्द्रापीड़ को मंत्री शुकनास के समीप भेजते हैं तथ शुकनास ने चन्द्रापीड़ को जो उपदेश दिया, वह उपदेश कादम्बरी में 'शुकनासोपदेश' के नाम से प्रसिद्ध है।

'शुकनासोपदेश' का संस्कृत साहित्य में अपना विशेष महत्व है। इस उपदेश में जीवन की शाश्वतता व वास्तविकता का जो संदेश दिया गया है वह आज भी सत्य है तथा भविष्य में भी सत्य रहेगा। हमारी भारतीय संस्कृति में गुरु का स्थान सर्वश्रेष्ठ रहा है। गुरु ही संसार सागर में भटके मनुष्य को जीवन के वास्तविक सत्य तथा आनन्द की ओर ले जाता है। मंत्री शुकनास ने अपने उपदेश में जन्मजात प्रभुता, अतुलनीय वैभव, नवीन यौवन, अनुपम सौन्दर्य और अलौकिक शक्ति से उत्पन्न होने वाले भयकंर दुष्परिणामों, लक्ष्मी के कारण उत्पन्न मदान्धता तथा इन सबसे सावधान रहने तथा गुरु के उपदेश की महत्ता व पवित्रता का वर्णन किया है। अपनी संक्षिप्त व सारगर्भित वाणी में दिये गये इस उपदेश में एक–एक शब्द नपा–तुला तथा मानव मस्तिष्क पर तुरंत प्रभाव डालने वाला है। शुकनासोपदेश को पढ़कर या सुनकर इसकी प्रभावोत्पादकता से निकल पाना कठिन है। शुकनास का उपदेश जीवन के लिए वरेण्य है। शुकनास कहते है कि–**"गर्भेश्वरत्वमभिमवयौवनत्वम– प्रतिभरूपत्वममानुषशक्तित्वञ्चेति महतीयं खल्वनर्थपरम्परा। सर्वाविनयानामेकैक–मप्येषामायतनम्, किमुत समवायः।"**

महाकवि बाणभट्ट ने इस उपदेश के माध्यम से सार्थक व सफल जीवन जीने की प्रेरणा दी है। जीवन में सफलता के लिए शास्त्र ज्ञान जितना उपयोगी है, उससे कहीं अधिक आवश्यक है व्यवहारिक ज्ञान। अतः डॉ. विश्वनाथ शर्मा 'शुकनासोपदेश' की भूमिका में लिखते है कि **"इस प्रकार महामंत्री शुकनास का यह उपदेश प्रत्येक उस युवक के प्रति दीक्षान्त भाषण के रूप में है, जो सैद्धान्तिक ज्ञान उपार्जित करने के अनन्तर संसार महार्णव में पदार्पण करने को तत्पर है।"**

विषय व भाव की दृष्टि से शुकनासोपदेश जितना प्रभावशाली है, उतना ही शैली व चित्रण की सजीवता व प्रभावशक्ति के कारण महत्वपूर्ण है। समास बहुल, ओजोगुण से मण्डित शैली बाणभट्ट की विशेषता है। शुकनासोपदेश के निम्न एक ही गद्यांश में बाणभट्ट ने, रूपक, श्लेष, उपमादिअलंकारों का प्रयोग किया है।

यथा–

"यौवनारंभे च प्रायः शास्त्र जलप्रक्षालननिर्मलापि कालुष्यमुपयाति बुद्धिः। अनुज्झित– धवलतापि सरागैव भवति यूनां दृष्टिः। अपहरति च वात्येव शुष्कपत्रं समुद्भूतरजोभ्रान्तिर– तिदूरमात्मेच्छया यौवनसमये पुरूषं प्रकृतिः। इन्द्रियहरिणहरिणी च सततदुरन्ता इयमुपभोगमृगतृष्णिका नवयौवनकषायितात्मनश्च सलिलानीव तान्येव विषयस्वरूपाण्यास्वाद्यमानानि मधुरतराण्यापतन्ति मनसः। नाशयति च दिङ्मोह इवोन्मार्गप्रवर्तकः पुरूषमत्यासंगो विषयेषु। भवादृशा एव भवन्ति भाजनान्युपदेशानाम्। अपगतमले हि मनसि स्फटिकमणाविव रलनिकरगंभस्तयो विशन्ति सुखेनोपदेशगुणाः।"

अलंकारों से बाण को विशेष अनुराग है तथा विशेषकर उत्प्रेक्षा व उपमा से सम्पूर्ण 'शुकनासोपदेश' व्याप्त है। उत्प्रेक्षा प्रयोग में बाण कुशल है। किसी भी भाव को चित्रित करते समय एक के बाद एक उत्प्रेक्षा व उपमा के प्रयोग बाण की महती विशेषता है। वह किसी भी विषय का वर्णन जब तक नहीं छोड़ते जब तक उसके सारे अप्रस्तुतों को प्रस्तुत नहीं कर देते। उत्प्रेक्षा का एक उदाहरण देखिये–

"अतिप्रयत्नविधृतापि परमेश्वरगृहेषु विविधगंधगज गण्डमधुपानमत्तेव परिस्खलति। पारूष्यमिवोपशिक्षितुमसिधारासु निवसति। विश्वरूपत्वमिव ग्रहीतुमाश्रिता नारायणमूर्तिम्।"

इसी के आगे पूर्णोपमा की रमणयीता भी दर्शनीय है– **"लतेव विटपकान–ध्यारोहति, रागेव वसुजनन्यपि**

तरंगबुद्बुद्चञ्चला दिवसकरगतिरिव प्रकटति विविध संकान्ति पातालगुहेव तमोबहुला।" इस प्रकार बाणभट्ट के 'शुकनासोपदेश' में उत्प्रेक्षा व उपमा के प्रयोग यत्र–तत्र सर्वत्र मिल जायेंगे। उपमा व उत्प्रेक्षा की छटा के अलावा विरोधाभास अलंकार का प्रयोग देखिये–

"परस्परविरूद्वश्चेन्द्रजालमिव दर्शयन्ति। प्रकटयति जगति निजचरितम्। तथाहि सततम् ऊष्माणमारोपयन्त्यपि जाड्ययमुपजनयति। उन्नतिमादधानापि नीचस्वभावतामा विष्करोति। तोयराशि संभवामि तृष्णां संवर्धयति। ईश्वरतां दधानापि अशिवप्रकृतित्व– मातनोति। बलोपचयमाहरन्त्यपि लघिमानमापादयति। अमृतसहोदरापि कटुविपाका। विग्रहवत्यपि अप्रत्यक्षदर्शना। पुरूषोत्तमरतापि खलजनप्रिया। रेणुमयीव स्वच्छमपि कलुषीकरोति।"

अर्थात् लक्ष्मी इस संसार में परस्पर विरुद्ध धर्म समन्वित चरित्र प्रकट करती है। क्योंकि सर्वदा उष्णता (घमण्ड) को आरोपित करती हुई शीतलता (जड़ता) को उत्पन्न करती है। उन्नति को धारण करती हुई छोटेपन (नीच स्वभाव) को प्रकट करती है। जलराशि (समुद्र) से उत्पन्न होकर भी तृष्णा (प्यास) को बढ़ाती है। शिव होकर भी अशिव स्वभाव का विस्तार करती है। बलवृद्धि उत्पन्न करके भी लघुता को उत्पन्न करती है। अमृत की सहोदरा होकर भी कटु परिणाम वाली है। नारायण में आसक्त होने पर भी दुर्जनों के प्रति प्रीति रखती है।

धूलिरहित होकर भी निर्मल वस्तुओं को मलिन कर देती है। इस प्रकार विरोधाभास का इतना सुन्दर प्रयोग अन्यत्र दुर्लभ है।

अलंकार प्रयोग में जहाँ उपमा व उत्प्रेक्षा के सुन्दरतम् प्रयोगों के साथ रूपक के प्रयोग भी कम आकर्षक नहीं है। परम्परितरूपक का उदाहरण इस प्रकार है–

"इयं संवर्धनवारिधारा तृष्णाविषवल्लीनाम्, व्याधगीतिरिन्द्रय मृगाणाम् परामर्शधूमलेखा सच्चरित चित्रणाम्. .....आदि।"

इन अलंकारों के अतिरिक्त परिसंख्या, अर्थान्रतन्यास, अर्थापत्ति आदि अनेक अलंकारों के प्रयोग बाण ने यथा स्थान किये है, सभी प्रयोग स्वाभाविक नहीं है। अनेक स्थानों पर सायास डाले जाने वाले अलंकारों से काव्योचित सरलता व सरसता में बाधा भी उत्पन्न होती है। परन्तु इतना स्पष्ट है कि अलंकारों के प्रयोग में बाण निष्णात है।

भाषा – बाण शब्दों के चितेरे कवि है। शुकनासोपदेश में भी शब्दों की अद्भुत वैभव दिखायी देता है। शब्द भावों का अनुगमन करते प्रतीत होते है। श्लेष व उपमा के द्वारा उन्होंने प्रकृति के जो चित्र खीचें है वह अन्यत्र दुर्लभ है। पाश्चात्य विद्वानों जैसे वेबर आदि ने बाण की शैली को अरुचिकर, अतिसूक्ष्म तथा पुनरूक्तता दोष से युक्त माना है। विशेषणों के अतिशय प्रयोग तथा विशेषणों के विशेषणों को देखकर वेबर ने कहा है कि "बाण का गद्य एक भारतीय जंगल है, जिसमें यात्री तब तक आगे नहीं बढ़ सकता जब तक वह झाड़ियों को काटकर अपने लिए मार्ग नहीं बना लेता और जहाँ उसके बाद भी भयानक अज्ञात शब्दों के रूप में दुष्ट जंगली पशुओं का सामना करना पड़ता है।"

बाण पर पाश्चात्य विद्वानों के यह आक्षेप पूर्णतः गलत तो नहीं है परन्तु बाण ने अपने गद्य में छोटे–छोटे प्रभावशाली वाक्यों का प्रयोग भी किया है। 'शुकनासोपदेश' के अनेक स्थल इसके उदाहरण है जहाँ बाण ने छोटे–छोटे प्रभावशाली वाक्यों का प्रयोग किया है। यथा लक्ष्मी वर्णन में– **"न परिचयं रक्षति। नाभिजनमीक्षते पश्यति। न वैदग्ध्यं गणयति। न श्रुतमाकर्णयति। न धर्ममनुरूध्यते। न त्यागमाद्रियते। न विशेषज्ञतां विचारयति। नाचारं पालयति। न सत्यमवबुध्यते। न लक्षणं प्रमाणीकरोति। गंधर्वनगरलेखेव पश्यत एव नश्यति।"**

इस प्रकार शुकनासोपदेश में भाषा व गतिमयता व प्रवाह है। घटनाक्रम की तीव्रता व द्रुतमयता को दर्शाने के लिए बाण ने ऐसे वाक्यों के ही प्रयोग किये है। अतः बाण ने गौड़ी रीति का प्रयोग तो सफलता पूर्वक

किया ही है, पाञ्चाली व वैदर्भी के प्रयोग भी यथा स्थान मिलते है। **"डॉ. वचनदेव कुमार के अनुसार उनकी 'कादम्बरी' में गौड़ी, वैदर्भी और पांचाली तीनों रीतियाँ वर्ण्य–विषय के अनुसार बदलती रहती हैं।"**

गद्य शैली के लिए निर्धारित मानदण्डों की कसौटी पर बाण का गद्य पूर्णतः खरा उतरता है। पाश्चात्य समीक्षकों ने बाण की क्लिष्ट शैली की चाहे आलोचना की हो भारतीय विद्वानों व समीक्षकों ने बाण की शैली को मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। श्री चन्द्रदेव के अनुसार–

"श्लेषेकेचन शब्दगुम्फविषये केचिद्रसेचापरेऽ
लंकारे कतिचित्सदर्थविषयेचान्येकथा वर्णने।
आ सर्वत्रगभीरधीरकविताविन्ध्याटवी चातुरी
संचारी कवि कुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पंचाननः।"

"कुछ श्लेष में, कुछ शब्दों के उपयुक्त गुम्फन में, कुछ रसाभिव्यक्ति में, कुछ अलंकार, अर्थ–व्यक्ति अथवा कथा वर्णन में कुशल होते है किंतु बाण तो कविता की विन्ध्याटवी में कवि कुञ्जरों के गण्डस्थल को विदीर्ण करने वाले सिंह है।" इस प्रकार–बाण संस्कृत के एक श्रेष्ठ गद्यकवि है और इनकी अप्रतिम प्रतिभा की तुलना अन्य किसी कवि से करना कठिन है।

5.4 लक्ष्मी के दोषों का निरुपण

'शुकनासोपदेश' में मंत्री शुकनास ने चन्द्रापीड़ को जो उपदेश दिया है, उसमें लक्ष्मी के दोषों का निरूपण किया गया है। शुकनास राजा का अमात्य रहा है अतः परिचित था कि लक्ष्मी की अधिकता मनुष्य में दोष उत्पन्न कर देती है। जन्मजात प्रभुता, अतुल वैभव, नवीन यौवन तथा अनुपम सौन्दर्य तथा अलौकिक शक्ति आदि सभी बहुत बड़े अविनयों के स्थान है।

इसी क्रम में सर्वप्रथम शुकनास ने लक्ष्मी के स्वभाव का वर्णन किया है। लक्ष्मी चंचल, निर्मोही, मायावी, छलप्रपंचमयचरितवाली तथा विरोधी चरित को प्रकट करने वाली है। यह निपुण योद्धाओं के खडग समूह स्वरूप कमल वन में विचरण करने वाली भ्रमरी के समान है। लक्ष्मी के बहुरूपिया चरित्र के कारण शुकनास लक्ष्मी का चित्रण सुन्दर उत्प्रेक्षा के रूप में करते है। अमृतमंथन के पौराणिक आख्यान के अनुसार लक्ष्मी की उत्पत्ति समुद्र (क्षीरसागर) से हुई है। अतः समुद्र से बाहर आते समय वह मनबहलाव के लिए अपने साथ की वस्तुओं से कुछ न कुछ निशानी लेकर आयी है। पारिजात के पत्तों से राग, चन्द्रमा से कुटिलता, उच्चैश्रवा नामक घोड़े से चंचलता, कालकूट विष से सम्मोहन शक्ति, मदिरा से मद, कौस्तुभ नामक मणि से निष्ठुरता आदि। इस प्रकार आसक्ति, कुटिलता, चंचलता, निष्ठुरता आदि दोष लक्ष्मी में भी है तथा लक्ष्मी जिस व्यक्ति के पास जाती है, यह सारे दोष उसमें स्वतः आ जाते हैं।

लक्ष्मी की चंचलता के विषय में शुकनास कहते है कि यह लक्ष्मी किसी के पास भी ज्यादा समय तक नहीं ठहरती। अत्यन्त परिश्रम से प्राप्त करने पर भी इसका पालन करना कठिन है। शौर्य आदि उत्तम गुण रूप रस्सियों के बन्धन से निश्चल की हुई भी यह भाग जाती है। उद्दाम दर्प वाले हजारों योद्धाओं के तलवारों के पहरों से भी यह निकल जाती है। अभिप्राय यह है कि अत्यन्त उपाय व परिश्रम करने पर भी यह किसी के पास नहीं टिक सकती। उदाहरणार्थ– **"न परिचयं रक्षति। नाभिजनमीक्षते। न रुपमालोकयते। न कुलक्रममनुवर्तते। न शीलं पश्यति। न वैदग्ध्यं गणयति। न श्रुतमाकर्णयति। न धर्ममनुरूध्यते। न त्यागमाद्रियते। न लक्षणं प्रमाणीकरोति। गंधर्वनगरलेखेव पश्यत एव नश्यति।"**

लक्ष्मी की चचंलता के विषय में शुकनास कहते है कि समुद्र मंथन के समय मन्दराचल के भ्रमण से उसी के संस्कार स्वरूप लक्ष्मी आज भी घूमा करती है। कमलवन में विचरण करने से कमल दंड के कांटे लग जाने से क्षत–विक्षत पैर वाली आज भी कहीं जमा कर पैर नहीं रखती बड़े–बड़े राजाओं के महलों में सुरक्षित रखी जाती हुई भी यह दूसरे राजाओं के पास चली जाती है।

लक्ष्मी अत्यन्त निष्ठुर है और निष्ठुरता सीखने के लिए ही मानों यह राजाओं की तलवार की धार पर निवास करती है। बहुरूपिया होने के कारण ही मानो उसमें विष्णु का आश्रय लिया है। यह लक्ष्मी अत्यन्त अविश्वसनीया है। जिस प्रकार कमल के मूल व नाल होने पर भी संध्या के समय सूर्यास्त होने पर शोभा कमल को छोड़ देती है उसी प्रकार राजा के (दण्ड) सैन्य व कोष (धन) से विशेष वृद्धि पाते रहने पर भी लक्ष्मी राजा का परित्याग कर जाती है। लता जिस प्रकार वृक्ष की शाखाओं का आश्रय लेती है, उसी प्रकार लक्ष्मी धूर्तो का सहारा लेती है। गंगा जिस प्रकार आठ वसुओं की जननी होने पर भी तरंगों व बुद्बुदों के समान चंचल है, उसी प्रकार (वसु) धन को उत्पन्न करने पर भी चंचल है। सूर्य जिस प्रकार विविध संक्रातियों में प्रवेश करता है उसी प्रकार लक्ष्मी भी एक से दूसरे के पास संचरण करती है। जिस प्रकार पाताल की गुफा में अंधकार रहता है, उसी प्रकार लक्ष्मी के आने पर लोगों में अत्यधिक मोह हो जाता है। जिस प्रकार भीमसेन के साहस ने हिडिम्बा राक्षसी का मन अपहरण कर लिया उसी प्रकार भयंकर साहस ही लक्ष्मी का मन अपहरण कर सकता है जिस प्रकार वर्षाकाल में अंधकार छाया रहता है तथा बिजली चमकने से क्षणिक प्रकाश होता है उसी प्रकार यह थोड़ी देर के लिए गृह–नगर को प्रकाशित करती है अर्थात् लक्ष्मी चंचल है, एक स्थान पर या एक व्यक्ति के पास अधिक समय तक नहीं टिकती। इस प्रकार बहुत सुन्दर उत्प्रेक्षा के द्वारा कवि ने लक्ष्मी के चंचल स्वरुप का वर्णन किया है।

लक्ष्मी के दोषों का वर्णन करते हुए विरोधाभास का प्रभावपूर्ण चित्रण बाणभट्ट ने किया है। लक्ष्मी की दुष्ट रुपता की पिशाचिनी से तुलना कहते हुए शुकनास कहते है कि "जिस प्रकार दुष्ट पिशाचिनी अपने में बहुत पुरूषों की ऊँचाई दिखाकर दुर्जन व्यक्तियों को भय से उन्मत्त करती है, उसी प्रकार यह लक्ष्मी अनेक पुरूषों की उन्नति दिखाकर अल्प बुद्धि वाले निर्धन पुरूषों को उन्मत्त बना देती है। वाणी की देवी सरस्वती से ईर्ष्या होने के कारण विद्वान् व्यक्ति का आलिंगन नहीं करती अर्थात् विद्वान् के पास लक्ष्मी नहीं रहती, न ही यह गुणवान् व्यक्ति का स्पर्श करती है, उदार व्यक्ति का अमंगल के समान आदर नहीं करती, सज्जन व्यक्ति को अपशकुन के समान नहीं देखती, तथा उच्चकुलीन व्यक्ति को उसी प्रकार छोड़कर चल देती है, जिस प्रकार मार्ग में आने वाले सांप को व्यक्ति लांघकर चला जाता है। दानशील व्यक्ति का दुःस्वप्न के समान स्मरण नहीं करती। विनम्र व्यक्ति के पास उसी प्रकार नहीं जाती जिस प्रकार पापी व्यक्ति के पास कोई नहीं जाता। प्रसन्नचित्त व्यक्ति को पागल समझकर उपहास करती है। लक्ष्मी के विरोधी चरित्र को दिखाते हुए कहा है –

"परस्परविरुद्धश्चेन्द्रजालमिव दर्शयन्ति, प्रकटयति जगति निजचरितम्। तथाहि सततम् ऊष्माणमारोपयन्त्यपि जाड्यम् उपजनयति। उन्नतिमादधानापि नीचस्वभावतामाविष्करोति। तोयराशिसंभवापि तृष्णां संवर्धयति। ईश्वरतां दधानापि अशिवप्रकृतित्वमातनोति। बलोपचयमाहरन्त्यपि लघिमानमापादयति। अमृतसहोदरापि कटुविपाका। विग्रहवत्यपि अप्रत्यक्षदर्शना। पुरूषोत्तमरतापि खलजनप्रिया। रेणुमयीव स्वच्छमपि कलुषीकरोति।"

इस प्रकार लक्ष्मी प्राप्त होने पर व्यक्ति सद् असद् विवेकशून्य हो जाता है तथा समाज में धन के कारण उच्च स्थान प्राप्त होने पर भी स्वभाव में नीचता ला देती है। नीचता, दुष्टता, अमंगल रूपता तथा आसक्ति की प्रबलता के कारण व्यक्ति अनेक दोषों से युक्त हो जाता है।

दीपशिखा के समान जैसे–जैसे यह चंचला लक्ष्मी बढ़ती है वैसे–वैसे काजल के समान मलिन कर्मो को ही प्रकट करती है। लक्ष्मी प्राप्त होने पर सन्तुष्टि नहीं होती वरन् और अधिक प्राप्ति की तृष्णा बढ़ जाती है। सच्चरित्र का विनाश करने वाली तथा मोह को बढ़ाने वाली है। लक्ष्मी मनुष्य में काम क्रोध, लोभ, मोह आदि सभी अवगुणों को उत्पन्न कर देती है। लक्ष्मी के नशे में व्यक्ति शिष्ट आचरण तथा लोक व्यवहार को भूल जाता है तथा उसके दया, दान, दाक्षिण्य समस्त गुण नष्ट हो जाते हैं। लक्ष्मी अत्यन्त धोखेबाज है, संसार में सभी प्राणी इस लक्ष्मी के द्वारा ठगे जाते हैं तथा इसकी उपस्थिति में सच्चरित्र धर्म आदि सवर्था विलुप्त हो जाते हैं। इस प्रकार लक्ष्मी समस्त अविनय व आचरणों की स्थान है। इस

लक्ष्मी को प्राप्त कर सभी मनुष्य बुराइयों से ग्रसित हो जाते हैं।

5.5 लक्ष्मी परिगृहीत राजाओं की दशा का वर्णन

लक्ष्मी के दोषों तथा स्वभाव का विशद वर्णन करने के बाद मंत्री शुकनास राज्य प्रारित व लक्ष्मी प्राप्त होने वाले राजाओं का वर्णन करते हुए कहते है कि लक्ष्मी के द्वारा भाग्य वश अपनाये गये राजा विह्वल हो जाते हैं तथा समस्त अवगुणों के पात्र बन जाते हैं। अभिषेक के समय, मानो मंगल कलशों के जल द्वारा, उनकी समस्त निपुणता को धो दिया जाता है। यज्ञ के धुएँ से इनका हृदय मलिन कर दिया जाता है। पुरोहितों की कुशाग्ररूप मार्जनी (झाड़ू) से मानो क्षमा गुण को दूर फेंक दिया जाता है। रेशमी कपड़ों की पगड़ी से मानो वृद्धावस्था का आना रोक दिया जाता है। छत्र मंडल के द्वारा परलोक दर्शन तथा चंवर की हवा से सत्यवादिता को हटा दिया जाता है तथा बेंत की छड़ी से गुणों को हटा दिया जाता है, जय शब्दों की ध्वनि से अच्छे वचनों को अपमानित कर दिया जाता है तथा ध्वजों व पताकाओं से यश को पौंछ दिया जाता है।

राजा लोग लक्ष्मी के वशीभूत होकर स्वच्छंदता व उच्छृंखलता का आचरण करते हैं। काम, क्रोध, लोभ मोहादि विषयों से घिरे इन राजाओं को पाँच विषय असंख्य दिखायी देने लगते हैं तथा इस प्रकार इन असंख्य विषयों में दौड़ता हुआ अकेला मन इन राजाओं को व्याकुल बना देता है।

शुकनास आगे कहते हैं कि लक्ष्मी से व्याकुल बने ये राजा लोग अपने समीपवर्तियों को ही दुःख देने लगते हैं। ये न तो अपने भाई बन्धुओं को पहचानते हैं, तेजस्वी पुरूषों से इर्ष्या करते हैं, दूसरे के द्वारा दिये गये सत्परामर्श को भी नहीं मानते, स्वाभिमानियों को नीचा दिखाना चाहते हैं। उनकी दृष्टि लोभपूर्ण हो जाती है, वे सम्पन्न घरानों पर कोप दृष्टि रखते हैं। स्वार्थ के वशीभूत वह दूसरों की भलाई को भूल जाते हैं।

अदूरदर्शी ये राजा लोग दूसरों को व्याकुल करने व उपद्रव करने में आनन्द का अनुभव करते हैं। इन्हें स्वयं अपने पतन का भी आभास नहीं होता। इन समस्त भावों को मंत्री शुकनास ने उपमाओं व उत्प्रेक्षाओं के माध्यम से राजकुमार चन्द्रापीड़ को उपदेश दिया। कुछ स्वार्थ निष्पादन में लगे चाटूकारों के द्वारा दूसरे राजा गलत प्रकार से समझाये जाते हैं। यह सर्वविदित है कि अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए धूर्त चाटूकार राजाओं और अधिकारियों या उच्च सत्ता प्राप्त व्यक्तियों की हाँ में हाँ मिलाते हैं और खुशामद करके उन्हें ठगते रहते हैं। शुकनास ने बहुत सहज सरल व प्रभावी ढंग से इस बात को समझाया है कि– **"द्यूतं विनोद इति, परदाराभिगमनं वैदग्ध्यमिति, मृगया श्रम इति, पानं विलास इति, प्रमत्तता शौर्यमिति, स्वदारपरित्यागः अव्यसनितैति, गुरुवचनावधीरणमपरप्रणेयत्वमिति, अजितभृत्यता सुखोपसेव्यतमिति, नृत्यगीतवाद्य– वेश्याभिसक्तिः रसिकतेति, महापराधानाकर्णनं महानुभावतेति, परिभवसहत्वं क्षमेति, स्वच्छन्दता प्रभुत्वमि देवावमाननं महासत्वतेति, वन्दिजनख्यातिः यश इति, तरलता उत्साह इति, अविशेज्ञता अपक्षपातित्वमिति"** इस प्रकार अवगुणों को गुण रुप में स्वीकार करके राजाओं की मिथ्या प्रशंसा करते हैं। इस प्रकार धन व झूठी प्रशंसा के मद में मदमस्त ऐसे राजा लोग अपने पर मिथ्या अभिमान का आरोप कर लेते और अपने को देवताओं का अंश समझ ऐसी चेष्टायें करने लगते हैं कि दूसरों के द्वारा उपहास का पात्र बन जाते हैं।

ऐसे राजा अपने कर्तव्यों को भूल जाते हैं तथा स्थिति यहाँ तक बिगड़ जाती है कि वे अपने बड़ों का भी अपमान करने लगते हैं। वे उनके विविध प्रकार के दोष निकालने लगते हैं। वे तो सिर्फ उन्हीं को सब कुछ मानते हैं जो उनकी स्तुति करते रहते हैं। जो हितकारी उपदेश करने वाले मंत्रीगण होते हैं, वे उन पर क्रोध करते हैं। इस प्रकार ऐसे राजा लोग स्वविवेक से कार्य नहीं करते तथा स्वार्थी तत्त्वों के चक्कर में फंसकर में फंसे रहते हैं। इसलिए शुकनास चन्द्रापीड़ को कहते है कि ऐसे चाटूकार लोगों के चक्कर में मत पड़ना तथा लोगों के समक्ष अपनी कमजोरियों को प्रकट कर उपहास का पात्र मत

बनना। तुम हमेशा स्वविवेक से ऐसा कार्य करना जिससे तुम लक्ष्मी के द्वारा ठगे न जा सको, कामदेव के द्वारा उन्मत्त न बनाये जाओ विषयभोग तुम्हें आकर्षित न करे अतः तुम्हारा आचरण ऐसा हो जिससे विद्वान् व मित्र गण तुम्हारी निन्दा न करें।

5.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने बाण की प्रमुख गद्य रचनाओं कादम्बरी व हर्षचरित के बारे में जानकारी प्राप्त की। बाण संस्कृत गद्य के सर्वोत्कृष्ट कवि है। ओज पूर्व समासबहुला शैली में गद्य की रचना की है। गौणी रीति में रचना करने वाले बाणभट्ट वैदर्भी व पाञ्चाली रीति में भी समान अधिकार रखते है। उनके गद्य में श्लेषानुप्राणित उपमाओं, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास आदि अलंकारों के अतिरिक्त सहज, सरल, गतिमय भाषा का प्रयोग भी मिलता है। अपने उपदेश को प्रभावी व स्पष्ट बनाने के लिए उन्होंने सहज, सरल गद्य का भी प्रयोग किया है।

शुकनास ने गुरूपदेश की महत्ता का प्रतिपादन किया है तथा शास्त्रीय शिक्षा के साथ चन्द्रापीड़ को अनुभव जन्य व व्यवहारिक शिक्षा का पाठ भी पढ़ाया है। लक्ष्मी के दोषों का वर्णन उन्होंने बहुत ही प्रभावी ढंग से किया है और अंत में वह अपने मत की स्थापना करते हुए यही कहते है कि कोई विद्वान, विवेचक, बलवान, कुलीन, धीरप्रकृति, उद्योगी कुछ भी हो परन्तु उसे भी दुराचारिणी लक्ष्मी दुर्जन बना देती है। लक्ष्मी से मनुष्य में अनेकानेक बुराईयों व दुर्गणों का समावेश हो जाता है तथा काम, क्रोध लोभ, मोहादि समस्त विकास उसे घेर लेते हैं।

लक्ष्मी के मद में मस्त राजालोग किसी की अच्छी बात को नहीं सुनते तथा उनकी झूठी स्तुति करने वालों चाटूकारों के चक्कर में फंसकर स्वयं को देवता रुप मानने लगते हैं तथा विचित्र व अवाञ्छित चेष्टायें करने लगते हैं। अतः शुकनास कहते है कि चन्द्रापीड़ तुम ऐसा आचरण करो जिससे विद्वान् तुम्हारा उपहास न करें तथा अपने पिता के द्वारा जीति गयी पृथ्वी पर पुनः विजय प्राप्त करों क्योंकि जो राजा पहले ही अपनी प्रजा पर अपना प्रभाव जमा लेता है उसकी आज्ञायें सिद्ध योगी के समान समस्त प्रजा मानती हैं।

'शुकनासोपदेश बाणभट्ट की बहुमुखी प्रतिभा का परिचायक है यह समस्त उपदेश बाणभट्ट की राजनीतिक अन्तर्दृष्टि का परिचायक है। इसके माध्यम से बाण ने अपने सर्वविध ज्ञान को प्रकट किया है। जीवन की गहनतम अनुभूतियों की समझ, अनुभूति की तीव्रता, भाषा की तरलता तथा राज्य तंत्र की बारीकियाँ सभी कुछ देखकर लगता है बाण संस्कृत गद्य काव्य के सर्वश्रेष्ठ गद्यकार हैं।

5.7 शब्दावली

1.	कादम्बरी	–	मदिरा (बाणभट्ट की गद्य रचना कादम्बरी)
2.	शुकनासोपदेश	–	कादम्बरी के पूर्वार्द्ध में उद्धृत शुकनास द्वारा चन्द्रापीड़ को दिया गया उपदेश।
3.	विरोधाभास	–	संस्कृत साहित्य शास्त्र में अलंकार है। विरोध न होने पर भी विरोध की प्रतीति होना।
4.	उत्प्रेक्षा	–	अलंकार है जहाँ सम्भावना की जाती है।
5.	परिग्रहित	–	ग्रहण किये गये, पकड़े गये।
6.	गर्भेश्वरस्त्वम्	–	जन्मजात प्राप्त ऐश्वर्य जैसे राजा का पुत्र राजा होता है, उसे जन्मजात वैभव प्राप्त है।
7.	पंचानन	–	सिंह (बाण को पंचानन की उपाधि दी गयी)

8.	कथा	–	कल्पना पर आधारित कहानी जैसे कादम्बरी।
9.	आख्यायिका	–	इतिहास पर आधारित कथा जैसे हर्षचरित।
10.	निकष	–	कसौटी (खार जिस पर सोने की परख की जाती है।)
11.	जीवितम्	–	प्राण (आत्म–तत्व)

5.8 बोध–प्रश्न

प्र.1 'शुकनासोपदेश' कहाँ से उद्धृत है'

(अ) हर्षचरित से (ब) दशकुमार चरित से

(स) कादम्बरी से (द) शिवराजविजय से ( )

प्र.2 बाण गद्य में किस रीति के प्रवर्तक है–

(अ) गौड़ी (ब) पाञ्चाली

(स) वैदर्भी (द) अरभटी ( )

प्र.3 'शुकनासोपदेश' किस ने किस को दिया–

(अ) शुकनास ने चन्द्रापीड़ को (ब) शुकनास ने तारापीड़ को

(स) पुण्डरीक ने चन्द्रापीड़ को (द) तारापीड़ ने चन्द्रापीड़को ( )

प्र.4 शुकनासोपदेश में सर्वाधिक अलंकार प्रयुक्त है–

(अ) परिसंख्या (ब) विरोधाभास

(स) उत्प्रेक्षा (द) स्वभावोक्ति ( )

प्र.5 साहित्यक गद्य के दो भेद कौन–कौन से है?

प्र.6 बाणभट्ट की प्रसिद्ध गद्य रचनाओं के नाम लिखिये?

प्र.7 संस्कृत गद्य का जीवित है?

प्र.8 लक्ष्मी ने कौस्तुभ नामक मणि से ग्रहण की है?

प्र.9 बाण की गद्य शैली पर विस्तृत लेख लिखिये?

प्र.10 कथा व आख्यायिका के भेद को स्पष्ट कीजिये?

प्र.11 शुकनासोपदेश में वर्णित लक्ष्मी के स्वरूप कर प्रकाश डालिये?

प्र.12 लक्ष्मी द्वारा परिगृहीत राजाओं का वर्णन कीजिये?

5.9 उपयोगी पुस्तकें

1. कादम्बरी (पूर्वार्द्धम्) सम्पादक मोहनदेव पंत, मोतीलाल, बनारसीदास, दिल्ली।
2. हर्षचरित–पं. जगन्नाथ पाठक, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय शारदा संस्थान, वाराणसी।
4. हर्ष चरित (प्रथम उच्छवास) चुन्नीलाल शुक्ल, साहित्य भंडार, मेरठ।
5. शुकनासोपदेश – डॉ. विश्वनाथ शर्मा, आदर्श प्रकाशन, जयपुर।
6. संस्कृत साहित्य का इतिहास – ए.बी. कीथ, मोतीलाल, बनारसीदास दिल्ली।

5.10 बोध–प्रश्नों के उत्तर

उ.1 (स)

उ.2 (ब)

उ.3 (अ)

उ.4 (स)

उ.5 कथा और आख्यायिका।

उ.6 (1) हर्ष चरित, (2) कादम्बरी

उ.7 ओजसमासभूयस्त्वमेतत् गद्यस्य जीवितम्। अर्थात् ओज गुण का अर्थ समास बहुलता है। यह ओज गद्य साहित्य का प्राणतत्त्व है।

उ.8 लक्ष्मी ने कौस्तुभ मणि से निष्ठुरता ग्रहण की है।

उ.9 देखिये भाग संख्या 5.2.2.3.3।

उ.10 देखिये भाग संख्या 5.2.1।

उ.11 देखिये भाग संख्या 5.4।

उ.12 देखिये भाग संख्या 5.5।

इकाई 6
शुकनासोपदेश–वर्णनम्

''एवं समतिक्रामत्सु दिवसेषु राजा चन्द्रापीडस्य.....'' से प्रारम्भ कर ''....राज्यविषविकारतन्द्राप्रदा राजलक्ष्मीः।'' पर्यन्त अंश का हिन्दी में सप्रसंग अनुवाद, व्याकरण–सम्बन्धी टिप्पणी तथा गद्य शैली की विशेषता

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 शुकनासोपदेश के निर्धारित गद्यांशों का सप्रसंग अनुवाद (व्याकरण–सम्बन्धी टिप्पणी सहित)

6.3 बाणभट्ट की गद्यशैली की विशेषता

6.4 गुरूपदेश की महिमा

6.5 सारांश

6.6 शब्दावली

6.7 बोध–प्रश्न

6.8 उपयोगी पुस्तकें

6.9 बोध–प्रश्नों के उत्तर

6.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में बाणभट्ट–रचित कादम्बरी के 'शुकनासोपदेशवर्णनम्' के "एवं समतिक्रामत्सु.....से .....प्रारम्भ कर ..... तन्द्राप्रदा राजलक्ष्मीः" तक के गद्यांशों का हिन्दी में सप्रसंग अनुवाद किया जायेगा। इसमें प्रसंगसहित अनुवाद के साथ व्याकरण–सम्बंधी टिप्पणी भी प्रस्तुत की गयी है। इस इकाई का उद्देश्य पाठ्यक्रम में निर्धारित 'शुकनासोपदेश' के व्याख्येय स्थलों को समझना है।

6.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आप निर्धारित पाठ्यांशों के अनुवाद एवं व्याकरण सम्बंधी टिप्पणी के अतिरिक्त बाणभट्ट की गद्यशैली की विशेषताओं के विषय में भी जान सकेगे। बाणभट्ट संस्कृत गद्य काव्य के सर्वश्रेष्ठ कवि है तथा तत्कालीन साहित्यिक–समाज में गद्य के निर्धारित मानदण्डों पर बाण का गद्य खरा उतरता है। उनके गद्य में ओजगुण व समासों की बहुलता तथा अलंकारों की बहुतायत है। अतः इस इकाई में आप बाणभट्ट की गद्यशैली का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

6.2 शुकनासोपदेश के निर्धारित गद्यांशों का सप्रसंग अनुवाद

<u>गद्यांश संख्या–1</u>

एवं समतिक्रामत्सु दिवसेषु राजा चन्द्रापीडस्य यौवराज्याभिषेकं चिकीर्षुः प्रतीहारानुपकरण–संभारसंग्रहार्थमादिदेश। समुपस्थितयौवराज्यभिषेकं च तं कदाचिद्दर्शनार्थ– मागतमारूढविनयमपि विनीततरमिच्छन् शुकनासः सविस्तरमुवाच। तात चन्द्रापीड, विदितवेदितव्यस्याधीतसर्वशास्त्रस्य ते नाल्पमप्युपदेष्टव्यमस्ति। केवलं च निसर्गत एवाभानुभेद्यमरत्नालोकोच्छेद्यमप्रदीप–प्रभापनेयमतिगहनं तमो यौवनप्रभवम्। अपरिणामोपशमो दारुणो लक्ष्मीमदः। कष्टम्

अनंजनवर्ति साध्यम् अपरम् ऐश्वर्यतिमिरान्धत्वम्। अशिशिरोपचारहार्योऽतितीव्रः दर्पदाहज्वरोष्मा। सततम्मूलमंत्रगम्यः विषमो विषयविषास्वादमोहः। नित्यमस्नानशौचबाध्यः बलवान् रागमलावलेपः। अजस्रमक्षपावसानप्रबोधा घोरा च राज्यसुखसंनिपातनिद्रा भवतीति विस्तरेणामिधीयसे। गर्भेश्वरत्वमभिनवयौवन– त्वमप्रतिमरूपत्वममानुषशक्तित्वं चेति महतीयं खल्वनर्थपरंपरा सर्वा। अविनयानामेकैकमप्येषा– मायतनम्, किमुत समवायः।

संदर्भ – प्रस्तुत गद्यांश संस्कृतसाहित्य के प्रसिद्ध गद्यकार बाणभट्ट की कादम्बरी के शुकनासोपदेश से उद्धृत है। शुकनासोपदेश कादम्बरी के पूर्वार्ध से लिया गया है।

प्रसंग – राजकुमार चन्द्रापीड जब अपना अध्ययन समाप्त करके लौटते है तो राजा तारापीड़ उसका यौवराज्याभिषेक करना चाहते है। राज्याभिषेक से पूर्व राजा तारापीड़ पुत्र को मंत्री शुकनास के पास भेजते है क्योंकि वे जानते थे कि शास्त्रीय ज्ञान के साथ व्यवहारिक ज्ञान भी अत्यावश्यक है। राज्याभिषेक के अवसर पर प्रधान अमात्य शुकनास ने चन्द्रापीड़ को जो उपदेश दिया वही अंश शुकनासोपदेश के नाम से प्रसिद्ध है। शुकनास ने सर्वप्रथम यौवन से उत्पन्न अंधकार, राज्यलक्ष्मी के मद तथा उसके मोह से उत्पन्न होने वाले दुष्परिणामों के विषय में चन्द्रापीड़ को सावधान किया है।

अनुवाद – इस प्रकार कुछ दिन बीत जाने पर चन्द्रापीड़ को युवराज के पद पर आरूढ करने के इच्छुक राजा ने द्वारपालों को आवश्यक सामग्री एकत्र करने की आज्ञा दी। चन्द्रापीड जिसका राज्याभिषेक होने वाला था कभी अपने से मिलने आये उस चन्द्रापीड को जो पहले से शिक्षित था और अधिक शिक्षित करने के इच्छुक शुकनास ने सविस्तार से कहा– पुत्र चन्द्रापीड, जो कुछ जानना चाहिये वह सब तुम जानते हो, तुमने समस्त शास्त्रों का अध्ययन भी कर लिया है अतः तुम्हें उपदेश देने की लेशमात्र भी आवश्यकता नहीं है। केवल यह कहना है कि स्वभावतः उत्पन्न अंधकार का न तो सूर्य के द्वारा भेदन किया जा सकता है, तथा न ही दीपक की कान्ति से उसको दूर किया जा सकता है। लक्ष्मी या ऐश्वर्य द्वारा उत्पन्न मद बहुत भयंकर होता है तथा वृद्धावस्था में भी शांत नहीं होता। ऐश्वर्य रुपी तिमिर (मोतियाबिन्द) नामक आँखों के दोष से उत्पन्न किया गया अंधापन, दूसरे ही प्रकार का होता है तथा कष्ट देता है तथा काजल की बत्ती लगाने से भी ठीक नहीं होता। अभिमान रुपी दाहक (जलाने वाले) ज्वर की गर्मी इतनी भयानक होती है कि वह चन्दन के लेप आदि शीतल उपचारों के द्वारा भी शांत नहीं होती। विषय (इन्द्रिय सुखों) रुपी विष का स्वाद लेने से उत्पन्न भयानक अचेतनता सदा ऐसी होती है कि औषधि रुप जड़ी–बूटियों अथवा मंत्रों का भी उस पर असर नहीं होता है। आसक्ति (प्रणयोन्माद) रुपी मल का गाढ़ा लेप नित्य स्नानादि तथा सफाई करने से भी नहीं छूटता। राज्य सुखों के उपभोग रुपी सन्निपात से प्रेरित घोर निद्रा सदा ऐसी होती है कि रात्रि की समाप्ति होने पर भी उससे जागा नहीं जा सकता। इन सब कारणों में से तुम्हें विस्तार पूर्वक कहूँगा। जन्म से ही किसी का धनी होना, नई युवावस्था, अद्वितीय सौन्दर्य, तथा अतिमानुषी शारीरिक शक्ति–निश्चय ही यह एक बहुत बड़ी सर्वनाशकारी शृंखला है। इन सभी में एक–एक अलग–अलग भी सभी प्रकार के दोषों का स्थान है और यदि ये सब एक स्थान पर एकत्रित हो जायें तो फिर कहना ही क्या? अर्थात् जन्मजात वैभव, नवयौवन, अनुपम सौन्दर्य तथा अति मानुषी शारीरिक शक्ति इन चारों का एक स्थान पर होना महान् अनर्थ और विनाश का कारण है।

व्याकरण–सम्बन्धी टिप्पणी –

1. विदितवेदितव्यस्य – विदितम् वेदितव्यस्य यस्य सः तस्य (बहुब्रीहि) विदित विद् + क्त प्रत्यय, वेदितव्य – विद् + तव्यत्।
2. अधीतसर्वशास्त्रस्य – अधि + इण् + क्त। अधितानि सर्वाणि शास्त्राणि येन तस्य (बहुब्रीहि)।
3. उपदेष्टव्यम् – उप + दिश् + तव्यत्।

4. अभानुभेद्यम् – न भानुना भेद्यम् (नञ् समास) भिद् + ण्यत् = भेद्यम्।

5. अरत्नालोकोच्छेद्यम् – न रत्नालोकेन उच्छेद्यम् (नञ् तत्पु.) उत् + छिद् + व्यत्।

6. लक्ष्मीमदः – लक्ष्म्याः मदः इति (ष.तत्पु.)।

7. ऐश्वर्यतिमिरान्धत्वम् – ऐश्वर्यम् एव तिमिरम् ऐश्वर्यतिमिरम् तेन अन्धत्वम् ऐश्वर्यतिमिरान्धत्वम् (तृ. तत्पु.)।

8. अशिशिरोपचारहार्यः – शिशिरः उपचारः शिशिरोपचारः तेन हार्यः शिशिरोपचारहार्यः (तृ. तत्पु.), हृ + ण्यत्।

9. दर्पदाहज्वरोष्म – दर्पदाहज्वरस्य ऊष्मा (ष. तत्पु.)

10. अमूलमन्त्रशक्य – न मूलमन्त्रैः शक्यः इति।

11. विषयविषास्वादमोहः – विषय एव विषं (कर्मधारय) विषस्य स्वादः (ष. तत्पु.) विषयविषस्वादात् मोहः (पं. तत्पु.)

12. अस्नानशौचवध्यः – स्नानञ्च शौचञ्च स्नानशौचम् ;द्वन्द्वद्ध ताभ्यां वध्याः स्नानशौचवध्यः। न स्नानशौच वध्यः इति अस्नानशौचवध्यः (नञ्)।

13. रागमलावलेपः – रागमलस्य अवलेपः रागमलावलेपः।

14. अक्षपावसानप्रबोधा – क्षपायाः अवसानं क्षपावसानं (ष. तत्पु.) न क्षपावसानप्रबोधा इति (नञ् तत्पु.)।

15. राज्यसुखसन्निपातनिद्रा – राज्यसुखम् एव सन्निपातनिद्रा (कर्मधारय)।

16. गर्भेश्वरत्वम् – गर्भात् ईश्वरत्वम् इति (ष. तत्पु.)।

17. अभिनवयौवनत्वम् – यूनः भावः यौवनम्, अभिनवं यौवनं यस्य स अभिनव यौवनः (बहु.) तस्य भावः अभिनव यौवनत्वम्।

18. अप्रतिमरूपत्वम् – अप्रतिमं रुपं यस्य स अप्रतिमरूपः (बहु.) तस्य भावः।

19. अमानुषशक्तित्वम् – नास्ति मानुषशक्तिः यस्मिन् सः अमानुषशक्तिः (नञ्) तस्य भावः।

विशेष –

1. तात – यह पुत्र के लिए सम्बोधन है। संस्कृतसाहित्य में अपने से बड़ों के लिए यह आदरसूचक तथा अपने से छोटों के लिए स्नेहसूचक सम्बोधन है। विश्वकोष में कहा है– "पूज्ये पितरि पुत्रे च तात शब्दो स्मृतो बुधैः।"

2. अधीतसर्वशास्त्रस्य – कामन्दक नीति में चार प्रकार की विद्याओं का उल्लेख है– आन्वीक्षिकी (न्याय एवं तत्व मीमांसा), त्रयी (वेद) वार्ता (कृषि एवं वाणिज्य तथा कलाएं) दण्डनीति (राजनीति शास्त्र)।

3. मनुस्मृति में चार वेद, छः वेदांग, पुराण, न्याय, मीमांसा तथा धर्मशास्त्र चौदह विद्याओं का उल्लेख है।

4. यहाँ 'विदितवेदितव्यस्य' तथा अधीतसर्वशास्त्रस्य में हेतु बताने से 'काव्यलिंग' अलंकार है।

5. 'अपरिणामोपशमः लक्ष्मीमदः' यहाँ भी पदार्थ हेतुक काव्यलिंग अलंकार है।

6. ऐश्वर्याजनतिमिरान्धत्वम् तथा 'दर्पदाहज्वरोष्मा' में रूपक अलंकार है।

7. प्रस्तुत गद्यांश में बाणभट्ट के गद्य की प्रौढ़ता तथा ओज गुण की विशेषता दर्शनीय है।

<u>गद्यांश संख्या–2</u>

यौवनारंभे च प्रायः शास्त्रजलप्रक्षालननिर्मलापि कालुष्यमुपयाति बुद्धिः। अनुज्झितधवलतापि सरागैव भवति यूनां दृष्टिः। अपहरति च वात्येव शुष्कपत्रं समुद्भूतर–जोभ्रान्तिरतिदूरमात्मेच्छया यौवनसमये पुरूषं प्रकृतिः। इन्द्रियहरिणहरिणी च सततदुरन्ता इयमुपभोगमृगतृष्णिका। नवयौवनकषयितात्मनश्च सलिलानीव तान्येव विषयस्वरूपाण्यास्वाद्यमानानि मधुरतराण्यापतन्ति मनसः। नाशयति च दिङ्मोह इवोन्मार्गप्रवर्तकः पुरुषमत्यासंगो विषयेषु। भवादृशा एव भवन्ति भाजनान्युपदेशानाम्। अपगतमले हि मनसि स्फटिकमणाविव रजनिकरगभस्तयो विशन्ति सुखेनोपदेशगुणाः।

संदर्भ – प्रस्तुत गद्यांश बाणभट्ट–रचित कादम्बरी के पूर्वार्द्ध से लिये गये 'शुकनासोपदेश' से लिया गया है। विद्यासमाप्ति के पश्चात् चन्द्रापीड़ जब लौटते हैं तो तारापीड़ उसका युवराज पद पर अभिषेक करना चाहते हैं उससे पूर्व वह उसे प्रधान अमात्य शुकनास के पास व्यावहारिक राजनीति ज्ञान के लिए भेजते है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में शुकनास चन्द्रापीड को उपदेश देता है कि युवावस्था में विषय–भोग मनुष्य को बरबस अपनी ओर खींचते है तथा गलत मार्ग पर ले जाते है। जब मनुष्य इन बुराईयों में फंस जाता है तो उस पर उपदेश का भी असर नहीं होता, परन्तु चन्द्रापीड अभी–अभी शिक्षा प्राप्त करके लौटा है तथा बुराईयों ने इसे छुआ तक नहीं है अतः यौवन अवस्था के प्रारम्भ में ही उसे सचेत करना आवश्यक है।

अनुवाद – युवावस्था में प्रायः शास्त्र रुपी जल से धुल जाने पर भी मनुष्य की बुद्धि कलुषता को प्राप्त हो जाती है। नवयुवकों की आँखें सफेदी को न छोड़ने पर भी रागयुक्त अर्थात् लाल (रागोन्माद से युक्त) हो जाती है। जिस प्रकार आंधी सूखे पत्ते को उड़ा कर दूर ले जाती है। वैसे ही युवावस्था में व्यक्ति की स्वाभाविक मनोवृत्ति रजोगुण द्वारा उत्पन्न हुई भ्रांति के कारण अपनी इच्छा से दूर ले जाती है और इन्द्रिय रूपी हिरणों को हरण करने वाली यह उपभोग रूपी मृगतृष्णा परिणाम में सदा कष्ट देने वाली होती है। अर्थात् मृग जिस प्रकार जल की तलाश में भटकता हुआ अन्ततः मृत्यु को प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार विषयों के पीछे दौड़ता हुआ मनुष्य अन्ततः नष्ट हो जाता है। जिस प्रकार कसैली वस्तु ;आँवला आदिद्ध खाने के बाद मधुर नही होने पर भी जल मीठा लगता है, उसी प्रकार नवयौवन वश कामक्रोधादि विषयों से कषायित चित्त वाले व्यक्ति को ये सब भोगविषय मधुर प्रतीत होते हैं। जिस प्रकार दिशा का भ्रम हो जाने से विपरीत मार्ग पर जाता हुआ मनुष्य नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार कामिनी–कंचनादि विषयों में अत्यधिक आसक्त मनुष्य कुमार्ग पर जाकर विनष्ट हो जाता है। शुकनास आगे चन्द्रापीड से कहते हैं कि तुम्हारे जैसे व्यक्ति ही उपदेशों के उपयुक्त पात्र होते हैं क्योंकि जिस प्रकार निर्मल स्फटिक मणि में चन्द्रमा की किरणें प्रवेश कर जाती है उसी प्रकार निर्मल मन में उपदेशों के गुण सहजता से प्रवेश कर जाते हैं।

व्याकरण–सम्बंधी टिप्पणी –

1. यौवनारम्भे – यौवनस्य आरम्भे (ष.तत्पु.)
2. शास्त्रजलपक्षालननिर्मला – शास्त्रस्य जलं शास्त्रजलं तेन प्रक्षालनं शास्त्रजलप्रक्षालनं तेन निर्मला (तृ. तत्पु.)।
3. अनुज्झितधवलता – न उल्झिता अनुज्झिता (नञ्) अनुज्झिता धवलता यया सा (बहुब्रीहि) अनु+उत्+हृ+क्त।
4. सरागा – रांगेण सह वर्तमाना (तृ. तत्पु.)।

5. शुष्कपत्रं – शुष्कं पत्रं (कर्मधारय)।

6. समुद्भूतरजोभ्रान्तिः – समुद्भूतस्य रजसः भ्रान्तिः यस्याः सा (बहुब्रीहि)।

7. आत्मेच्छया – आत्मनः इच्छा आत्मेच्छा यया (ष. तत्पु)।

8. यौवनसमये – यौवनस्य समयः (ष. तत्पु.) तस्मिन्।

9. प्रकृतिः – प्र+कृ+क्तिन्।

10. इन्द्रियहरिणहारिणी – इन्द्रियाण्येव हरिणाः इन्द्रियहरिणाः (कर्मधारय) तेषां हारिणी (ष. तत्पु.)।

11. उपभोगमृगतृष्णिका – उपभोगः एव मृगतृष्णिका (कर्मधारय)।

12. नवयौवनकषायितात्मनः – नवञ्च तद् यौवनं नवयौवनं (कर्मधारय) नवयौवनेन कषायितः आत्मा यस्य स तस्य (बहुब्रीहि)।

13. दिङ्मोहः – दिशां मोहः (ष. तत्पु.)।

14. अपगतमले–अपगतं मलं यस्मात् तत् (बहु.) तस्मिन्।

15. रजनिकरगभस्तयः – रजनिकरस्य गभस्तयः रजनिकरगभस्तयः (ष. तत्पु.)।

16. उपदेशगुणाः – उपदेशस्य गुणाः (ष. तत्पु.)

विशेष –

1. शास्त्रजलप्रक्षालननिर्मला (शास्त्र रूपी जल) इन्द्रियहरिणहारिणी – (इन्द्रिय–रूपी हरिण) यहाँ पर रूपक अलंकार है।

2. "निर्मल बुद्धि भी कलुषता को प्राप्त हो जाती है" यहाँ पर विरोधाभास अलंकार है।

3. राग शब्द लाल रंग तथा आसक्ति दोनों का वाचक होने से श्लेषालंकार है।

4. अपहरति च .....पुरूषं प्रकृतिः में उपमा के साथ श्लेष अलंकार है।

5. नवयौवनकषायितात्मनः.....यहाँ पर उपमालंकार है।

6. गद्यांश के अंत में श्लेषानुप्राणित उपमालंकार है।

7. श्लेष की बहुलता बाण के गद्य की विशेषता है।

<u>गद्यांश संख्या–3</u>

गुरुवचनममलमपि सलिलमिव महदुपजनयति श्रवणस्थितं शूलमभव्यस्य, इतरस्य तु करिण इव शंखाभरणमाननशोभासमुदयमधिकतरमुपजनयति। हरत्यतिमलिनमन्धकारमिव दोषजातं प्रदोषसमयनिशाकर इव गुरुपदेशः। प्रशमहेतुर्वयः परिणाम इव पलितरूपेण शिरसिजजालममलीकुर्वन् गुणरूपेण तदेव परिणमयति। अयमेव चानास्वादितविषयरसस्य ते काल उपदेशस्य। कुसुमप्रहारजर्जरिते हि हृदि जलमिव गलत्युपदिष्टम्। अकारणं च भवति दुष्प्रकृतेरन्वयः श्रुतं च विनयस्य। चन्दनप्रभवो न दहति किमनलः। किं वा प्रशमहेतुनापि न प्रचंडतरीभवति बडवानलो वारिणा।

संदर्भ – प्रस्तुत गद्यांश बाणभट्ट–विरचित कादम्बरी के पूर्वार्द्ध के 'शुकनासोपदेश' से उद्धृत है। इसमें विद्याध्ययन करके लौटे राजकुमार चन्द्रापीड को शुकनास ने उपदेश दिया है।

प्रसंग – चन्द्रापीड समस्त शास्त्रों का अध्ययन करके लौट आये थे परन्तु शास्त्रज्ञान के अतिरिक्त व्यावहारिक ज्ञान भी अत्यावश्यक है। यौवराज्याभिषेक के अवसर पर शुकनास चन्द्रापीड को गुरु के उपदेश का महत्व बताते हुए कहते हैं कि गुरु का उपदेश राजाओं के लिए विशेष महत्त्व रखता है क्योंकि

अन्य सामान्य प्राणी राजा को सही दिशा–निर्देश देने की हिम्मत नहीं कर पाते तथा लक्ष्मी व सत्ता के मद में राजा लोग दूसरों का उपदेश सुनते भी नहीं है। अतः गुरु के उपदेश का विशेष महत्त्व है।

अनुवाद – गुरु का उपदेश चाहे वह कितना ही निर्मल अथवा लाभदायक हो पर दुष्ट व्यक्ति के कान में पड़ा हुआ दुःख देता है, जिस प्रकार कान में गिरा हुआ शुद्ध जल भी कान में दर्द उत्पन्न कर देता है। परन्तु वही उपदेश सज्जन पुरूष के कान में जब पड़ता है तो उसके चेहरे को शोभायमान कर देता है जैसे शंखों के आभूषण हाथी के चेहरे की शोभा को बढ़ा देते है। सायंकाल का चन्द्रमा जैसे काले से काले अंधकार को भी दूर कर देता है, उसी प्रकार गुरु का उपदेश अत्यन्त मलिन कामक्रोधादि दोषों के समूह को दूर कर देता है। जिस प्रकार कामोन्माद को घटा देने वाली वृद्धावस्था बालों को निर्मल करती हुई क्रम से सफेद बना देती है, उसी प्रकार इन्द्रियों के दमन के कारण गुरु का उपदेश भी उन दोषों को क्रमशः निर्मल बनाता हुआ गुण रूप में परिवर्तित कर देता है। तुम्हें उपदेश देने का यही समय उचित है क्योंकि तुमने अभी तक विषयों के रस का आस्वादन नहीं किया है। जो हृदय कामदेव के बाणों के प्रहार से जर्जर हो जाता है, उसे दिया गया उपदेश धीरे–धीरे जल की भाँति बह जाता है। दुश्चरित्र लोगों का अच्छे कुल में जन्म तथा शास्त्रज्ञान सन्मार्ग पर ले जाने में कारण नहीं होता। क्या चन्दन की लकड़ी से उत्पन्न आग जलाती नहीं है? शांतिकारक समुद्रजल से उत्पन्न क्या बड़वानल अत्यन्त प्रचंड होकर उठता नहीं है?

व्याकरण–सम्बंधी टिप्पणी –

1. गुरुवचनम् – गुरोः वचनम् (ष. तत्पु.)।
2. अमलम् – न विद्यते मलं यस्मिन् तत् (बहुब्रीहि)।
3. श्रवणस्थितम् – श्रवणे स्थितम् (स. तत्पु.) स्था + क्त।
4. अभव्यस्य – न भव्यम् अभव्यम् (नञ्) तस्य।
5. करिणः – करः अस्य अस्तीति करिन् (कर + इनि)।
6. आननशोभासमुदयम् – शोभायाः समुदयः शोभासमुदयः आननस्य शोभासमुदयः (ष. तत्पु.) तम्।
7. प्रदोषसमयनिशाकरः – प्रदोषस्य समयः, प्रदोषसमयस्य निशाकरः इति प्रदोषसमयनिशाकरः।
8. दोषजातम् – दोषानाम् जातम् इति (ष. तत्पु.)।
9. गुरुपदेशः – गुरोः उपदेशः (ष. तत्पु.), उप+दिश+घञ्।
10. शिरसिजां जालम् – शिरसि जायन्ते इति शिरसिजः (अलुक् शिरसिजालम्) (ष. तत्पु.)।
11. अमलीकुर्वन् – न मलम् अमलम् कुर्वन् इति अमलीकुर्वन् अमल+च्वि+कृ+शतृ।
12. अनास्वादितविषयरसस्य – अनास्वादिताः विषयरसा येन सः (बहुब्रीहि)।
13. कुसुमशरप्रहारजर्जरिते – कुसुमस्य शरा कुसुमशराः (ष. तत्पु.) कुसुशराणां प्रहाराः तैः जर्जरिते (तृ. तत्व.)।
14. चन्दनप्रभवः – चन्दनात् प्रभवः यस्य स (बहु.)।
15. प्रचण्डतरीभवति – अप्रचण्डः प्रचण्डतरः भवति इति प्रचण्डतरीभवति, अ प्रचण्डः प्रचण्डतरः भवति इति। प्रचण्डतरीभवति, प्रचण्डतर+च्वि + भू + लट्।
16. वाडवानलः – वडवायां जातः वाडवः चासौ अनलश्च इति (कर्मधारय)।

विशेष – "गुरुवचनम्.....उपजनयति।" इस वाक्य में उपमा अलंकार है। "हरति च.....परिणमयति"

में श्लेषानुप्राणित उपमा है।

'शुकनासोपदेश' में गुरुपदेश की महिमा को बताया है। गुरु का उपदेश मनुष्य को असत् मार्ग से सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त करता है। यही कारण है कि हमारे यहाँ गुरु को साक्षात् परब्रह्म माना गया है।

<u>गद्यांश संख्या–4</u>

गुरूपदेशश्च नाम पुरुषाणामखिलमलप्रक्षालनक्षममजलं स्नानम्। अनुपजात–पलितादिवैरुप्यमजरं वृद्धत्वम्, अनारोपितमेदोदोषं गुरूकरणम् असुवर्णविरचनमग्राम्यं कर्णाभरणम्। अतीतज्योतिरालोकः, नोद्वेगकरः प्रजागरः। विशेषेण तु राज्ञाम्। विरला हि तेषामुपदेष्टारः। उद्दामदर्पाश्वयथुस्थगितश्रवण– विवराश्चोपदिश्यमानमपि ते न शृण्वन्ति शृण्वन्तोऽपि च गजनिमीलिते नावधीरयन्तः खेदयन्ति हितोपदेशदायिनो गुरून्। अहंकारदाहज्वरमूर्छान्धकारिता विह्वला हि राजप्रकृतिः, अलीकाभिमा– नोन्मादकारीणि धनानि, राज्यविषविकारतन्द्राप्रदा राजलक्ष्मीः।

संदर्भ – प्रस्तुत गद्यांश बाणभट्ट–विरचित कादम्बरी के पूर्वार्द्ध भाग के 'शुकनासोपदेश' से उद्धृत है। इसमें राज्याभिषेक के समय प्रधान अमात्य शुकनास के द्वारा चन्द्रापीड को दिये गये उपदेश का वर्णन है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में चन्द्रापीड को उपदेश देते हुए गुरु के उपदेश के महत्त्व को बताया गया है। गुरु का उपदेश विशेष कर राजाओं के लिए महत्त्व का है क्योंकि लोग राजाओं को भय के कारण सही बात नहीं कह पाते और राजलक्ष्मी को प्राप्त राजा लोग झूटे अभिमान के वशीभूत हो जाते हैं। गुरु का उपदेश विषयविकार व मोहनिद्रा से निकाल कर राजाओं को सही दिशा निर्देश देता है।

अनुवाद – गुरु का उपदेश मनुष्यों के लिए बिना जल का स्नान है, जो उनके सभी मलों के धो देने में समर्थ है। यह वह स्थविरता (वृद्धता) है जिसमें बाल सफेद होना आदि कोई विकार उत्पन्न नहीं होता और जो बुढ़ापे के लक्षणों से रहित है। यह व्यक्तियों को गुरु अर्थात् उनके महत्त्व को बढ़ा देने वाला एक ऐसा साधन है जो शरीर की स्थूलता को नहीं बढ़ाता अर्थात् बिना चर्बी बढ़ाये यह शरीर की स्थूलता अर्थात् महत्त्व को बढ़ा देता है। गुरु का उपदेश कान का सुन्दर आभूषण हैं परन्तु यह स्वर्ण–निर्मित नहीं है। यह एक ऐसा प्रकाश है जिसमें ज्वाला नहीं है। यह एक ऐसा जागरण है जो थकाता नहीं है। विशेष कर राजाओं के लिए गुरु के उपदेश का विशेष महत्त्व है क्योंकि उनको निःस्वार्थ उपदेश करने वाले कम ही होते है। प्रायः सभी लोग भय के कारण प्रतिध्वनि के समान राजाओं के वचनों का अनुसरण करते हैं।

अत्यधिक अहंकार रूपी सूजन से राजाओं के कान के छेद बंद हो जाते हैं और कदाचित् सुनने पर भी हाथी के समान आँखों को बंद कर उस उपदेश का तिरस्कार करते हुए, हितकारक उपदेश देने वाले गुरुओं को दुःखी करते रहते हैं। राजाओं का स्वभाव अहंकाररुपी दाहज्वर से जनित मूर्च्छा से विवेकहीन होकर विह्वल हो जाता है। विशेषकर धनसम्पत्ति मिथ्या अभिमान से उन्मत्त कर देती है तथा राज्यलक्ष्मी राज्यरूपी विष के विकार से तन्द्रा (मूर्छा) को प्रदान करती है।

व्याकरण–सम्बंधी टिप्पणी –

1. अखिलमलप्रक्षालनक्षमम् – अखिलमलानां प्रक्षालनम् (ष.तत्पु.) अखिलमलप्रक्षालनम्, तस्मिन् क्षमम्।
2. अनुपजातपलितादिवैरूप्यम् – अनुपजातं पलितादि वैरुप्यम् यस्मिन् तत् (बहु.)।
3. अनारोपितमेदादोषम् – न आरोपितः (नञ्) अनारोपितः मेदोदोषः येन तद् (बहु.)।
4. असुवर्णविरचनम् – न विद्यते सुवर्णस्य विरचनं यस्मिन् इति असुवर्णविरचनम् (नञ् समास,

बहुब्रीहि)।

5. कर्णाभरणम् – कर्णस्य आभरणम् (ष. तत्पु.)।

6. अतीतज्योतिः – अतीतं ज्योतिः यस्मात् स (बहु.)।

7. आलोकः – आ + लुक् + घत्र्।

8. उद्वेगकरः – उद्गतः वेगः अस्मात् इति उद्वेगः तं करोति इति।

9. उद्दामदर्पश्वयथुस्थगितश्रवणविवराः – उद्दामदर्पः एव श्वयथुः (कर्मधारय) तेन स्थगिते श्रवणविवरे येषां ते (बहु.)।

10. उपदिश्यमानम् – उप+ दिश् + युक + शानच्।

11. गजनीमिलितेन–गजस्य यन्निमीलितम् तद् गजनीमिजितं तेन। नि+मील्+क्त।

12. अवधीरयन्तः – अव + धीर + णिच् + शतृ

13. हितोपदेशदायिनः – हितस्य उपदेशः हितोपदेश हितोपदेशम् ददति इति हितोपदेशदायिनः।

14. अहंकारदाहज्वरमूर्च्छान्धकारिता अहंकार एव दाहज्वरः अहंकारदाहज्वरः (कर्म.) तेन मूर्च्छा अहंकारदाहज्वरमूर्च्छा (तृ. तत्पु.) तया अन्धकारिता (तृ. तत्पु.)।

15. राजप्रकृतिः – राज्ञः प्रकृति (ष. तत्पु.) प्र + कृ + क्तिन्।

16. अलीकाभिमानोन्मादकारीणि – अलीकः अभिमानः स एव उन्मादः (कर्म.) तं कर्तुं शीलं येषां तानि (बहु.)।

17. राज्यविषविकारतन्द्राप्रदा – राज्यमेवं विषं राज्यविषं (कर्म.) तस्माद् विकारः राज्यविषविकारः (ष. तत्पु.)।

18. राजलक्ष्मीः – राज्ञः लक्ष्मीः (ष. तत्पु.)।

विशेष –

1. गुरुपदेशश्च..... प्रजावार तक की पंक्तियों में रूपक अलंकार है।

2. "विरला.....जनोभयात्" में उपमालंकार है।

3. दर्पश्वयथु में रूपक अलंकार है। सम्पूर्ण गद्यांश में उपमा व रूपक का वैचित्र्य दर्शनीय है।

4. बाण की ओजोगुणयुक्त तथा समासबहुला शैली का प्रयोग है।

5. उपर्युक्त गद्यांश में गुरु के उपदेश की महिमा तथा वैभवप्राप्त राजाओं की प्रकृति का वर्णन है।

6.3 बाण की गद्य शैली की विशेषता –

संस्कृत साहित्य में बाण सर्वोत्कृष्ट गद्यकार के रूप में प्रसिद्ध है। संस्कृत गद्य–साहित्य में उनकी दोनों रचनाओं 'कादम्बरी' व 'हर्षचरित' की बराबरी कोई भी अन्य ग्रन्थ नहीं कर सकता। अतः बाण के विषय में यह उक्ति प्रसिद्ध है कि 'बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्' अर्थात् यह सम्पूर्ण संसार बाण की जूठन है। बाण की गद्य रचना कादम्बरी दो भागों में विभक्त है–पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्ध। आपके पाठ्यक्रम में निर्धारित 'शुकनासोपदेश' कादम्बरी के पूर्वार्द्ध से ही उद्धृत है। प्रस्तुत इकाई में शुकनासोपदेश के निर्धारित अंशों के आधार पर यदि बाण की गद्यशैली की समीक्षा करें तो बाणभट्ट तत्कालीन गद्यकाव्य–लेखन के नियमों के मानदण्ड पर बिल्कुल खरे उतरते हैं। गद्यलेखन के लिए ओज व समासों की बहुलता को प्राणतत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है –

"ओजःसमासभूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्।"

बाण पाञ्चाली गद्य–रीति के प्रवर्तक आचार्य हैं। ओजोगुणविशिष्ट व समास–बहुल वाक्यों का प्रयोग बाण स्थान–स्थान पर करते हैं। शब्द उनके भावों के अनुरूप गमन करते चलते हैं। उनकी रचनाओं में ललित पदविन्यास, रचनाशैली की सुन्दरता तथा नये–नये अर्थो का मनोहर सन्निवेश है। उनकी ओजः समासबहुला भाषा का एक उदाहरण देखिये–

"कष्टम् अनंजनवर्तिसाध्यम् अपरम् ऐश्वर्यतिमिरान्धत्वम्। अशिशिरोपचार– हार्योऽतितीव्रः दर्पदाहज्वरोष्मा। सततममूलमंत्रशभ्यः विषमो विषयविषास्वादमोहः।" नित्यमस्नानशौचबाध्यः बलवान् राममलावलेपः। अजस्त्रमक्षपावसानप्रबोधा घोरा च राज्य सुखसन्निपातनिद्रा भवति।"

बाण ने प्रौढ़ साहित्यिक गद्यशैली का सफलतापूर्वक प्रदर्शन किया है। शब्दों व अर्थों का समान गुम्फन बाण के गद्य में दिखायी देता है।

अलंकारों के प्रयोग बाण की शैली को विशेष सौष्ठव प्रदान करते हैं। शब्दालंकारों व अर्थालंकारों से बाण की भाषा में मधुरता व रसमयता तथा विशेष प्रकार का चमत्कार आ गया है।

पठित प्रथम गद्यांश में 'विदितवेदितव्यस्य', 'अधीतसर्वशास्त्रस्य' तथा 'अपरिणामोपशमः लक्ष्मीमदः' में पदार्थहेतुक काव्यलिंग अलंकार का प्रयोग है। इसी प्रकार रूपक अलंकार के अनेकानेक सुन्दर प्रयोग दिखाई देते हैं। "यौवनारम्भे च प्रायः शास्त्रजलप्रक्षाननिर्मलापि कालुष्यमुपयाति बुद्धिः' में रूपक अलंकार का प्रयोग है यहाँ बुद्धि की निर्मलता का कारण होने से शास्त्र में जल का आरोप किया गया है। इसी प्रकार 'इन्द्रिय हरिण–हारिणी च सततदुरन्ता इयमुपभोगमृगतृष्णिका।' में इन्द्रिय पर हरिण का आरोप करने से 'परम्परित रूपक' का उदाहरण है।

श्लेष अलंकार से बाणभट्ट को विशेष प्रेम है। श्लेष से अनुप्राणित उपमा के अनेक उदाहरण इनके गद्य मिलते हैं। 'नाशयति च दिङ्मोह इवोन्मार्गप्रवर्तकः पुरूषमत्यासंगो विषयेषु तथा 'अपगतमले हि मनसि स्फटिकमणाविव रजनिकरगभस्तयो विशन्ति सुखेनोपदेशगुणाः।' इन वाक्यों में श्लेषानुप्राणित उपमा अलंकार है। इसी प्रकार 'गुरुवचनम्मलमपि.....उपजनयति' में गुरु के उपदेश की तुलना शंखाभरण से की गयी है। गुरुपदेश के सम्पूर्ण अवतरण में उपमालंकार का ही प्राधान्य है। "हरत्यतिमलिनम्..... ...परिणमयति" में श्लेष के साथ–साथ उपमा, रूपक, विरोधाभास आदि अनेक अलंकारों के प्रयोग तथा उत्प्रेक्षा–प्रयोग से बाण जो चित्र खींचते है वह अद्वितीय है।

निस्संदेह ओज व समासबहुल गद्य बाण की अपनी विशेषता है। बाणभट्ट के तुल्य गद्यकार न हुआ है तथा न होगा। बाण की गद्यशैली की विशेषता है कि दुरूह व विकट दीर्घकाय समासों के बाद जब उन्हें अपनी बात समझानी होती है तो सहज, सरल व प्रभावी गद्य का प्रयोग करते है।

6.4 गुरूपदेश की महिमा –

'शुकनासोपदेश' में राज्याभिषेक के समय मंत्री शुकनास चन्द्रापीड को जो उपदेश देते हैं, उसमें नवयौवन में आने वाले विकारों, लक्ष्मी के मद तथा जन्मजात ऐश्वर्य व अनुपम सौन्दर्य के कारण उत्पन्न होने वाले दुष्परिणामों का वर्णन किया है। इसी प्रसंग में शुकनास ने गुरूपदेश का महत्व भी बताया है।

गुरु का उपदेश मनुष्य की आन्तरिक सभी बुराइयों को दूर कर देता है अतः सम्पूर्ण मलों का प्रक्षालन करने के लिए गुरु का उपदेश बिना विकार उत्पन्न किये मनुष्य में वार्धक्य (सयानापन) ला देता है। यह बिना मोटापा (मेदोदोष) बढ़ाये मनुष्य को बड़प्पन व गुरुता प्रदान करता है। सुवर्ण–निर्मित न होने पर भी यह कान का आभूषण है तथा उद्वेग उत्पन्न न करने वाला जागरण है अर्थात् गुरु का उपदेश मनुष्य में जागृति ला देता है।

राजाओं के लिए गुरूपदेश का विशेष महत्त्व है क्योंकि राजाओं को उपदेश करना सब के वश की बात नहीं है। राजाओं को उपदेश करने वाले विरले ही होते है। सामान्य लोग भय वश राजाओं की आज्ञा

का वैसे ही अनुसरण करते है जैसे ध्वनि का प्रति ध्वनि अनुसरण करती है। लक्ष्मी व सत्ता के मद में राजा भी किसी की अच्छी बात को नहीं सुनते तथा सुन भी लेते है तो जिस तरह हाथी आँखे मूंद लेता है, उसी प्रकार वह भी सुनकर बात को अनसुना कर देते है। अतः जो उन्हें हितकारक उपदेश देने वाले होते है, वे उनका तिरस्कार कर उनको कष्ट ही पहुँचाते है।

महाकवि बाणभट्ट ने इस उपदेश के माध्यम से यह महत्त्वपूर्ण संदेश दिया है कि जीवन में केवल शास्त्रज्ञान का ही महत्त्व नहीं है अपितु व्यावहारिक ज्ञान भी आवश्यक है। गुरु का उपदेश प्रत्येक काल में एक ऐसा प्रकाशस्तम्भ है जो जीवन को सन्मार्ग पर प्रवृत्त करने के लिए महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार बाणभट्ट ने शुकनास के माध्यम से जीवन को सही दिशानिर्देश देने के लिए सरस व प्रभावी शैली में उपदेश दिया है। शुकनासोपदेश बाणभट्ट की अपनी दूरदर्शिता, जीवन के अनुभव तथा राजनीतिक अन्तर्दृष्टि का परिचायक है तथा प्रत्येक काल व परिस्थिति में मानव–जीवन को निर्देशित करने के लिए यह अत्यन्त उपयोगी है।

6.5 सारांश –

शुकनासोपदेश की प्रस्तुत इकाई में निर्धारित गद्यभाग में शुकनास ने चन्द्रापीड को उपदेश दिया है कि जन्मजात ऐश्वर्य, नवयौवन, अद्वितीय सौन्दर्य तथा अतिमानुषी शारीरिक शक्ति, ये सभी अनर्थों को उत्पन्न करने वाले हैं। युवावस्था के प्रारम्भ में शास्त्रज्ञान से निर्मल भी बुद्धि कलुषता को प्राप्त हो जाती है। मनुष्य रजोगुण के कारण स्वेच्छानुसार आचरण करने लगता है तथा कामक्रोध, मदादि के वशीभूत होकर दिग्भ्रमित होकर विपरीत मार्ग पर चल देता है। चन्द्रापीड अभी विद्याध्ययन करके लौटे हैं तथा इन विषयविकारों ने उनको अभी छुआ नहीं है अतः शुकानास कहते हैं कि तुम्हारे जैसे व्यक्ति ही उपदेश के पात्र होते हैं, जिस प्रकार स्फटिक मणि में चन्द्रमा की किरणें प्रवेश कर जाती हैं उसी प्रकार निर्मल मन में उपदेशों के गुण आसानी से प्रवेश कर जाते हैं।

इसी क्रम में गुरु के उपदेश के महत्त्व को बताते हुए शुकनास कहते हैं कि गुरु का उपदेश मनुष्य की कलुषता व बुराइयों को धो देता है तथ उन्हें सन्मार्ग पर प्रेरित करता है। सज्जन पुरूषों के लिए गुरु के उपदेश का विशेष महत्त्व है तथा दुर्जनों पर इस उपदेश का कोई प्रभाव नहीं होता है। राजाओं के लिए इस उपदेश का विशेष महत्त्व है क्योंकि राजभय के कारण राजाओं को उपदेश देने की कोई हिम्मत नहीं करता। राज्यलक्ष्मी को प्राप्त कर व्यक्ति उन्मादग्रस्त हो जाये, उससे पूर्व उसे उपदेश देने का विशेष महत्त्व है। अंत में बाण की गद्यशैली की विशेषता बताई गई है। ओजो गुण प्रधान समासों की बहुलता तथा अलंकारों का वैचित्र्य बाणभट्ट के गद्य की विशिष्टता है।

6.6 शब्दावली –

1.	अनंजनवर्तिसाध्यम्	–	काजल की सलाई से नहीं मिटने वाला।
2.	तिमिरान्धत्वम्	–	आंखों में तिमिर नामक रोग से उत्पन्न अंधापन।
3.	अजस्रम्	–	निरन्तर (लगातार)
4.	अनुज्झितधवलतापि	–	श्वेतता को न छोड़ने पर भी।
5.	समुद्भूतरजोभ्रान्तिः	–	1. रजोगुण से भ्रम का उत्पन्न होना। 2. धूली के घूमने से रेत का बवडंर पैदा होना।
6.	इन्द्रियहरिणहारिणी	–	इन्द्रिय रूपी हिरणों को हरने वाली। इन्द्रियों की तुलना हिरणों से की है।
7.	सततदुरन्ता	–	हमेशा दुःख में अन्त वाली।

8.	उन्मार्गप्रवर्तकः	–	गलत मार्ग पर ले जाने वाला।
9.	रजनीकरगभस्तयः	–	चन्द्रमा की किरणें।
10.	शूलम्	–	कष्ट या वेदना।
11.	आननशोभासमुदयम्	–	मुख की शोभा की वृद्धि को।
12.	शिरसिजजालम्	–	बालों के समूह को।
13.	प्रदोषसमयनिशाकरः	–	संध्याकालीन चन्द्रमा, सूर्यास्त के बाद उदित होने वाला चन्द्रमा।
14.	बडवानलः	–	समुद्र के पानी में लगने वाली आग।
15.	अनुपजातपलितादिवैरूप्यम्	–	बाल आदि सफेद हो जाने से विरूपता या असुन्दरता उत्पन्न नहीं हुई हो।
16.	अनारोपितमेदोदोषम्	–	जिसने चर्बी (मेद) दोष (मोटापा) नहीं बढ़ाया हो।
17.	नोद्वेगकरः	–	बैचेनी को उत्पन्न नहीं करने वाला।
18.	श्वयथुः	–	सूजन।
19.	स्थगितश्रवणविवर	–	कान के छेद बंद हो जाना।
20.	अवधीरयन्तः	–	अनादर करते हुए।
21.	गजनिमीलितेन	–	मदमस्त हाथी की भाँति आँख मूंद कर।
22.	विह्वला	–	व्याकुल।
23.	अलीकाभिमानोन्मादकारीणि	–	झूठे अभिमान, घमण्ड तथा पागलपन उत्पन्न करने वाले।
24.	राज्यविषविकारतन्द्राप्रदा	–	राज्य रूपी विष के विकार से उत्पन्न आलस्य प्रदान करने वाली।
25.	अहंकारदाहज्वरमूर्छान्धकारिता	–	अभिमान रूपी तीव्र ताप के या बुखार से उत्पन्न बेहोशी से अंधेरे वाले।

6.7 बोध–प्रश्न –

प्र.1 शास्त्रजल से निर्मल भी बुद्धि कलुषता को प्राप्त हो जाती है–

(अ) यौवन के आरंभ में (ब) परिणाम अवस्था में

(स) बचपन में (द) राजाओं की ( )

प्र.2 गुरु का उपदेश किसके कान में दर्द उत्पन्न करता है–

(अ) सज्जनों के (ब) दुर्जनों के

(स) राजाओं के (द) मंत्रियों के ( )

प्र.3 किससे आहत मनुष्य पर उपदेश का प्रभाव नहीं होता–

(अ) यौवन के प्रारंभ में (ब) कामदेव से आहत

(स) लक्ष्मी प्राप्त व्यक्ति पर (द) राज्यप्राप्त व्यक्ति पर ( )

प्र.4 सामान्यजन राजाओं को उपदेश नहीं देते–

(अ) राजा होने के कारण (ब) कम उम्र के कारण

(स) धन नहीं होने के कारण (द) भय के कारण ( )

प्र.5 युवावस्था से उत्पन्न होने वाले अन्धकार को भगाने में कौन असमर्थ है?

प्र.6 शुकनास ने किनको अनर्थो की शृंखला माना है?

प्र.7 पठित अंश के आधार पर बाणभट्ट की गद्यशैली पर एक टिप्पणी लिखिये?

प्र.8 गुरु के उपदेश के महत्त्व पर प्रकाश डालिये?

निम्न गद्यांशों की व्याख्या कीजिये –

1. एवं समतिक्रामत्सु .....किमुतसमवाय।
2. यौवनारम्भे च प्रायः.....सुखेनोपदेशगुणाः।
3. गुरुवचनममलमपि..... वडवानलो वारिणा।
4. गुरूपदेशश्च नाम.....तन्द्राप्रदाः राजलक्ष्मीः।

6.8 उपयोगी पुस्तकें

1. कादम्बरी, बाणभट्ट, मोतीलाल बनारसीदास।
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्बा, विद्याभवन, वाराणसी।
3. शुकनासोपदेश – डॉ. विश्वनाथ शर्मा, आदर्श प्रकाशन, जयपुर।

6.9 बोध–प्रश्नों के उत्तर

उ.1 (अ)

उ.2 (ब)

उ.3 (ब)

उ.4 (द)

उ.5 युवावस्था से उत्पन्न होने वाले अंधकार का न तो सूर्य के प्रकाश से निवारण किया जा सकता है। न किसी मणि के प्रकाश से दूर किया जा सकता है और न ही दीपक की कान्ति से हटाया जा सकता है।

उ.6 शुकनास ने जन्म से प्राप्त वैभव, नई जवानी, अद्वितीय सौन्दर्य और अतिमानुषी शारीरिक शक्ति इन सभी को अनर्थों की शृंखला माना है।

उ.7 देखिये 6.3

उ.8 देखिये 6.4

व्याख्या –

1. देखिये गद्यांश संख्या 1 का अनुवाद।
2. देखिये गद्यांश संख्या 2 का अनुवाद।
3. देखिये गद्यांश संख्या 3 का अनुवाद।
4. देखिये गद्यांश संख्या 4 का अनुवाद।

इकाई–7

शुकनासोपदेश–वर्णनम्

"आलोकयतु तावत् कल्याणाभिनिवेशी लक्ष्मीमेव प्रथमम्.....से प्रारम्भ कर ''....उत्कीर्णापि विप्रलभते, श्रुताप्यभिसन्धत्ते चिन्तितापि वञ्चयति।" पर्यन्त अंश का हिन्दी में सप्रसंग अनुवाद, व्याकरण–सम्बन्धी टिप्पणी तथा गद्य शैली की विशेषता

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 शुकनासोपदेश के निर्धारित गद्यांशों का सप्रसंग हिन्दी अनुवाद (व्याकरण संबंधी टिप्पणी सहित)

7.3 बाणभट्ट की गद्य–शैली की विशेषता

7.4 लक्ष्मी के दुर्गुणों का वर्णन

7.5 सारांश

7.6 शब्दावली

7.7 बोध–प्रश्न

7.8 उपयोगी पुस्तकें

7.9 बोध–प्रश्नों के उत्तर

7.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में बाणभट्ट–कृत कादम्बरी से शुकनासोपदेश के कुछ गद्यांशों की व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। इस इकाई में "आलोकयतु.....से.....चिन्तितापि वञ्चयति।" तक के निर्धारित अंश के गद्याशों की संदर्भ, प्रसंग तथा उनकी व्याख्या तथा उसकी व्याकरण–सम्बंधी विशेषताओं को दर्शाया गया है। इस इकाई का उद्देश्य बाणभट्ट–कृत शुकनासोपदेश के गंद्यांशों को समझना तथा बाण की गद्य–शैली की विशेषताओं के बारे में जानना है।

7.1 प्रस्तावना

इस इकाई के माध्यम से निर्धारित गद्यांशों की व्याख्या के साथ–साथ बाण की गद्य–शैली की विशिष्टताओं व उसके वैचित्र्य को जान पायेंगे। इन अंशों में बाण ने लक्ष्मी के स्वरूप के जो प्रभावोत्पादक चित्र खींचे हैं तथा समुद्र–मंथन से उत्पन्न लक्ष्मी के स्वरूप का उत्प्रेक्षा व अतिशयोक्तिपूर्ण शैली में जो वर्णन प्रस्तुत किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। इस इकाई में लक्ष्मी के चंचल, निष्ठुर, अविश्वसनीय स्वरूप के बारे में जान सकेंगे। लक्ष्मी का आगमन अनेक बुराइयों को अपने साथ लेकर आता है। लक्ष्मी के मद में मनुष्य कर्त्तव्याकर्तव्य में भेद करना भूल जाता है। इन सभी विषयों के बारे में इस इकाई में आप जान सकेंगे।

7.2 शुकनासोपदेश के निर्धारित गद्यांशों का सप्रसंग अनुवाद

<u>गद्यांश संख्या–1</u>

आलोकयतु तावत् कल्याणाभिनिवेशी लक्ष्मीमेव प्रथमम्। इयं हि सुभटखड्गमण्डलोत्प– लवनविभ्रमभ्रमरी लक्ष्मीः क्षीरसागरात् पारिजातपल्लवेभ्यो रागम्, इन्दुशकलादेकान्तवक्रताम्, उच्चैश्रवसश्चञ्चलताम्

कालकूटान् मोहनशक्तिम्, मदिराया मदम्, कौस्तुभमणेरतिनैष्ठुर्यम्, इत्येतानि सहवासपरिचयवशाद् विरहविनोदचिन्हानि गृहीत्वैवोद्गता।

संदर्भ – प्रस्तुत गद्यांश बाणभट्ट–विरचित कादम्बरी के पूर्वार्द्ध 'शुकनासोपदेश' से उद्धृत है। इसमें शुकनास द्वारा राजकुमार चन्द्रापीड को उपदेश दिया गया है।

प्रसंग – शुकनास तारापीड के प्रधान अमात्य हैं तथा उन्होंने कहा है कि जन्मजात वैभव, उच्चकुल, अप्रतिम सौन्दर्य तथा अतिमानुषी शक्ति ये चारों एक–एक भी अनर्थ के स्थान हैं, फिर चारों मिल जायें तब तो कहना ही क्या? चन्द्रापीड राजा तारापीड के पुत्र हैं तथा जन्म से ही उनको वैभव प्राप्त है अतः शुकनास चन्द्रापीड को सर्वप्रथम लक्ष्मी के विषय में तथा उससे सम्बद्ध बुराईयों के विषय में बताते हैं।

अनुवाद – मंत्री शुकनास कहते हैं कि कल्याण चाहने वाले आप सर्वप्रथम लक्ष्मी को ही ले लीजिये। यह लक्ष्मी वीर योद्धाओं के तलवारसमूहरूपी कमलवन में विचरण करने वाली भ्रमरी के समान है। लक्ष्मी की उत्पत्ति पौराणिक मान्यता के अनुसार समुद्र–मंथन करते समय चौदह रत्नों के साथ हुई। समुद्र–सहवास के कारण यह उन–उन वस्तुओं से उनसे विरह के कारण मनोविनोद के चिन्हस्वरूप उनसे गुण लेती आयी है। क्षीरसागर से अलग होते समय पारिजात के पत्तों से राग (आसक्ति) चन्द्रमा के खण्ड से नितान्त बांकापन, उच्चैःश्रवा घोड़े से चंचलता, कालकूटविष से मोहनी शक्ति (मूर्च्छित करने का सामर्थ्य) मदिरा से मद, कौस्तुभ मणि से निष्ठुरता (कठोरता), इन सभी विशेषताओं को साथ रहने के परिचय के कारण उनसे अलग होते समय, विरह में मनोविनोद के लिए समुद्र से उत्पन्न होते समय लेकर पैदा हुई है।

व्याकरण–सम्बंधी टिप्पणी –

1. कल्याणभिनिवेशी – कल्याणे अभिनिवेशः यस्य सः (बहुब्रीहि) अभि+नि+विश्+णिनि।
2. क्षीरसागरात् – क्षीरस्य सागरः तस्मात् क्षीरसागरात्।
3. इन्दुशकलात् – इन्दोः शकलम् इन्दुशकलम् तस्मात् (ष. तत्पु.)।
4. विरहविनोदर्चिीनि – विरहे विनोदः, विरहविनोदाय र्चिीनि (च. तत्पु.)।
5. उद्गता – उद् + गम् + क्त् + टाप्।

विशेष – इयं हि सुभटखड्गमण्डलोत्पलवनविभ्रमभ्रमरी लक्ष्मीः–यहाँ खड्गमण्डल पर उत्पल वन तथा लक्ष्मी पर भ्रमरी का आरोप करने से परम्परित रूपक अलंकार है। राग, वक्रता, चञ्चला, मोहनशक्ति आदि के दो–दो अर्थ होने से श्लेष अलंकार है। समुद्र–मन्थन की पौराणिक कथा का निर्देश है तथा विरह–चिन्हों के रूप में लक्ष्मी का उनके दुर्गुण लेना यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है।

<u>गद्यांश संख्या–2</u>

न ह्येवंविधमपरम् अपरिचितमिह जगति किंचिदस्ति यथेयमनार्या। लब्धापि खलु दुःखेन परिपाल्यते। दृढ़गुणपाशसंदाननिष्पन्दीकृतापि नश्यति। उद्दामदर्पभटसहस्रोल्लासितासिलता–पंजरवि–धृताप्यक्रामति। मदजलदुर्दिनान्धकारगजघनघटापरिपालितापि प्रपलायते। न परिचयं रक्षति। नाभिजनमीक्षते। न रूपमालोकयते। न कुलक्रममनुवर्तते न शीलं पश्यति। न वैदग्ध्यं गणयति। न श्रुतमाकर्णयति न धर्ममनुरूध्यते। न त्यागमाद्रियते। न विशेषज्ञतां विचारयति। नाचारं पालयति। न सत्यमवबुध्यते। न लक्षणं प्रमाणीकरोति। गंधर्वनगरलेखेव पश्यत एव नश्यति।

संदर्भ – प्रस्तुत गद्यांश 'शुकनासोपदेश' से उद्धृत है। 'शुकनासोपदेश' बाणभट्ट–रचित कादम्बरी के पूर्वार्द्ध से लिया गया है। राज्याभिषेक के समय चन्द्रापीड को शुकनास लक्ष्मी के स्वरूप के विषय में बताते हैं।

प्रसंग – शुकनास चन्द्रापीड को लक्ष्मी के वास्तविक स्वरूप के विषय में बताते हैं। इस गद्यांश में बाणभट्ट की विद्वत्ता व बहुज्ञता के तो दर्शन होते ही हैं, साथ ही बाण की प्रभावोत्पादक गद्य–शैली तथा गहनचिन्तन–क्षमता का भी परिचय मिलता है।

अनुवाद – शुकनास चन्द्रापीड को लक्ष्मी के विषय में उपदेश करते हुए कहते हैं कि, इस संसार में लक्ष्मी के समान अपरिचित कोई नहीं है जैसी यह अनार्या (नीच) लक्ष्मी है। इसके प्राप्त हो जाने पर भी इसका अत्यन्त कष्ट से पालन किया जाता है। दृढ गुणों (संधि, विग्रहादि गुणों) के पाश से बाँधकर निश्चल की जाने पर भी चली जाती है। अत्यन्त दर्पसमन्वित योद्धाओं से घुमाई गयी तलवार के लतारूपी पिंजरे में रखी जाती हुई भी दूर चली जाती है। मदजल बहाने वाले, बादलों से आच्छादित दुर्दिन से उत्पन्न अंधकार की भाँति काले हाथियों के समूह से संरक्षित भी भाग जाती है। यह न परिचय की परवाह करती है। न उच्चकुल को देखती है। न सुन्दरता को देखती है। न कुलपरम्परा का ध्यान रखती है। न अच्छे स्वभाव को देखती है। न चतुरता को गिनती है। न ज्ञान की बात सुनती है। न धर्म के अनुरोध पर चलती है। न त्याग का आदर करती है। न विशेषज्ञता का विचार करती है। न आचार का पालन करती है। न सत्य को समझती है। न किसी लक्षण को प्रमाण मानती है और आकाश में गंधर्वनगर–रेखा के समान देखते ही नष्ट हो जाती है।

व्याकरण–सम्बंधी टिप्पणी –

1. अनार्या – न आर्या अनार्या (नञ् तत्पुरूष)
2. लब्धा – लभ् + क्त + टाप्।
3. परिपाल्यते – परि + पाल् + यक् + लट्।
4. दृढ़गुणपाशसन्दाननिष्पन्दीकृतापि – गुणा एव पाशा गुणपाशाः (कर्मधारय) तेषा सन्दानं गुणपाशसन्दानं दृढं च तद् दृढगुणपाशसन्दानम् तेन निष्पन्दीकृता (तृ. तत्पु.) नि + स्पन्द + च्वि + कृ + क्त + टाप्।
5. उद्दामदर्पभटसहस्रोल्लासितासिलतापञ्जरविधृता–उद्दामदर्पाश्च ते भटाः उद्दामदर्पभटाः (कर्मधारय) तेषां सहस्रं (ष. तत्पु.) उद्दामदर्पभटसहस्रं, तेन उल्लासिता, असिलता एव पञ्जरं (कर्म.) तस्मिन् विधृता – उद्दामदर्पभटसहस्रोल्लासितासितापञ्जरविधृता।
6. मदजलदुर्दिनान्धकारगजघटितघनघटापरिपालिता–मदस्य जलं इति मदजलं तद् उत्पादयीतारः गजाः तै घटिता घनघटा तया परिपालिता।
7. कुलक्रमम् – कुलस्य क्रमम् (ष. तत्पु.)
8. वैदग्ध्यम् – विदग्ध + ष्यञ्।
9. प्रमाणीकरोति – अप्रमाणं प्रमाणं करोति इति प्रमाणीकरोति, प्रमाण+च्वि+कृ+लट्।
10. गन्धर्वनगरलेखा – गन्धर्वाणां नगरं गन्धर्वनगरं तस्य लेखा (ष. तत्पु.)।
11. पश्यतः – दृश् + शतृ।

विशेष – यहाँ दृढ़गुणपाश से राजा के पक्ष में अभिप्राय है राजनीति के छः गुणों से–सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव आदि। गन्धर्वनगरलेखेव – उपमालंकार है। सम्पूर्ण गद्यांश में लक्ष्मी पर अनार्या नारी के व्यवहार का आरोप होने से समासोक्ति अलंकार है।

<u>गद्यांश संख्या–3</u>

अद्याप्यारूढमन्दरपरिवर्त्तावर्त्तभ्रान्तिजनितसंस्कारेव परिभ्रमति। कमलिनीसंचरणव्यति–करलग्ननलिननालकंटकक्षतेव न क्वचिदपि निर्भरमाबध्नाति पदम्। अतिप्रयत्नविधृतापि

परमेश्वरगृहेषु विविधगंधगजगण्डमधुपानमत्तेव परिस्खलति। पारुष्यमिवोपशिक्षितुमसिधारासु निवसति। विश्वरूपत्वमिव ग्रहीतुमाश्रिता नारायणमूर्तिम्। अप्रत्ययबहुला च दिवसान्तकमलमिव समुपचितमूलदण्डकोषमण्डलमपि मुंचति भूभुजम्। लतेव विटपकानध्यारोहति। गंगेव वसुजनन्यपि तरंगबुद्बुद्चंचला। दिवसकरगतिरवि प्रकटितविविधसंक्रांतिः। पातालगुहेव तमोबहुला। हिडिम्बेव भीमसाहसैकहार्यहृदया। प्रावृडिवाचिरद्युतिकारिणी।

संदर्भ – 'शुकनासोपदेश' बाणभट्ट की कादम्बरी के पूर्वार्द्ध से लिया गया है तथा प्रस्तुत गद्यांश 'शुकनासोपदेश से उद्धृत है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में शुकनास चन्द्रापीड को लक्ष्मी के चंचल स्वरूप के विषय में बताते हुए कहते हैं कि यह लक्ष्मी किसी के पास भी अधिक समय तक नहीं ठहरती। विविध अलंकारों के माध्यम से कवि ने लक्ष्मी के अस्थिर एवं अविश्वसनीय स्वरूप की चर्चा की है। प्रस्तुत गद्यांश कवि की बहुज्ञता तथा विदग्धता को तो दर्शाता ही है, उनके शब्दार्थ–संयोजन एवं परिष्कृत और प्रौढ़ गद्य का भी परिचय देता है।

अनुवाद – समुद्रमंथन के समय मंदराचल के घूमने से भंवर में चक्कर काटने से संस्कारवश आज भी मानो लक्ष्मी घूमा करती है। कमलवन में विचरण करने के कारण, कमलनाल के काँटें लग जाने के कारण क्षत–विक्षत पैर वाली आज भी किसी स्थान पर पैर नहीं जमाती है। बड़े–बड़े राजाओं के महलों में अत्यन्त प्रयत्न करके रखी जाने पर भी अनेक मदोन्मत्त गजों के गण्डस्थल (कनपटियों) से बहने वाले मदजल को पीने से मदमस्त होकर स्खलन कर जाती है। कठोरता सीखने के लिए मानो तलवार की धाराओं में निवास करती है। विविध रूप धारण करने के लिए ही उसने मानों विष्णु के शरीर का आश्रय लिया है।

लक्ष्मी अत्यन्त अविश्वसनीया है जिस प्रकार जड़, नाल, मध्य भाग तथा बाहरी विस्तार सब कुछ वृद्धि पा लेने पर भी सायंकाल में शोभा कमल को छोड़ जाती है, उसी प्रकार राज्य, सेना, कोष (खजाना) तथा मित्रमण्डल सब के विस्तार के बाद भी लक्ष्मी राजा को छोड़ जाती है। लता जिस प्रकार वृक्ष की शाखाओं का आश्रय लेती है उसी प्रकार लक्ष्मी धूर्तों का आश्रय लेती है। गंगा जिस प्रकार आठ वसुओं की माँ होते हुए भी तरंगों और बुद्बुदों से चंचल है उसी प्रकार धन को उत्पन्न करने वाली होने पर भी यह बुद्बुदों व तरंगों के समान चंचल है। सूर्य की गति जिस प्रकार विविध संक्रातियों में गमन करती है उसी प्रकार लक्ष्मी भी एक व्यक्ति से दूसरें के पास संक्रमण करती है। पाताल की गुफा के समान अत्यन्त अंधकार वाली है। भीमसेन के साहस ने जिस प्रकार हिडिम्बा नामक राक्षसी का हृदय हरण कर लिया उसी प्रकार भयंकर साहस ही इस लक्ष्मी का हृदय हरण कर सकता है। वर्षाकाल में जिस प्रकार क्षणिक विद्युत् का प्रकाश होता है, उसी प्रकार लक्ष्मी भी लोगों को क्षणभर के लिए प्रकाशित करती है अर्थात् यह अधिक समय तक किसी के पास नहीं ठहरती।

व्याकरण–सम्बंधी टिप्पणी –

1. आरूढमन्दरपरिवर्तावर्तभ्रान्तिजनितसंस्कारा – आरूढो यो मन्दरपरिवर्तावर्तैः तस्मात् या भ्रान्तिः (ष.तत्पु.) तया जनितः संस्कारः यस्याः सा (बहुब्रीहि)।
2. कमलिनीसञ्चरणव्यतिकरलग्ननलिननालकण्टकक्षतेव कमलिनीसञ्चरणव्यतिकरेण लग्नानि नलिननालकण्टकानि तैः क्षता।
3. अतिप्रयत्नविधृता – अतिशयः प्रयत्नः अतिप्रयत्नः (कर्म.) तेन विधृता। वि+धृ+क्त+टाप्।
4. परमेश्वरगृहेषु – परमश्चासौ ईश्वरः परमेश्वरः (कर्म.) तेषां गृहाणि (ष. तत्पु.) तेषु गृहेणु परमेश्वरगृहेषु।

5. विविधगंधगजगण्डमधुपानमत्ता – गन्धयुक्ताश्च ते गजाश्च गन्धगजाः (कर्म.) विविधाः गन्धगजाः विविधगन्धगजाः तेषां गण्डानां मधु तस्य पानम्, तेन मत्ता (तृ. तत्पु.)।

6. उपशिक्षितुम् – उप+शिक्ष्+तुमुन्।

7. असिधारासु – असीनां धाराः (ष. तत्पु.) तासु असि धारासु।

8. विश्वरूपत्वं – विश्वस्य रूपाणि यस्मिन् तद् विश्वरूपम् (बहु.) तस्य भावः विश्वरूपत्वं।

9. ग्रहीतुम् – ग्रह् + तुमुन्।

10. आश्रिता – आ + श्रि + क्त + टाप्।

11. नारायणमूर्तिम् – नारायणस्य मूर्तिः (ष.तत्पु.) तम्।

12. अप्रत्ययबहुला – न प्रत्ययः अप्रत्ययः (नञ् वायु.) अप्रत्ययः बहुलो यस्याः सा (बहु.)।

13. दिवसान्तकमलं – दिवसस्य अन्तं दिवसान्तं (ष. तत्पु.) दिवसान्ते कमलम् दिवसान्तकमलं (स. तत्पु.)।

14. समुपचितमूलदण्डकोशमण्डलम् – समुपचितं मूलदण्डकोशमण्डलं यस्य सः (बहु.) तम् समुपचितं मूलदण्डकोशमण्डलं। (सम् + उप + चि + क्त)।

15. भूभुजम् – भुवं भुनक्ति भूभुक् (क्विप्)।

16. वसुजननी – वसूनां जननी (ष. तत्पु.)।

17. तरंगबुद्बुद्चञ्चला – तरंगेषु बुद्बुदानि तरंगबुद्बुदानि तद्वत् चञ्चला (कर्मधारय)।

18. दिवसकरगतिः – दिवसं करोति इति (सूर्यः) दिवसकरः तस्य गतिः (ष. तत्पु.)।

19. प्रकटितविविधसंक्रान्तिः – प्रकटिता विविधेषु संक्रान्तिः यया सा (बहु.)।

20. भीमसहासैकहार्यहृदया – भीमसाहसेन एकेन हार्यं हृदयं यस्याः सा (बहुब्रीहिः)।

21. अचिरद्युतिकारिणी – अचिरा द्युतिः इति अचिरद्युतिः (कर्मधारय) तां कर्तुं शीलं यस्या सा (बहु.)।

विशेष – उपर्युक्त गद्यांश में कवि ने लक्ष्मीस्वरूप का वर्णन करते हुए बहुत सुन्दर उत्प्रेक्षा का प्रयोग किया है। गद्यांश की नीचे की पंक्तियों में 'अप्रत्ययबहुला.....द्युतिकारिणी।' तक श्लेष व उपमा अलंकार के सुन्दर प्रयोग हैं। गंगा के आठ पुत्र (आठ वसु) है–अज, ध्रुव, सोम, भद्र, अनल, अनिल, प्रत्यूष, प्रभास। प्रथम सात गंगा ने बहा दिये थे तथा आठवाँ वसु भीष्म पितामह है।

<u>गद्यांश संख्या–4</u>

दुष्टपिशाचीव दर्शितानेकपुरूषोच्छ्राया स्वल्पसत्त्वमुन्मत्तीकरोति। सरस्वतीपरिगृहीतमी– र्ष्ययैव नालिगंति जनम्। गुणवन्तमपवित्रमिव न स्पृशति। उदारसत्त्वमंगलमिव न बहु मन्यते। सुजनमनिमित्तमिव न पश्यति। अभिजातमहिमिव लंघयति। शूरं कंटकमिव परिहरति। दातारं दुःस्वप्नमिव न स्मरति। विनीतं पातकिनमिव नोपसर्पति। मनस्विनमुन्मत्तमिवोपहसति। परस्परविरुद्धञ्चेन्द्रजालमिव दर्शयन्ती प्रकटयति जगति निजचरितम्। तथाहि, सततम् ऊष्माण– मारोपयन्त्यपि जाड्यमुपजनयति। उन्नतिमादधानापि नीचस्वभावतामाविष्करोति। तोयराशिसंभवापि तृष्णां संवर्धयति। ईश्वरतां दधानापि अशिवप्रकृतित्वमातनोति। बलोपचयमाहरन्त्यपि लघिमानमापदयति। अमृतसहोदरापि कटुविपाका। विग्रहवत्यपि अप्रत्यक्षदर्शना। पुरूषोत्तमरतापि खलजनप्रिया। रेणुमयीव स्वच्छामपि कलुषीकरोति।

संदर्भ – प्रस्तुत गद्यांश 'शुकनासोपदेश' से उद्धृत है। शुकनासोपदेश बाणभट्ट–कृत कादम्बरी के पूर्वार्द्ध का अंश है। इसमें मंत्री शुकनास द्वारा चन्द्रापीड को उपदेश दिया गया है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में मंत्री शुकनास चन्द्रापीड को लक्ष्मी का वास्तविक स्वरूप को बता रहे हैं। शुकनास को व्यावहारिक राजनीति का पूर्ण ज्ञान है। राज्यसुख प्राप्त होने पर लक्ष्मी के मद में राजा लोग अनेक बुराइयों से ग्रस्त हो जाते हैं अतः लक्ष्मी को प्राप्त कर व्यक्ति को स्थिर रहना चाहिये क्योंकि लक्ष्मी चंचला है, वह व्यक्ति को कब छोड़कर दूसरे के पास चली जाती है, पता नहीं चलता।

अनुवाद – लक्ष्मी के स्वरूप का वर्णन करते हुए शुकनास कहते हैं कि जिस प्रकार दुष्टा पिशाचीनी अनेक पुरूषों के बराबर ऊँचाई दिखाकर दुर्बल व्यक्तियों में भय उत्पन्न करती है उसी प्रकार यह लक्ष्मी भी अनेक पुरूषों की उन्नति दिखाकर अल्प बुद्धि वाले व्यक्ति को उन्मत्त बना देती है। सरस्वती द्वारा गृहीत व्यक्ति अर्थात् विद्वान् को ईर्ष्या वश आलिंगन नहीं करती। गुणवान, व्यक्ति को अपवित्र समझ कर स्पर्श तक नहीं करती। उदार व्यक्ति का अमंगल के समान आदर नहीं करती। सज्जन व्यक्ति को अपशकुन के समान देखती तक नहीं है। उच्च कुल वाले व्यक्ति को सर्प के समान लांघ कर चली जाती है। वीरों को कांटें के समान दूर कर देती है। दाता को बुरे स्वप्न के समान स्मरण नहीं करती। विनीत व्यक्ति के पास पापी के समान नहीं जाती। मनस्वी व्यक्ति का पागल के समान उपहास करती है। यह लक्ष्मी संसार में मायाजाल के समान परस्पर एक दूसरे से विरूद्ध चरित्र को प्रदर्शित करती है। क्योंकि निरन्तर गर्मी उत्पन्न करती हुई भी शीतलता उत्पन्न करती है अर्थात् मनुष्य में धन का अहंकार उत्पन्न करके उसे अच्छे व बुरे के विवेक से शून्य (जड़) बना देती है। ऊपर उठाकर भी मनुष्य को नीचे ले जाती है अर्थात् धनसमृद्धि बढ़ जाने से मनुष्य की समाज में उन्नति चाहे हो परन्तु उसमें नीच स्वभाव को भर देती है। जलराशि से उत्पन्न होकर भी मनुष्य में और अधिक धनप्राप्ति की लालसा भर देती है।

ईश्वर को (विष्णु को) धारण करती हुई भी अशिव (अकल्याण) की भावना को बढ़ाती है। शरीर में बलवृद्धि करके भी लघुता को उत्पन्न करती है अर्थात् सैन्यवृद्धि करके भी स्वभाव में कृपणता को लाती है। अमृतसहोदरा अर्थात् समुद्र से अमृत के साथ उत्पन्न होने पर भी परिणाम में कटु अर्थात् दुःखदायिनी है। मूर्तिमान् होकर भी प्रत्यक्ष दिखायी नहीं देती। अर्थात् धनवानों के बीच परस्पर कलह का कारण होते हुए भी दिखायी नहीं देती।

पुरुषोत्तम (नारायण) में आसक्त रहने पर भी दुर्जनों से प्रीति करती है। धूलिमय होकर ही मानो निर्मल वस्तुओं को मलिन कर देती है अर्थात् दोषरहित मनुष्य में भी लक्ष्मी की प्राप्ति के बाद अनेकानेक दोष उत्पन्न हो जाते हैं।

व्याकरण–सम्बंधी टिप्पणी –

1. दुष्टपिशाचीव – दुष्टा पिशाची दुष्टपिशाची (कर्मधारय)।
2. दर्शितानेकपुरूषोच्छ्राया – दर्शितः अनेकपुरूषाणाम् उत्छ्रायः यया सा (बहुब्रीहि)।
3. स्वल्पं सत्त्वं यस्य तम् स्वल्पसत्त्वम् (बहुब्रीहि)।
4. उन्मत्तीकरोति – अनुन्मत्तमुन्मतं करोतीति उन्मत्तीकरोति उन्मत्त + च्वि + कृ + लट्।
5. सरस्वतीपरिगृहीतम् – सरस्वत्या परिगृहीतम् (तृ.तत्पु.)। परि+ग्रह्+क्त।
6. गुणवन्तम् – गुण + वतुप् (द्वि.ए.व.)।
7. उदारसत्त्वम् – उदारं सत्त्वं यस्य स तम् (बहुब्रीहि)।
8. सुजनम् – शोभनः जनः सुजनः तम् (कर्मधारय)।
9. अभिजातम् – अभि+जन्+क्त (द्वि.ए.)।
10. दुःस्वप्नम् – दुष्टः स्वप्न दुःस्वप्नः तम् दुःस्वप्नम्।
11. विनीत – वि+नी+क्त।

12. परस्परविरुद्धम् – परस्परम् विरुद्धः परस्परविरुद्धः तम् परस्परविरुद्धम् (कर्मधारय)।

13. दर्शयन्ती – दृश् + णिच् + शतृ + ङीप्।

14. निजचरितम् – निजस्यचरितम् निजचरितम् (ष.तत्पु.)।

15. जाड्यम् – जड + ष्यञ्।

16. आरोपयन्ती – आ + रूह् + णिच् + शतृ + ङीप्।

17. आदधाना – आ + धा + शानच्।

18. उन्नतिम् – उत् + नम् + क्तिन्।

19. तोयराशिसंभवा – तोयस्य राशिः तोयराशिः (ष. तत्पु.) तस्मात् सम्भवः यस्याः सा तोयराशि सम्भवा (बहुब्रीहि)।

20. अशिवप्रकृतित्वम् – प्रकृतेः भावः प्रकृतित्वम्, अशिवस्य प्रकृतित्वम् इति अशिवप्रकृतित्वम्। प्रकृति + त्व (प्रत्यय)।

21. आहरन्ती – आ + हृ + शतृ + ङीप्।

22. लघिमानम् – लघि + इमनिच्।

23. अमृतसहोदरा – अमृतस्य सहोदरा इति (ष. तत्पु.)।

24. कटुविपाका – कटुः विपाकः यस्याः सा (बहु.)।

25. विग्रहवती – विग्रह + वतुप् + ङीप्।

26. अप्रत्यक्षदर्शना – अप्रत्यक्षं दर्शनं यस्याः सा (बहु.)।

27. पुरूषोत्तमरता – पुरूषोत्तमे रता इति (स. तत्पु.)।

28. खलजनप्रिया – खलजनानां प्रिया इति (ष. तत्पु.)।

29. कलुषीकरोति – कलुष + च्वि + कृ + तिप्। अकुलषं कलुषं करोति इति कलुषीकरोति।

विशेष –

1. दुष्टापिशाचीव – यहाँ पर पिशाची से लक्ष्मी की समानता बताई गयी है अतः उपमा अलंकार है। सरस्वतीपरिगृहीतमीर्ष्ययेव – यहाँ पर उत्प्रेक्षा अलंकार है। परस्परविरूद्ध.....कलुषीकरोति– यहाँ पर विरोधाभास अलंकार का प्रयोग है।

<u>गद्यांश संख्या–5</u>

यथा यथा चेयं चपला दीप्यते तथा तथा दीपशिखेव कज्जलमलिनमेव कर्म केवलमुद्वमति। तथाहि, इयं संवर्द्धनवारिधारा तृष्णाविषवल्लीनाम्, व्याधगीतिरिन्द्रयमृगाणाम्, परामर्शधूमलेखा सच्चरितचित्राणाम्, विभ्रमशय्या मोहदीर्घनिद्राणाम्, निवासजीर्णवलभी धनमदपिशाचिकानाम् तिमिरोद्गतिः शास्त्रदृष्टीनाम्, पुरः पताका सर्वाविनयानाम्। उत्पत्तिनिम्नगा क्रोधावेगग्राहाणाम्, आपानभूमिर्विषयमधूनाम्, संगीतशाला भ्रूविकारनाट्यानाम्। आवासदरी दोषाशीविषाणाम्, उत्सारणवेत्रलता सत्पुरूषव्यवहाराणाम्, अकालप्रावृड् गुणकलहंसकानाम्, विसर्पणभूमिर्लोकापवाद– विस्फोटकानाम्, प्रस्तावना कपटनाटकस्य, कदलिका कामकरिणः। वध्यशाला साधुभावस्य, राहुजिह्वा धर्मेन्दुमण्डलस्य। न हि तं पश्यामि, यो ह्यापरिचितयानया न निर्भरमुपगूढः यो वा न विप्रलब्धः। नियतमियमालेख्यगतापि चलति, पुस्तमय्यपि इन्द्रजालमाचरति, उत्कीर्णापि विप्रलभते, श्रुताप्यभिसंधते, चिन्तितापि वंचयति।

संदर्भ – प्रस्तुत गद्यांश बाणभट्ट द्वारा रचित 'शुकनासोपदेश' से उद्धृत है। इसमें चन्द्रापीड के युवराज

पद पर अभिषेक के समय प्रधान अमात्य शुकनास द्वारा चन्द्रापीड को दिया गया उपदेश है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में शुकनास चन्द्रापीड को उपदेश देते हुए लक्ष्मी के स्वरूप के विषय में बताते हैं। लक्ष्मी जैसे–जैसे बढ़ती जाती है वैसे–वैसे यह मलिन व पापकर्मों का भी विस्तार करती जाती है। लक्ष्मी की प्राप्ति से व्यक्ति कामक्रोध, लोभ, मोहादि दुर्गुणों से घिर जाता है अतः लक्ष्मी की प्राप्ति होने पर व्यक्ति को सचेत रहना चाहिये। अतः अमात्य शुकनास कहते हैं कि–

अनुवाद – जैसे–जैसे यह चञ्चला लक्ष्मी प्रदीप्त होती है वैसे–वैसे ही दीप शिखा के समान कज्जलवत् मलिन कार्यों को ही प्रकट करती है, उतना ही अधिक काले कारनामें कराती है, जिस प्रकार हिलती हुई दीपशिखा जितना अधिक जलती है उतने ही अधिक काजल को उत्पन्न करती है। उदाहरणतया, यह लक्ष्मी तृष्णारूपी हिरणों को लुभाने के लिए शिकारी का गीत है। सत्कार्यों रूपी चित्रों को मलिन करने वाली धुएँ की पंक्ति है। मोहरूपी दीर्घनिद्रा के लिए कोमल शय्या है। ऐश्वर्यमद रूपी पिशाचनियों के रहने के लिए टूटी फूटी पुरानी छत है। शास्त्र–रुप चक्षुओं के लिए मोतियाबिन्द की उत्पत्ति है। धृष्टता के सभी कृत्यों को आगे बढ़ाने वाली ध्वजा है। क्रोध व आवेग रूपी मगरमच्छों को उत्पन्न करने वाली नदी है। विषयसुख रूपी मदिराओं की पानभूमि है। भौंहों को टेड़ी करना रूप भाव भंगिमाओं की संगीतशाला है। दोष रूपी विषधर सर्पो को रहने के लिए गुफा है। सज्जनों के सद्व्यवहारों को दूर भगाने वाली छड़ी है। गुण रूपी राजहंसों के लिए असामयिक वर्षा के समान है। लोकनिन्दा रूपी फोड़ों को फैलाने का स्थान है। कपट रूपी नाटक की प्रस्तावना है। कामरूपी हाथी का कदली वन है। उत्तम भावनाओं की वध्यभूमि है। धर्माचरण रूपी चन्द्रमण्डल के लिए राहु की जिीा है। मैं संसार में ऐसा किसी व्यक्ति को नहीं देखता हूँ जो इस अपरिचित लक्ष्मी द्वारा गाढ़ आलिंगन करने के बाद ठग न लिया गया हो। यह लक्ष्मी चित्रपट पर चित्रित होने पर भी निस्संदेह चली जाती है। पुतली बनाकर रखी हुई भी जादू के समान आचरण करती है। पत्थर पर खुदवा कर रखी हुई धोखा दे जाती है। सुनी हुई भी यह कपटाचरण करती है। सोची जाती हुई भी अर्थात् प्राप्ति की आशा में शांतिपूर्वक ध्यान की जाती हुई भी ठगती है।

व्याकरण–सम्बंधी टिप्पणी –

1. दीपशिखा – दीपस्य शिखा (ष. तत्पु.)।
2. कज्जलमलिनम् – कज्जलवत् मलिनम् इति (कर्म.)।
3. संवर्धनवारिधारा – वारीणां धारा इति वारिधारा (ष. तत्पु.) संवर्धने वारिधारा (सं. तत्पु.)।
4. व्याधगीतिः – व्याधस्य गीतिः इति (ष. तत्पु.) गा+ क्तिन्।
5. इन्द्रियमृगाणां – इन्द्रियाणि एव मृगाः (कर्म.) तेषाम् इन्द्रियमृगाणां।
6. तिमिरोद्गतिः – तिमिरस्य उद्गतिः (ष. तत्पु.) उद् + गम् + क्तिन्।
7. दृष्टिः – दृश् + क्तिन्।
8. शास्त्रदृष्टीनाम् – शास्त्राणि एव दृष्टयः तेषां शास्त्रदृष्टीनाम्।
9. क्रोधावेग्राह्राणाम् – क्रोधस्य आवेगाः क्रोधावेगाः (ष. तत्पु.) ते एव ग्राहाः क्रोधावेगग्राहाः (कर्म.) तेषां क्रोधावेगग्राहाणाम्।
10. आपानभूमिः – आपानस्य भूमिः आपानभूमिः (ष. तत्पु.)।
11. विषयमधूनाम् – विषयाः एव मधु विषयमधु तेषां (कर्म.)।
12. भ्रूविकारनाट्यानाम् – भ्रूविकाराः एव नाट्यानि तेषां (कर्म.)।
13. आवासदरी – आवासस्य दरी ग्ष. तत्पु.)।

14. दोषाशीविषाणाम् – दोषा एव आशीविषाः (कर्म.) तेषां दोषाशीविषाणाम्।

15. उत्सारणवेत्रलता – उत्सारणाय वेत्रलता इति (च. तत्पु.)।

16. गुणकलहंसानाम् – गुणा एव कलहंसाः तेषां गुणकलहंसानाम् (कर्म.)।

17. विसर्पणभूमिः – विसर्पणस्य भूमिः (ष. तत्पु.) वि+सृ+ ल्युट्।

18. लोकापवादविस्फोटकानाम् – लोके अपवादाः लोकापवादाः (स. तत्पु.) ते एव विस्फोटकाः लोकापवादविस्फोटकाः (कर्मधारय) तेषां लोकापवादविस्फोटकानाम्।

19. कपटनाटकस्य – कपटम् एव नाटकम् तस्य (कर्म.)।

20. कामकरिणः – काम एव करी कामकरी तस्य कामकरिणः (ष. तत्पु.)।

21. धर्मेन्दुमण्डलस्य – धर्म एव इन्दुमण्डलम् (कर्म.) तस्य धर्मेन्दुमण्डलस्य।

22. उपगूढः – उप+गुह्+क्त।

23. विप्रलब्ध – वि+प्र+लभ्+क्त।

24. गता – गम् + क्त + टाप्।

25. उत्कीर्णा – उत् + कृ + क्त।

26. श्रुता – श्रु + क्त + टाप्।

विशेष – प्रस्तुत गद्यांश में उपमा तथा रूपक की छटा विद्यमान है। 'दीपशिखेव कज्जलमलिनमेव कर्म केवलमुद्वमति' में उपमा अलंकार है। 'इयं संवर्धनवारिधारा.....कामकरिणः।' में सर्वत्र रूपक अलंकार विद्यमान है। विसर्पणभूमिविस्फोटकानाम् – विसर्प छोटी–छोटी फुंसियाँ जो खुजली करने पर सम्पूर्ण शरीर में फैल जाती हैं। विसर्प प्रभावित त्वचा पर फोड़े हो जाते हैं जिन्हें विस्फोटक कहा गया है।

प्रस्तावना – नाट्यशास्त्र में रूपक के दस भेदों में नाटक के अन्तर्गत नान्दीपाठ (मंगलाचरण) के बाद प्रस्तावना से नाटक का प्रारम्भ होता है। प्रस्तावना को आमुख भी कहते है, इसमें नटी, पारिपार्श्विक, सूत्रधार आदि पात्रों द्वारा नाटक की कथावस्तु का संकेत कर दिया जाता है।

पुस्तमयी – लकड़ी मिट्टी आदि की बनी हुई पुतली अभिप्राय है। प्राचार्य मोहनदेव पंत द्वारा सम्पादित कादम्बरी में 'पुस्तकमयी' पाठ दिया गया है, जिसका अर्थ उन्होंने किया है पुस्तकों में बंद भी (पुस्तकों में निहित विषय–वस्तु की भाँति स्थिर की हुई भी) भ्रान्तियाँ उत्पन्न कर देती है। परन्तु पाद–टिप्पणी में उन्होंने 'पुस्तमयी' पाठ ही उचित माना है।

प्रस्तुत गद्यांश बाणभट्ट की ओज : समासमयी प्रौढ़ गद्यशैली का उदाहरण है।

7.3 बाणभट्ट की गद्यशैली की विशेषता

'शुकनासोपदेश' में बाणभट्ट की वर्णनशैली व शब्दवैचित्र्य का सम्यक् परिचय प्राप्त होता है। प्रस्तुत इकाई में निर्धारित गद्यांशों के आधार पर यदि बाण की गद्य–शैली की समीक्षा करें तो यह निश्चित रूपेण कहा जा सकता है कि बाणभट्ट की वर्णनाशक्ति अद्भुत है। शब्दों के चयन, भावों के गुम्फन तथा जीवन के विशाल अनुभवों के प्रति कवि की अपनी दृष्टि है, जिसकी तुलना शायद ही किसी कवि से कर पाना संभव है। बाणभट्ट संस्कृत गद्यलेखकों में अप्रतिम है।

बाणभट्ट पाञ्चाली गद्य–शैली के प्रवर्तक आचार्य हैं। बाण की शब्दयोजना अर्थ के अनुरूप चलती है। उनकी रचना में कहीं सरस, सुकुमार वर्णविन्यास है तो कहीं प्रौढ़, परिष्कृत, ओजगुणयुक्त, समासबहुला भाषा का प्रयोग है, जो अलंकारों के वैचित्र्य से मण्डित है। बाणभट्ट की रचनाओं में हमें गौडी, वैदर्भी तथा पाञ्चाली तीनों रीतिओं का समावेश मिल जायेगा। बाण एक ओर जहाँ प्रौढ़ साहित्यिक गद्य का प्रयोग

करते हैं वहाँ दूसरी ओर शुकनासोपदेश में छोटे–छोटे व्यावहारिक गद्य के प्रयोग भी देखने को मिल जाते हैं। बाणभट्ट ने छोटे–छोटे वाक्यों की योजना इस प्रकार की है जो आज भी दैनिक जीवन में बहुतायत में मिल जाते हैं। लक्ष्मी का वर्णन करते हुए बाणभट्ट द्वारा विरचित छोटे–छोटे वाक्यों की योजना देखिये– **"न परिचयं रक्षति। नाभिजनमीक्षते। न रूपमालोकयते। न कुलक्रममनुवर्तते। न शीलं पश्यति। न वैदग्ध्यं गणयति। न श्रुतमाकर्णयति। न धर्ममनुरुध्यते। न त्यागमाद्रियते। न विशेषज्ञतां विचारयति। नाचारं पालयति। न सत्यमवबुध्यते। न लक्षणं प्रमाणीकरोति। गंधर्वनगरलेखेव पश्यत एव नश्यति।"** बाणभट्ट ने अपनी शैली के विषय में हर्षचरित के प्रारम्भ में लिखा है कि 'नूतन व चमत्कारपूर्ण अर्थ, सुरूचिपूर्ण स्वाभावोक्ति, सरलश्लेष, स्पष्ट रूप से प्रतीत होने वाला रस तथा अक्षरों की दृढ बंधता' ये सभी विशेषतायें एक साथ किसी काव्य में मिलना कठिन है, परन्तु बाण के गद्यकाव्यों में ये सभी विशेषतायें एक साथ समन्वित रूप से दिखायी दे जाती है। बाणभट्ट द्वारा रचित शुकनासोपदेश में बाण की बहुज्ञता तथा पाण्डित्य के दर्शन तो होते ही हैं, साथ ही शैली का वैचित्र्य तथा अलंकारों की छटा भी दर्शनीय है। ओजःसमासपूर्ण श्लिष्ट भाषा का उदाहरण देखिये–

अद्याप्यारूढमन्दरपरिवर्त्तावर्त्तभ्रान्तिजनितसंस्कारेव परिभ्रमति। कमलिनीसंचरण–व्यतिकरलग्ननलिननालकंटकक्षतेव न क्वचिदपि निर्भरमाबध्नाति पदम्।

इस प्रकार बाणभट्ट–कृत शुकनासोपदेश में भाषा की दृष्टि से जहाँ सहज सरल शब्द–योजना के उदाहरण मिलेंगे, वहाँ ओज व समासमय श्लिष्ट प्रयोगों की भी भरमार है। श्लेष, उपमा, अतिशयोक्ति, रूपक तथा उत्प्रेक्षा अलंकारों के सुन्दर प्रयोग देखने को मिलते है। 'गंधर्वनगरलेखेव पश्यत एव नश्यति तथा दुष्टपिशाचीव दर्शितानेकपुरूषोच्छ्राया स्वल्पसत्त्वमुन्मत्तीकरोति' आदि पंक्तियों में उपमा अलंकार का प्रयोग है। अद्याप्यारूढ पदम् में उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति का संकर प्रयोग है।

इसी प्रकार उत्प्रेक्षा का वैचित्र्य स्थान–स्थान पर दिखायी देता है। 'विश्वरूपत्वमिव ग्रहीतुमाश्रिता नारायणमूर्तिम्' तथा 'सरस्वती गृहीतमीर्ष्ययेव नालिंगति जनम्' आदि स्थलों में उत्प्रेक्षालंकार है। इसी प्रकार 'परस्परविरुद्धश्चेन्द्रजालमिव.....कलुषीकरोति।' इस गद्यांश में विरोधाभासअलंकार का प्रयोग किया गया है। अंतिम गद्यांश 'यथा यथा..... चिन्तितापि वंचयति' में रूपक अलंकार का प्रयोग है। इस प्रकार उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा व विरोधाभास के प्रयोग से कवि ने भाषा को वैचित्र्य व गति तो प्रदान की ही है, अपने पाण्डित्य प्रदर्शन का भी कोई अवसर नहीं छोड़ा है। उत्प्रेक्षाओं व उपमाओं के द्वारा कवि ने लक्ष्मी का जो स्वरूप प्रकट किया है, अन्यत्र दुर्लभ है। अतः गोवर्द्धनाचार्य ने बाण की वाणी के बारे में उचित ही कहा है कि सरस्वती ही मानो स्वयं प्रगल्भता प्राप्त करने के लिए बाण के रूप में अवतरित हुई है –

"जाता शिखण्डिनी प्राक् यथा शिखण्डी तथावगच्छामि।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूव ह।।"

7.4 लक्ष्मी के दुर्गुणों का वर्णन

शुकनास ने चन्द्रापीड को उपदेश देते हुए लक्ष्मी के स्वरूप का वर्णन करते हुए लक्ष्मी के दुर्गुणों का वर्णन किया है। लक्ष्मी के स्वरूप के विषय में उत्प्रेक्षा करते हुए बाणभट्ट कहते हैं कि लक्ष्मी की उत्पत्ति क्षीरसागर से हुई है तथा समुद्र–मंथन के समय जो चौदह रत्न समुद्र से निकले उनमें लक्ष्मी भी है और उनसे अलग होते समय मनोविनोद के लिए यह उन वस्तुओं से कुछ न कुछ निशानी लेकर आई है। जैसे पारिजात के पत्तों से राग, चन्द्रमा की कलाओं से कुटिलता, उच्चैःश्रवा घोड़े से चंचलता, कालकूट विष से सम्मोहनशक्ति, मदिरा से मद तथा कौस्तुभ मणि से निष्ठुरता लेकर आयी है। मंदराचल के मंथन से जो भंवर उत्पन्न हुई उस संस्कार के कारण यह लक्ष्मी आज भी भ्रमित रहती है। निष्ठुरता सीखने के लिए यह तलवार की धार में निवास करती है। विश्वरूपता पाने के लिए ही इसने मानों विष्णु के शरीर का आश्रय लिया है तथा विद्वान् व्यक्ति का यह ईर्ष्यावश आलिंगन नहीं करती क्योंकि लक्ष्मी व सरस्वती

का जन्मजात वैर माना गया है। संसार में ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है जो इस लक्ष्मी के द्वारा ठगा न गया हो अर्थात् यह लक्ष्मी किसी के पास अधिक समय तक नहीं रहती अपितु सब को धोखा दे कर चली जाती है।

लक्ष्मी के अविश्सनीय स्वरूप की चर्चा करते हुए शुकनास कहते हैं कि यह कुल, शील, विद्वत्ता, उदारता, त्याग, धर्म एवं विशेषज्ञता आदि किसी बात का भी विचार नहीं करती। अर्थात् यदि लक्ष्मी जाना चाहती है तो फिर किसी भी गुण को नहीं देखती। लक्ष्मी को अनेक बुराइयों व दुर्गुणों की जड़ माना गया है। लक्ष्मी के आने के साथ ही मोह, मद, मात्सर्य, अविनय, काम, अहंकार, मिथ्याभिमान, कपट आदि दुर्गुण बढ़ जाते हैं। इन सब दुर्गुणों के आने से मनुष्य लोकनिंदा व अपवाद का कारण बनता है। लक्ष्मी के आते ही मनुष्य के सच्चरित्र, बल, धर्म, विनम्रता आदि गुणों का विलोप हो जाता है तथा अनेकानेक अवगुण उसमें आने लगते हैं। इस लक्ष्मी के प्रभाव में आकर राजा लोग भी अपने प्रजाहित जैसे मुख्य धर्म से हटकर दुर्गुणों तथा मदमोहादि में लिप्त हो जाते हैं। अतः प्रधान अमात्य शुकनास चन्द्रापीड को उपदेश देते हैं कि इस लक्ष्मी के द्वारा सभी राजा लोग ठगे गये है परन्तु तुम ऐसा कुछ करना कि इस लक्ष्मी के प्रभाव से बच कर रहना।

7.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई में शुकनास ने चन्द्रापीड को जो उपदेश दिया है उसमें लक्ष्मी के वास्तविक स्वरूप का परिचय कराया है। लक्ष्मी के चंचल, निर्मोही, मायावी व छल–प्रपंचमय रूप का वर्णन कवि द्वारा किया गया है। लक्ष्मी की उत्पत्ति से सम्बन्धित समुद्र–मंथन के पौराणिक आख्यान के द्वारा कवि ने सुन्दर उत्प्रेक्षा के माध्यम से लक्ष्मी का वर्णन किया है। लक्ष्मी के वर्णन में कवि की विद्वत्ता व बहुज्ञता का अद्भुत परिचय प्राप्त होता है। कवि लक्ष्मी की अविश्वनीयता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि यह समृद्ध मूल, दण्ड, कोष तथा मण्डल वाले राजा को भी छोड़ कर चली जाती है। लक्ष्मी की अविश्सनीयता के व्यावहारिक ज्ञान के साथ–साथ कवि की राजनीतिक अन्तर्दृष्टि का भी परिचय मिलता है। इस प्रकार इस इकाई के अन्तर्गत जिन गद्यांशों का अनुवाद दिया गया है उसके माध्यम से आप ने लक्ष्मी के वास्तविक स्वरूप के विषय में ज्ञान प्राप्त किया तथा उपर्युक्त गद्यांशों की व्याख्या के द्वारा बाण की बहुश्रुतता, उसकी ओजःसमासमय शैली, कहीं–कहीं सहज सरल शब्दयोजना तथा विविध अलंकारों के वैचित्र्य से परिपूर्ण शैली का अध्ययन किया। बाण वस्तुतः संस्कृत गद्यसाहित्य के सर्वश्रेष्ठ गद्यकार तथा सजीव प्रभावोत्पादक उपदेशशैली के प्रवर्तक आचार्य है।

7.6 शब्दावली

1. इन्दुशकलात् – चन्द्रखण्ड से।
2. नैष्ठुर्यम् – कठोरता।
3. दृढगुणपाश – संधि–विग्रह आदि मजबूत रस्सी का बन्धन।
4. गंधर्वनगरलेखेव – गंधर्वनगर अर्थात् मिथ्याआभास रूप नगर की रेखा की भाँति।
5. आरूढमन्दरपरिवर्त्तावर्त्तभ्रान्तिजनितसंस्कारेव – मन्दराचल के घूमने से भंवर में चक्कर काटने से उत्पन्न संस्कार वाली।
6. अप्रत्ययबहुला – अत्यधिक अविश्वसनीया।
7. दिवसान्तकमलम् – सांयकालीन कमल को
8. समुपचितमूलदंडकोषमण्डलम् – (1) जिसके जड़ (मूल) नाल, मध्यभाग तथ बाहरी विस्तार सब वृद्धि को प्राप्त हो चुके है। (2) राजा के पक्ष में जिसका राज्य क्षेत्र, सेना, खजाना तथा मित्रमण्डल सब पूरी तरह

से विकसित हो।

9. विटपकान् – वृक्ष की शाखाओं को, लम्पटों को।
10. दिवसकरगतिः – सूर्य की चाल।
11. प्रकटितविविधसंक्रान्तिः – बारह प्रकार की संक्रान्तियों में संक्रमण (सूर्य के पक्ष में) अनेक व्यक्तियों के पास गमन करने वाली (लक्ष्मी के पक्ष में।)
12. हिडिम्बा – राक्षसी (भीमसेन से विवाह किया था)।
13. प्रावृड् – वर्षाकाल।
14. दर्शितानेकपुरूषोच्छ्राया – अनेक पुरूषों के समान ऊँचाई दिखाने वाली।
15. अनिमित्तमिव – अपशकुन के समान।
16. जाड्यम् – शीतलता या मूर्खता।
17. तोयराशिसम्भवा – समुद्र से उत्पन्न होने वाली।
18. तृष्णा – प्यास या लोलुपता (लालच)।
19. ईश्वरताम् – प्रभुता या शिव रूपता को।
20. अशिवप्रकृतित्वम् – अशिव अर्थात् अमंगल स्वभाव को।
21. बलोपचयम् – बल–वृद्धि।
22. अमृतसहोदरा – अमृत की सगी बहिन (समुद्र–मंथन के समय लक्ष्मी अमृत के साथ उत्पन्न हुई)।
23. कटुविपाका – कड़वे फल या क्लेशकारी परिणाम वाली।
24. विग्रहवती – शरीर वाली, युद्ध वाली।
25. पुरूषोत्तमरता – विष्णु के प्रति आसक्त, श्रेष्ठ पुरूष से अनुराग रखने वाली।
26. रेणुमयी – धूली से युक्त (रजोगुण से युक्त)।
27. कज्जलमलिनम् – काजल के समान काले कारनामें तमोगुण वाली।
28. उद्वमति – उगलती है।
29. संवर्द्धनवारिधारा – बढ़ाने के लिए जलधारा।
30. व्याधगीति – शिकारियों के गीत।
31. इन्द्रियमृगाणाम् – इन्द्रियरूपी हिरणों के।
32. परामर्शधूमलेखा – ढकने के लिए धुएँ की रेखा।
33. निवासजीर्णवलभी – रहने के लिए टूटी–फूटी अटारी।
34. धनमदपिशाचिकानाम् – धनमद रूपी राक्षसियों की।
35. उत्पत्तिनिम्नगा – जन्म देने वाली नदी।
36. भ्रूविकारनाट्यानाम् – भौहों के विकार या परिवर्तन रूपी अभिनयों का।
37. आवासदरी – रहने की गुफा।
38. उत्सारणवेत्रलता – हटाने के लिए बेंत की छड़ी।

39. लोकनिन्दाविस्फोटकानाम् – लोकनिंदा रूपी फोड़ों की।

40. कदलिका – केले की वाटिका।

41. धर्मेन्दुमण्डलस्य – धर्म रूपी चन्द्रमण्डल के लिए।

42. निर्भरम् – पूरी तरह से।

43. आलेख्यगतापि – चित्रलिखित भी।

44. पुस्तमय्यपि – (लकड़ी का) पुतला बनाकर रखी गयी भी।

45. अभिसंधत्ते – धोखा दे जाती है।

7.7 बोध प्रश्न –

प्र.1 लक्ष्मी ने निष्ठुरता ग्रहण की है–

(अ) उच्चैःश्रवा से (ब) कौस्तुभमणि से

(स) खड्गमण्डल से (द) चन्द्रमा से ( )

प्र.2 अनेकरूपता को धारण करने के लिए लक्ष्मी ने आश्रय लिया है–

(अ) विष्णु का (ब) शिव का

(स) राजाओं का (द) धूर्तों का ( )

प्र.3 लक्ष्मी किस व्यक्ति का आलिंगन नहीं करती–

(अ) नीच व्यक्ति का (ब) उदार व्यक्ति का

(स) विद्वान् व्यक्ति का (द) उच्चकुलीन का ( )

प्र.4 लक्ष्मी कपट रूपी नाटक की है–

(अ) यवनिका (ब) सूत्रधार

(स) वध्यशाला (द) प्रस्तावना ( )

प्र.5 क्षीरसागर से उत्पन्न होते समय लक्ष्मी क्या–क्या चिन्ह लेकर आयी है?

प्र.6 लक्ष्मी चञ्चला है इसके लिए कवि द्वारा क्या तर्क दिया गया है?

प्र.7 लक्ष्मी के परस्पर विरोधी चरित्र का वर्णन कीजिये?

प्र.8 लक्ष्मी किन–किन दुर्गुणों का विस्तार करती है?

प्र.9 प्रस्तुत इकाई में वर्णित गद्यांशों के आधार पर बाण की गद्य–शैली पर प्रकाश डालिये।

प्र.10. लक्ष्मी के दुर्गुणों का विस्तृत विवेचन करें।

प्र.11 निम्न स्थलों का सप्रसंग अनुवाद कीजिए

1. आलोकयतु तावत्.....गृहीत्वैवोद्गता।
2. न ह्येवंविधमपरम्.....नश्यति।
3. दुष्ट पिशाचीव.....कलुषीकरोति।
4. यथा–यथा चेयं चपला.....चिन्तितापि वंचयति।

7.8 उपयोगी पुस्तकें

1. कादम्बरी (पूर्वार्द्धम्) – सम्पादक मोहनदेव पंत, मोतीलाल, बनारसीदास, दिल्ली।
2. हर्षचरित–पं. जगन्नाथ पाठक, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय शारदासंस्थान, वाराणसी।
4. हर्ष चरित (प्रथम उच्छ्वास) – चुन्नीलाल शुक्ल, साहित्य भंडार, मेरठ।
5. शुकनासोपदेश – डॉ. विश्वनाथ शर्मा, आदर्श प्रकाशन, जयपुर।
6. संस्कृतसाहित्य का इतिहास – ए.बी. कीथ, मोतीलाल, बनारसीदास दिल्ली।

7.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

उ.1 (ब)

उ.2 (अ)

उ.3 (स)

उ.4 (द)

उ.5 क्षीरसागर से उत्पन्न होते समय लक्ष्मी पारिजात के पत्तों से राग, चन्द्रमा के खण्ड से नितान्त बाँकापन, उच्चैःश्रवा से चञ्चलता, कालकूट विष से सम्मोहनशक्ति, मदिरा से मद, कौस्तुभमणि से निष्ठुरता आदि चिन्ह लेकर अपने साथियों से पृथक् हुई।

उ.6 समुद्रमंथन करते समय जब चौदह रत्नों को निकाला गया तो मंथन के लिए मन्दराचल पर्वत के भ्रमण से जो भँवर उत्पन्न हुई, उसमें घूमने से संस्कारवश लक्ष्मी आज भी मानों घूमा करती है।

उ.7 लक्ष्मी परस्पर विरोधी चरित्र को प्रकट करती है। लक्ष्मी अपने आगमन से मनुष्य पर अहंकार की उष्णता को आरोपित करती हुई भी मनुष्य को सदसद्–विवेकशून्य या जड़ बना देती है। उन्नति को दिखाकर मनुष्य के स्वभाव को नीच या कृपण बना देती है। जलराशि से उत्पन्न होकर भी तृष्णा को बढ़ाने वाली है। शिव होकर भी अशिव स्वभाव का विस्तार करती है। शारीरिक शक्ति बल आदि को बढ़ाती हुई भी कायरता प्रदान करती है। अमृत–सहोदरा होती हुई भी कड़वे परिणाम वाली है तथा शरीर वाली होती हुई भी दिखाई नहीं देती। श्रेष्ठ पुरूष विष्णु में अनुरक्त होकर भी दुष्टजनों की प्रिया है तथ स्वच्छ व्यक्ति को भी कलुषित बना देती है।

उ.8 लक्ष्मी के आगमन से मनुष्य में तृष्णा, मोह, मद, काम, अविनय, मिथ्याचार, बाह्य आडम्बर तथा कपट आदि दुर्गुणों का विस्तार हो जाता है।

उ.9 देखिये भागसंख्या 7.3।

उ.10 देखिये भागसंख्या 7.4।

उ.11 देखिये सप्रसंग अनुवाद –

1. देखिये गद्यांश संख्या 1
2. देखिये गद्यांश संख्या 2
3. देखिये गद्यांश संख्या 4
4. देखिये गद्यांश संख्या 5

इकाई–8

शुकनासोपदेश–वर्णनम्

''एवं विधयापि चानया दुराचारया कथमपि दैववशेन परिगृहीता....'' से प्रारम्भ कर ''...वल्मीकतृणाग्रावस्थिता जलबिन्दव इव पतितमप्यात्मानं नावगच्छन्ति।'' पर्यन्त अंश का हिन्दी में सप्रसंग अनुवाद, व्याकरण–सम्बन्धी टिप्पणी तथा गद्य शैली की विशेषता

इकाई की रूपरेखा –

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 एवं विधयापि चानया.....आकुलीक्रियमाणा विह्वलतामुपयान्ति पर्यन्त अंश का सप्रसंग हिन्दी अनुवाद

8.2.1 व्याकरणात्मक टिप्पणी

8.3 ग्रहैरिव गृह्यन्ते, भूतैरिवाभिभूयन्ते.....न गृह्णन्त्युपदेशम् पर्यन्त अंश का सप्रसंग हिन्दी अनुवाद

8.3.1 व्याकरणात्मक टिप्पणी

8.4 तृष्णाविषमूर्च्छिताः कनकमयमिव.....पतितमप्यात्मानं नावगच्छन्ति पर्यन्त अंश का सप्रसंग हिन्दी अनुवाद

8.4.1 व्याकरणात्मक टिप्पणी

8.5 गद्यशैली की विशेषतायें

8.5.1 बाणभट्ट की शैली

8.5.2 काव्य–शैली के पंचगुण

8.5.3 ओज गुण एवं वर्ण योजना

8.5.4 अलंकार योजना

8.5.5 चरित्र–चित्रण

8.5.6 "बाणोच्छिष्टं जगत् सर्वम्"

8.6 सारांश

8.7 शब्दावली

8.8 बोध–प्रश्न

8.9 कतिपय उपयोगी पुस्तकें

8.10 बोध–प्रश्नों उत्तर

8.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में बाणभट्ट–विरचित कादम्बरी कथा के "शुकनासोपदेश" नामक भाग के – एवं "विधयापि चानया.....नावगच्छन्ति" पर्यन्त अंश का सप्रसंग हिन्दी अनुवाद एवं व्याकरणात्मक टिप्पणी के माध्यम से बाण की गद्यशैली का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस इकाई का मुख्य उद्देश्य

तारापीड के महामन्त्री शुकनास द्वारा चन्द्रापीड को उसके यौवराज्याभिषेक के अवसर पर दिये जा रहे दुराचारिणी लक्ष्मी के दोषों से सावधान रहने के उपदेश का मनुष्यमात्र को पालन करना चाहिए। शुकनास के द्वारा जो उपदेश चन्द्रापीड को दिया गया वह आज भी समस्त मनुष्य एवं राजाओं के लिए उपयोगी है जिसका अनुसरण करके लक्ष्मी से उत्पन्न दुराचारों द्वारा स्वयं को बचाया जा सकता है।

8.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में –

(1) राजाओं के चरित्र का वर्णन किया गया है।

(2) राज्याभिषेक के समय होने वाले क्रियाकलापों का सुन्दर चित्रण तथा शुकनास द्वारा समस्त अनर्थकारी व्यवहारों का चित्रण किया गया है।

(3) दुराचारिणी लक्ष्मी से अभिभूत राजाओं की दशा का वर्णन किया गया है।

(4) लक्ष्मी के मद से उत्पन्न होने वाले दोषों का वर्णन किया गया है।

(5) बाणभट्ट के गद्य–शैली का वैशिष्ट्य दृष्टिगोचर होता है।

इन सभी विषयों के बारें में आप विस्तृत विवेचन प्रस्तुत इकाई में जान पायेंगे।

8.2 एवं विधयापि चानया.....आकुलीक्रियमाणा विह्वलतामुपयान्ति। पर्यन्त अंश का सप्रसंग हिन्दी अनुवाद

एवं विधयापि चानया दुराचारया कथमपि देववशेन परिगृहीता विक्लवा भवन्ति राजानः सर्वाविनयाधिष्ठानतां च गच्छन्ति। तथाहि–अभिषेकसमय एव चैतषां मग्लकलशजलैरिव प्रक्षाल्यते दाक्षिण्यम् अग्निकार्यधूमेनेव मलिनी क्रियते हृदयम् पुरोहितकुशाग्रसंमार्जिनीभिरिवापह्रियते क्षान्तिः, उष्णीषपट्टबन्धेनेवाच्छाद्यते जरागमनसारणम्, आतपत्रमण्डलेनेवापसार्यते परलोकदर्शनम् चामरपवनैरिवापह्रियते सः सत्यवादिता वेत्रदण्डैरिवोत्सार्यन्ते गुणाः, जयशब्दकलकलरवेरिव तिरस्क्रियन्ते साधुवादाः, ध्वजपटपल्लवैरिव परामृश्यते यशः। केचित्छ्रमवशशिथिलश– कुनिगलपुटचपलाभिः खाद्योतोन्मेषमुहूर्तमनोहराभिर्मनस्विनजनगर्हिताभिः सम्पद्भिः प्रलोभ्यमानाः धनलवनाभावलेपपविस्मृतजन्मानोघ्नेकदोषोपचितेन दुष्टासृजेव रागावेशेन बाध्यमानाः विविधविषयग्रासलालसैः पञ्चभिरप्यनेकसहस्त्र सख्यैरिवैन्द्रियरायास्यमानाः प्रकृतिञ्चलतया लब्धप्रसरेणैकेनापि सहस्त्रतामुपगतेन मनसा आकुलीक्रियमाणा विह्वलतामुपयान्ति।

प्रसंग – प्रस्तुत अंश बाणभट्ट की कादम्बरी के 'शुकनासोपदेश' नामक भाग से उद्घृत है। कादम्बरी बाणभट्ट की सर्वोत्कृष्ट कृति है। शुकनासोपदेश कादम्बरी का एक सुप्रसिद्ध अंश है। उज्जयिनीनरेश तारापीड के वृद्ध मन्त्री शुकनास द्वारा राजकुमार चन्द्रापीड को उसके यौवराज्याभिषेक के अवसर पर दिये गये उपदेश का इसमें सारगर्भित विवेचन है।

प्रस्तुत गद्यांश में लक्ष्मी के दोषों का विवेचन करते हुए महाकवि बाणभट्ट कहते हैं –

हिन्दी अनुवाद – और इस प्रकार की इस दुराचारिणी (लक्ष्मी) के द्वारा जैसे–तैसे (येन–केन) भाग्यवश ग्रहण किये गये (अपनाये गये) राजा लोग विह्वल हो जाते हैं और सब दुराचारों के निवास–स्थान बन जाते हैं। उदाहरण के लिए राज्याभिषेक के समय ही इनकी उदारता मानो, मग्लकलशों से धो दी जाती है, यज्ञकर्म के धुँए से मानो हृदय मलिन कर दिया जाता है, पुरोहित की कुशाओं के अग्रभागरूपी मार्जनी (बुहारियों) से मानो सहनशीलता दूर फेंक दी जाती है, पगड़ी के बाँधने से मानो वृद्धावस्था आगमन की स्मृति ढक दी जाती है। छत्रमण्डल से मानो परलोक दृष्टि रोक दी जाती है, चँवर की हवा से मानो सत्य बोलने की आदत उड़ा दी जाती है, जय–जयकार के कोलाहल की ध्वनि से मानो सत्वचन तिरस्कृत कर

दिये जाते हैं, ध्वजाओं की पल्लव सदृश पताकाओं से मानो यश पोंछ दिया जाता है। कुछ राजा लोग थकान के कारण शिथिल पक्षी के कण्ठ–देश की भाँति, चञ्चल जुगनू के प्रकाश की भाँति थोड़ी देर के लिए मनोहर और मनस्वी जनों द्वारा निन्दित सम्पत्तियों के प्रलोभन में आते हुए थोड़ा–सा धन प्राप्त हो जाने के अभिमान से पुनर्जन्म को विस्मृत कर (वात–पित्त–कफजनित) अनेक दोषों से व्याप्त विकृत रक्त की भाँति, (काम–क्रोधादि–जनित) अनेक दोषों से बढ़े हुए विषयानुराग के आवेश से कष्ट पाते हुए अनेक विषयों के उपभोग में लालसा रखने वाली पाँच होती हुई भी मानो अनेक सहस्त्र संख्या वाली इन्द्रियों से क्लेश पाते हुए तथा स्वभाव से चञ्चल होने के कारण अवसर पाकर एक होते हुए भी हजार रूप में दिखने वाले मन से व्याकुल किये जाते हुए विह्वलता को प्राप्त हो जाते हैं।

विशेष–

1. "एवं विधयापि.....गच्छति" इन पंक्तियों में कार्य के द्वारा लक्ष्मी में पिशाचिनी (दुराचारिणी) के व्यवहार का समारोप करने से "समासोक्ति" अलंकार है।
2. तथाहि–अभिषेकसमय ..... परामृश्यते यशः।" इस सम्पूर्ण अनुच्छेद में "क्रियोत्प्रेक्षा" अलंकार है तथा मात्र "कुशासंमार्जनी" में कुशाओं के अग्रभाग में मार्जनी (बुहारी) का आरोप करने से "रूपक" अलंकार है।
3. प्रस्तुत गद्यावतरण बाणभट्ट की चूर्णक शैली (अत्यल्प समासयुक्त शैली) का सुन्दर उदाहरण है।
4. "केचित्" की विशेषता के रूप में–प्रलोभ्यमानाः, बाध्यमानाः, आयास्यमानाः और आकुलीक्रियमाणाः का प्रयोग हुआ है।
5. "श्रमवशः..... प्रलोभ्यमानाः" प्रस्तुत अंश में "लुप्तोपमा" अलंकार तथा पदार्थहेतुक "काव्यलिंग" अलंकार है। ये परस्पर निरपेक्ष हैं अतः "संसृष्टि अलंकार" कहलाता है।
6. धनवलाभावलेप.....बाध्यमानाः, में पूर्णोपमा अलंकार है।
7. विविधविषय ..... आयास्यमानः, पर्यन्त अंश में गुणोत्प्रेक्षा अलंकार है।

8.2.1 व्याकरणात्मक टिप्पणी–

1.	एवं विधयापि	– एवम् विधाः यस्याः सा, तया अपि
2.	अनया दुराचारया	– दुष्टः आचारः यस्याः सा तया
3.	परिगृहीता	– परि + ग्रह् + क्त
4.	सर्वाविनयाधिष्ठानताम्	– न विनयाः अविनयाः सर्वे च ते अविनयाः तेषाम् अधिष्ठानम् सर्वाविनयाधिष्ठानम् तस्य भावः सर्वाविनयाधिष्ठानता ताम्।
5.	अधिष्ठानम्	– अधि + स्था + ल्युट्।
6.	दाक्षिण्यम्	– दक्षिण + ष्यञ्
7.	मंगलकलशजलैः	– मंगलाय कलशा मंगलकलशाः येषाम् जलैः।
8.	अग्निकार्यधूमेन	– अग्नेः कार्यम् अग्निकार्यम्, तस्य धूमेन।
9.	मलिनीक्रियते इव	– अमलिनं मलिनं क्रियते इति मलिन– क्रियते इव।

10. पुरोहितकुशाग्रसंमार्जनीभिः – कुशानाम् अग्राणि कुशाग्राणि तानि एव संमार्जनयः पुरोहितानां कुशाग्रसमार्जन्यः पुरोहितकुशाग्रमार्जन्यः ताभिः।

11. जरागमनस्मरणम् – जरायाः आगमनम् जरागमनम् तस्य।

12. उष्णीषपट्टबन्धेन – उष्णीस्य पट्टः उष्णीषपट्टः तस्य बन्धः उष्णीषपट्टबन्धः तेन।

13. परलोकदर्शनम् – परश्चासौ लोकः परलोकः तस्य दर्शनम्।

14. आतपत्रमण्डलेन – आतपात् त्रायते इति आतपत्रम् तस्य मण्डलेन।

15. सत्यवादिता – सत्यं वदतीति सत्यवादी तस्य भावः।

16. चामरपवनैः – चमर्याः इमानि चामराणि तेषां पवनैः।

17. साधुवादाः – साधवश्च ते वादाः साधुवादाः।

18. ध्वजपटपल्लवैः – ध्वजानां पटाः ध्वजपटाः ते पल्लवानि इव ध्वजपल्लवानि तैः।

19. श्रमवशशिथिलशकुनिगलपुटचपलाभिः – श्रमस्य वशेन शिथिलः श्रमवशशिथिलः शकुनेः गलः, शकुनिगलः श्रमवशशिथिलश्चासौ शकुनिगलः श्रमवशशिथिल शकुनिगलः तस्य पुटम तद्वत् चपलाभिः।

20. खद्योतोन्मेषमुहूर्तमनोहराभिः – खे द्योतते इति खद्योतः तस्य उन्मेष खद्योतोन्मेषः, मनः हरन्तीति मनोहराः मुहूर्तं मनोहरा मुहूर्तमनोहराः, खद्योतोन्मेषवद् मुहूर्तमनोहराः खद्योतोन्मेषमुहूर्तमनोहराः ताभिः।

21. मनस्विनजनगर्हिताभिः – मनस्विनश्च ते जनाः मनस्विजनाः तैः गर्हिताभिः

22. प्रलोभ्यमानाः – प्र + लुभ् + णिच् + यक् कर्मवाच्य + शानच्

23. धनलवलाभावलेपविस्मृतजन्मानः – धनस्य लवः धनलवः तस्य लाभ धनलवलाभः तस्माद् अवलेपः धनलवलाभावलेपः तेन विस्मृतं जन्म यैः ते।

24. अनेकदोषोपचितेन – अनेक च ते दोषाः अनेकदोषाः तैः उपचितेन।

25. दुष्टासृजा इव – दुष्टम् च तत् असृक् दुष्टासृक् तेन इव।

26. विविधविषयग्रासलालसैः – विविधाश्च ते विषयाः विविधविषयाः तेषां ग्रासलालसा येषां तैः।

27. अनेकसहस्त्रसंख्यैः – अनेकानि च तानि सहस्राणि अनेकसहस्त्र तानि संख्या येषां तैः।

28. आयास्यमानाः – आ + याम् + णिच् + यक् + शानच्

29. प्रकृतिचञ्चलतया — प्रकृत्या चञ्चलम् प्रकृतिचञ्चलम् तस्य भावः प्रकृतिचञ्चलता तया।

30. आकुलीक्रियमाणाः — अनाकुलाः आकुलाः क्रियमाणाः आकुली–क्रियमाणाः।

8.3 ग्रहैरिव गृह्यन्ते, भूतैरिवाभिभूयन्ते.....न गृह्णन्त्युपदेशम्। पर्यन्त अंश का सप्रसंग हिन्दी अनुवाद

ग्रहैरिव गृह्यन्ते, भूतैरिवाभिभूयन्ते, मन्त्रैरिवावेश्यन्ते, सत्त्वैरिवावष्टभ्यन्ते, वायुनेव विडम्बयन्ते, पिशाचैरिव ग्रस्यन्ते, मदनशरैर्मर्माहता इव मुखभंगसहस्त्राणि कुर्वते, धनोष्मणा पच्यमाना इव विचेष्टन्ते, गाढप्रहाराहता इवागनि न धारयन्ति। कुलीरा इव तिर्यक् परिभ्रमन्ति अधर्मभग्नगतयः पग्व इव परेण सञ्चार्यन्ते। मृषावादविषविपाकसञ्जातमुखरोगा इवातिकृच्छ्रेण जल्पन्ति, सप्तच्छदतरव इव कुसुमरजोविकारैः पार्श्ववर्तिनां शिरःशूलमुत्पादयन्ति, आसन्नमृत्यव इव बन्धुजनमपि नाभिजानन्ति, उत्कुपितलोचना इव तेजस्विनो नेक्षन्ते, कालदंष्टा इव महामन्त्रैरपि न प्रतिबुध्यन्ते, जातुषाभरणानीव सोष्माणं न सहन्ते, दुष्टवारणा इव महामनस्तम्भनिश्चलीकृता न गृह्णन्त्युपदेशम्।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश में शुकनास नामक मंत्री ने ऐसे राजाओं का वर्णन किया हैं जो स्वविवेक से कार्य नहीं करते हैं तथा राज्यमद में उन्मत्त होकर ऐसे कार्य करते हैं जो वस्तुतः उन्हें नहीं करने चाहिए। इन्द्रियों तथा मन के वशीभूत होकर विह्वल होने वाले राजाओं की वस्तुस्थिति का वर्णन करते हुए कहते हैं –

हिन्दी अनुवाद– वे राजा लोग मानो ग्रहों से घेर लिये जाते हैं, मानो भूतों से दबा लिये जाते हैं, मानो मन्त्रों से आविष्ट कर दिये जाते है, मानो हिंसक जन्तुओं से पकड़ लिये (जकड़ लिये) जाते हैं, मानो वायु (वातरोग) से पीड़ित किये जाते हैं, मानो पिशाचों से निगल लिये जाते हैं, मानो कामदेव के बाण से मर्मस्थल पर प्रहारेण सहस्त्रों मुखविकार करते हैं, मानो धन की गर्मी से झुलसते हुए छटपटाते हैं, मानो तीव्र प्रहारों से घायल होकर अंगों को नहीं सँभाल पाते। केकड़ों की भाँति टेढे (कुटिल) चलते हैं, अर्थात् राजाओं का आचार कुटिल होता है। अधर्म के कारण जिनकी गति नष्ट हो गयी है, पङ्गुओं की भाँति दूसरे से चलाये जाते हैं। असत्यभाषणरूपी विष के परिणामस्वरूप मुखरोग उत्पन्न होने से मानो वे बड़े कष्ट से बोल पाते हैं, सप्तपर्ण वृक्ष जैसे पुष्पों की रज के विकार से समीपवर्त्ती लोगों के सिर में दर्द पैदा कर लेते हैं वैसे ही राजा लोग रजोगुण से उत्पन्न अपमानसूचक नेत्रभग्मिा से समीपवर्त्ती लोगों के सिर में दर्द पैदा कर देते हैं, मरणासन्न व्यक्तियों की भाँति सगे–सम्बन्धियों को भी नहीं पहचानते, दुःखिनी–आँख वालों की भाँति तेजस्वियों (1–प्रकाश, 2–प्रताप) को नहीं देखते, (राजा लोग ईर्ष्यावश अपने से अधिक तेजस्वियों को तथा नेत्ररोगी चकाचौंध के कारण चमकदार वस्तुओं को नहीं देखते) महाविषैले सर्प से डसे हुए की भाँति महामन्त्रों (1– विषनिवारण गरूड़ मन्त्र, 2– शुभ मन्त्रणा) से भी नहीं जागते, लाख से बने आभूषणों की भाँति ऊष्मा (1–गर्मी, 2–तेज) युक्त को सहन नहीं करते, बहुत बड़े खम्भे से जकड़कर रखे गये दुष्ट हाथियों की भाँति महान् गर्व के दुराग्रह से अविचल बने हुए राजा लोग उपदेश ग्रहण नहीं करते।

विशेष–

1. "ग्रहैरिव गृह्यन्ते"– यहाँ असौम्य अथवा क्रूर ग्रहों के घिरने की "उत्प्रेक्षा" की गई है।,
2. "मदनशरैः" कवि ने मुखभग्मिा के हेतु रूप कामदेव के बाणों में मर्माघात की "उत्प्रेक्षा" की है।

3. "धनोष्मणा" यहाँ धनियों की विविध चेष्टाओं के हेतुरूप में "धनोष्मा" से झुलसे जाने में "उत्प्रेक्षा" की है।

4. गाढप्रहाराहता– यहाँ लक्ष्मी के मद में मत्त राजा लोगों की अकर्मण्यता के हेतुरूप में प्रहाराघात की "उत्प्रेक्षा" की गई है।

8.3.1 व्याकरणात्मक टिप्पणी–

1.	पिशाचैः	– पिशम् आचामन्तीति पिशाचाः तैः।
2.	मदनशरैर्मर्माहता इव	– मदनस्य शरैः मर्माणि आहताः इव।
3.	मुखभंगसहस्त्राणि	– मुखस्य भग मुखभग तेषां सहस्त्राणि।
4.	धनोष्मणा	– धनस्य ऊष्मा धनोष्मा तेन।
5.	गाढप्रहाराहताःइव	– गाढाश्च ते प्रहाराः गाढप्रहाराः तैः आहताः इव।
6.	अधर्मभग्नगतयः	– न धर्मः अधर्मः तेन भग्ना गतिः येषां ते।
7.	सञ्चार्यन्ते	– सम् + चर् + णिच् + यक् + लट्।
8.	मृषावादविषविपाकसञ्जातमुखरोगाः	– मृषावादः एवं विषम् तस्य विपाकः मृषावादविषविपाकः तेन सञ्जातः मुखरोगः येषां ते।
9.	सप्तच्छदतरवः इव	– सप्तः छदाः येषां ते सप्तच्छदाः सप्तच्छादाश्च ते तरवः ते इव।
10.	कुसुमरजोविकारैः	– (1) रजसः विकाराः रजोविकाराः कुसुमानि एव रजोविकाराः तैः। (2) कुसुमानां रजांसि कुसुमरजांसि तेषां विकारैः।
11.	पार्श्ववर्तिमान्	– पार्श्वे वर्तन्ते इति पार्श्ववर्तिनः तेषाम्।
12.	आसन्नमृत्यवः इव	– आसन्नः मृत्युः येषां ते।
13.	बन्धुजनम् अपि	– बन्धुश्चासौ जनः बन्धुजनः तम् अपि।
14.	उत्कुपितलोचनाः इव	– उत्कुपिते लोचने येषां ते इव।
15.	तेजस्विनः	– तेजः एषाम् अस्तीति तेजस्विन तान्।
16.	महामन्त्रैः	– महान्तश्च ते मन्त्राः महामन्त्राः तैः
17.	जातुषाभरणानि इव	– जातुषा निर्मितानि जातुषाणि जातुषाणि च तानि आभरणानि जातुषाभरणानि तानि इव।
18.	महामानस्तम्भनिश्चलीकृताः	– (1) महांश्चासौ मानः महामानः तेन स्तम्भः महामानस्तभ्यः तेन निश्चलीकृताः। (राजा पक्ष में) (2) महद् यो मान यस्य सः महामानः सः चासौ स्तम्भः महामानस्तम्भः तेन निश्चलीकृता। (गजपक्ष में)

8.4 तृष्णाविषमूर्च्छिताः कनकमयमिव.....पतितमप्यात्मानं नावगच्छन्ति पर्यन्त अंश का सप्रसंग हिन्दी अनुवाद

तृष्णाविषमूर्च्छिताः कनकमयमिव सर्वं पश्यन्ति, इषव इव पानवर्धितं तक्षैण्याः परप्रेरिता विनाशयन्ति, दूरस्थितान्यपि फलानीव दण्डविक्षेपैर्महाकुलानि शातयन्ति, अकालकुसुमप्रसवा इव मनोहर.तयोऽपि लोकविनाशहेतवः, श्मशानाग्नय इवातिरौद्रभूतय, तैमिरिका इवादूरदर्शिनः, उपसृष्टा इव क्षुद्राधिष्ठितभवनाः। श्रूयमाणा अपि प्रेतपटहा इवोद्वेजयन्ति, चिन्त्यमाना अपि महापातकाध्यवसाया इवोपद्रवमुपजनयन्ति, अनुदिवसमापूर्यमाणाः पापेनेवाध्मातमूर्तयो भवन्ति, तदवस्थाश्च व्यसनशतसंख्यतामुपगता वल्मीकतृणाग्रावस्थिता जलबिन्दव इव पतितमप्यात्मानं नावगच्छन्ति।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में मन्त्री शुकनास ने लक्ष्मी के मद में मस्त राजाओं के द्वारा किये जाने वाले अनिष्ट कार्यों का वर्णन किया है। उन राजाओं का व्यवहार ही कष्टकारक होता है।

हिन्दी अनुवाद – लालसा रूपी विष से मोहित हुए राजा लोग प्रत्येक वस्तु को सोने की बनी हुई सी देखने लगते हैं, शाण पर घर्षण से बढ़ी हुई तीक्ष्णता वाले बाणों की भाँति मदपान से बढ़ी हुई उग्रता वाले (राजा) दूसरों से प्रेरित होकर विनाश कर देते हैं, दूर स्थित फलों को भी जैसे डण्डा फेंककर लोग तोड़ दिया करते हैं, वैसे ही राजा लोग दूर स्थित होने पर भी बड़े कुलों को दण्डनीति के प्रयोग से नष्ट कर देते हैं, अकाल में निकले फूलों (पुष्पों) की भाँति मनोहर आकार वाले होकर भी वे लोगों के विनाश के कारण बनते हैं, श्मशान की आग की भाँति भयटर ऐश्वर्य वाले होते हैं, तिमिर नामक नेत्र रोग वालों की भाँति वे (राजा) अदूरदर्शी होते हैं, वेश्याओं की भाँति वे क्षुद्र (1–नीच, 2–विट्) जनों से युक्त भवनों वाले होते हैं। मृतक के समक्ष बजने वाले ढोल की भाँति सुने जाने मात्र से उद्विग्न (उद्वेग) कर देते हैं, ब्रह्महत्या आदि महापापों को करने के निश्चय की भाँति विचार में लाये जाने मात्र से अशान्ति पैदा कर देते हैं, प्रतिदिन उसकी देह फूलती जाती (मोटी हो जाती) है, मानो पाप से भरे जा रहे हों और उस अवस्था में सैकड़ों व्यसनों के लक्ष्य बने हुए बाँबी के तिनके के अग्रभाग पर स्थित जलकणों की भाँति अपने पतन को भी नहीं जानते।

8.4.1 व्याकरणात्मक टिप्पणी –

1.	तृष्णाविषमूर्च्छिताः	– तृष्णा एव विषम् तृष्णाविषम् तेन मूर्च्छिताः।
2.	कनकमयम् इव	– कनकेन निर्मितम् कनकमयम् तद् इव।
3.	पानवर्धित तैक्ष्ण्या	– पानेन वर्धितम् तैक्षण्यम् येषां ते।
4.	परप्रेरिताः	– परेण प्रेरिताः (प्र + ईर् + णिच् + क्त)
5.	महाकुलानि	– महान्ति च तानि कुलानि महाकुलानि।
6.	अकालकुसुमप्रसवाः इव	– न कालः अकालः, कुसुमानां प्रसवाः कुसुमप्रसवाः, अकाले कुसुमप्रसवा अकालकुसुमप्रसवाः ते इव।
7.	मनोहराकृतयः अति	– मनः हरन्तीति मनोहरा आकृतयः येषां ते।
8.	लोकविनाशहेतवः	– लोकानां विनाशः लोकविनाशः तस्य हेतवः।
9.	अतिरौद्रभूतयः	– अतिशयेन रौद्राः, अति रौद्राः, भूतयः येषाम् ते।
10.	तैमिरिकाः इव	– तिमिरेण ससृष्टाः तैमिरिकाः ते इव।

11.	अदूरदर्शिनः	–	दूरं पश्यन्तीति दूरदर्शिनः, न दूरदर्शिनः अदूरदर्शिनः।
12.	उपसृष्टाः इव	–	उपसृष्टम् संजातम् आसाम् इति उपसृष्टाः ता इव। उप + सृज् + क्त।
13.	क्षुद्राधिष्ठितभवनाः	–	(1) क्षुद्रैः अधिष्ठितानि भवनानि येषां ते। (राजा पक्ष में) (2) क्षुद्रैः अतिष्ठितं भवनं यासां ताः। (वेश्यापक्ष में)
14.	प्रेतपटहाः इव	–	प्रेतानां पटहाः प्रेतपटहाः ते इव।
15.	महापातकाध्यवसायाः इव	–	महान्ति च तानि पातकानि महापातकानि तेषाम् अध्यवसायाः ते इव।
16.	अध्यवसायाः	–	अधि + अव + सो + धञ्।
17.	आपूर्यमाणाः	–	आ + पुर् + यक् + शानच्।
18.	आध्मातमूर्तयः	–	आध्माता मूर्तिः येषां ते। आ + ध्मा + क्ता + टाप्।
19.	व्यसनशतसंख्यताम्	–	व्यसनानां शतानि व्यसनशतानि येषां संख्यम्, तस्य भावः व्यसनशतसंख्यता ताम्।
20.	वल्मीकतृणाग्रवस्थिताः	–	वल्मीकस्य तृणानि वल्मीकतृणानि तेषाम् अग्राणि वल्मीकतृणाग्राणि तेषु अवस्थिताः।

8.5 बाणभट्ट के गद्य–शैली की विशेषतायें

"गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति।" गद्य में कवि की सम्पूर्ण प्रतिभा का व्यापक उपयोग होता है अतः इस प्रकार के गद्य की अपेक्षा पद्यरचना को सरल माना गया हैं क्योंकि उसमें सीमित छन्द में लयात्मक सरणि शब्द–चयन के लिये सुविधाजनक होती है। इसलिए गद्य को कवियों के लिए कसौटी के समान माना है।

रचना की दृष्टि से आचार्य विश्वनाथ ने संस्कृत गद्यकाव्य के चार भेद किये हैं–

(1)	मुक्तक	–	समासरहित गद्य प्रधान।
(2)	वृतगन्धि	–	यत्र–तत्र छन्दोमयता का प्रवाह।
(3)	उत्कलिकाप्राय	–	दीर्घ समासबहुल पदावली।
(4)	चूर्णक	–	अत्यल्प समासयुक्त।

8.5.1 बाणभट्ट की शैली–

कविता–कामिनी के पञ्चबाण महाकवि बाण ने अपने गद्य–काव्यों की रचना में जिस शैली का आश्रय लिया है वह वस्तुतः भाव, कला तथा शब्द एवं अर्थ का समुचित गुम्फन लेकर अवतीर्ण हुई है– "शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरिष्यते"।

इस लक्षण का पूर्णतया पालन करते हुए बाणभट्ट ने उस मनोहर माली का स्वरूप धारण किया हैं जिसने दाडिम से देदीप्यमान दीपक, मालती–सी मादक उपमाएँ, पाटला–सी प्रेक्षणीय उत्प्रेक्षा,

सोनजुही सी सरल स्वाभावोक्ति तथा शेफालिका–सी सुहावनी परिसंख्या एक सूत्र रूप में समाहित करके श्लेषमय सघन संघटना की है तथा जिससे सुशोभित होकर बाण की कविता–कामिनी महाश्वेता की भाँति स्वयं प्रियतम के पास अभिसरण करने को उत्सुक है और जिसके प्रथम दर्शन पर ही पाठक भी पुण्डरीक की भाँति आकृष्ट हुए बिना नहीं रहता।

8.5.2 काव्य–शैली के पञ्चगुण –

उत्कृष्ट काव्य शैली में पाँच गुणों की योजना अनिवार्य हैं। ये गुण हैं–

"नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम्।।" अर्थात्

(1) नवीन, उत्तरोत्तर रुचिवर्धक, चमत्कारकारी अर्थ की सृष्टि।

(2) स्वाभावोक्ति का प्रयोग शिष्ट एवं सुन्दर हो जिसमें अश्लीलता एवं ग्राम्यता न हो।

(3) श्लेष अलंकार का प्रयोग हो किन्तु वह सरल एवं बोधगम्य हो।

(4) रस की व्यंजना सर्वत्र स्फुट हो और

(5) शब्दयोजना संश्लिष्ट विकट बन्धशालिनी हो।

बाण ने इन पाँच गुणों का एक ही काव्य में समावेश करना बहुत कठिन माना है किन्तु स्वयं उन्होंने इन गुणों को अपनाकर अपने पाण्डित्य का परिचय भी दिया है। बाणभट्ट इन पाँच गुणों के समन्वय को ही गद्य का प्राण स्वीकार करते हैं।

8.5.3 ओज गुण एवं वर्णयोजना–

आचार्य दण्डी ने ओज नामक गुण का लक्षण करते हुए कहा है – "ओजः समासभूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्"। (काव्यादर्श 1/80) रमणीय वर्ण–योजना कोमल–पदशय्या, प्रसंगानुरूप वाक्य–विन्यास, ओजस्विनी सशक्त भाषा, वकोक्तिमयी अभिव्यञ्जना प्रणाली एव सर्वत्र रसप्रणवता आदि गुणों के कारण बाण की शैली उत्तरवर्त्ती गद्य–लेखकों के लिये वह आदरणीय रही है। वर्ण्य–विषय को सजीव तथा प्रभावी बनाने के लिये ओजगुण–मण्डित दीर्घसमासान्त पदावली का प्रयोग तथा वार्तालाप या स्वगत कथन के रूप में छोटे–छोटे वाक्यों का प्रयोग करके शैली की सशक्तता तथा प्रसङ्गनुकूलता प्रकट कर दी है। बाणभट्ट किसी एक शैली के क्रीतदास नहीं है।

8.5.4 अलंकार–योजना–

अलंकारों के प्रयोग से बाण ने अपने कलाकार रूप को पूरी तरह चमका दिया है। वस्तु का पूर्णबिम्ब चित्रण करने के लिये उसने पहले स्वाभावोक्ति के द्वारा वर्ण्य (विषय) वस्तु के रूप की रेखायें खींची हैं, पुनः उपमा या उत्प्रेक्षा के द्वारा उन रेखाओं में रंग भरा है, तत्पश्चात् बाहरी नक्कासी के प्रेमियों के लिये शाब्दीक्रीड़ा का सुन्दर प्रयोग किया है।

(क) उत्प्रेक्षा अलंकार – गन्धवनगरलेखेव पश्यत एव नश्यति। अद्याप्यारूढ–मन्दरपरिवर्तावर्तभ्रान्तिजनितसंस्कारेव परिभ्रमति। कमलिनीसंचरण व्यतिकरलग्नलिन–नालकण्टकक्षतेव न क्वचिदपि निर्भरमाबध्नाति पदम्।

(ख) परिसंख्या एवं श्लेष अलंकार– जाबालि आश्रम के वर्णन में आश्रम की पवित्रता, शोभा एवं शान्ति की अतिशयता उपस्थित करने के लिए परिसंख्या एवं श्लेष अलंकार का सरल प्रयोग दृष्टिगोचर होता है–

"यत्र च मलिनता हविधूमेषु न चरितेषु, मुखरागः शुकेषु न कोपेषु, तीक्ष्णता कुशाग्रेषु न

स्वभावेषु, चञ्चलता कदलीदलेषु न मनःसु"।

(ग) रूपक अलंकार– "स्वार्थनिष्पादनपरैर्धनपिशितग्रासगृध्रैरास्थाननलिनीबकैः।"

बाण के द्वारा प्रयुक्त उपमाएँ एवं उत्प्रेक्षाएँ एक ओर जहाँ वर्णनीय पात्र के प्रति कवि की भावना को व्यक्त करती हैं वहीं दूसरी ओर उस पात्र के स्वभाव का भी मनोवैज्ञानिक परिचय प्रदान करती है। अतः बाण के अलंकार–सौन्दर्य में बाह्य साम्य के साथ–साथ अन्तःसाम्य की भी व्यञ्जना रहती है।

8.5.5 चरित्र–चित्रण–

बाणभट्ट ने कादम्बरी कथा के शुकनासोपदेश में दुराचारिणी लक्ष्मी तथा उस लक्ष्मी से परिगृहीत राजाओं के चरित्र का अत्यन्त मनोहारी चित्रण प्रस्तुत किया है। उन्होंने लक्ष्मी को सभी दुराचारों से युक्त माना है तथा वह राजाओं को भी अपने वश में करके अनेक दुराचारों का निवास स्थान बना देती है।

8.5.6 "बाणोच्छिष्टं जगत् सर्वम्–

महाकवि बाण के सम्बन्ध में यह सूक्ति अतिप्रचलित है कि सम्पूर्ण जगत् बाण की जूठन है अर्थात् बाण ने किसी भी विषय को अछूता नहीं छोड़ा है। जो कुछ भी उन्होंने वर्णन कर दिया है, उससे आगे कुछ भी कहने को शेष नहीं। इसलिए सब कुछ बाण की जूठन है।

इस सुभाषित का मुख्य आधार है – "कवि की सर्वतोमुखी प्रतिभा, व्यापक ज्ञान, अद्भुत वर्णनशैली, वर्ण्य–विषय का सूक्ष्मातिसूक्ष्म चित्रण और विपुल शब्द–भण्डार।"

इन्हीं समस्त विशेषताओं के आधार पर यह कहना सर्वथा संगत है कि परवर्ती कवियों, साहित्यकारों के लिए कुछ भी नवीन कहने या लिखने के लिए अवशिष्ट नहीं रहा है।

8.6 सारांश

"शुकनासोपदेश" मूलतः गद्यकार बाणभट्ट द्वारा विरचित श्रेष्ठ ग्रन्थ "कादम्बरी" से अवतरित है। यह "कादम्बरी" की कथा का एक महत्त्वपूर्ण अंश (भाग) है। राजा तारापीड के यहाँ राजदरबार में शुकनास नामक वयोवृद्ध मन्त्री थे। तारापीड ने जब अपने पुत्र चन्द्रापीड का राज्याभिषेक करना चाहा, उससे पूर्व मन्त्री शुकनास के महत्वपूर्ण उपदेश को बाणभट्ट ने "कादम्बरी" में अत्यन्त सहज, सरल, सुबोध एवं अल्पसमासयुक्त शैली में प्रस्तुत किया है।

"शुकनासोपदेश" को निम्न बिन्दुओं के आधार पर व्यक्त कर सकते हैं –

(1) शुकनास द्वारा चन्द्रापीड को राज्यशासन व्यवस्था से सम्बन्धित उत्तरदायित्वों से अवगत करवाया गया है।

(2) जन्मजात प्रभुता, अतुल वैभव, अभिनव यौवन, अनुपम सौन्दर्य और अलौकिक शक्ति से होने वाले भयंकर परिणामों एवं अनर्थ–श्रृंखला से स्वयं को बचाने का सत्परामर्श प्रदान किया गया है।

(3) गुरु के वचनों का माहात्म्य प्रस्तुत अंशों में दृष्टिगोचर होता है तथा चन्द्रापीड द्वारा गुरु के वचनों का सम्मान करना बताया गया है।

(4) शुकनास ने चंचल, निर्मोही, छल–प्रपंचमयी लक्ष्मी के स्वभाव का परिचय प्रस्तुत किया है।

(5) राजाओं के प्रति लक्ष्मी का कैसा आचरण होता है तथा किस प्रकार वह लक्ष्मी राजाओं को समस्त दुराचारों का निवास–स्थान बना देती है उसका सटीक वर्णन प्रस्तुत गद्यांशों में द्रष्टव्य है।

8.7 शब्दावली–

1.	दैववशेन	–	भाग्य के अनुकूल होने पर।
2.	विक्लवाः	–	विह्वल, व्याकुल।
3.	दाक्षिण्यम्	–	उदारता, दानशीलता।
4.	क्षान्तिः	–	क्षमा, सहनशीलता।
5.	उष्णीषपट्ट	–	पगड़ी का रेशमी वस्त्र।
6.	आतपत्रमण्डलेन	–	छत्र–मण्डल से।
7.	चामरपवनैः	–	चँवर की हवा से, चमरी नामक एक पशु के पूँछ के बालों से चँवर बनता है।
8.	वेत्रदण्डैः	–	बेंत की छड़ियों से।
9.	ध्वजपटपल्लवैः	–	पल्लव सदृश ध्वजों की पताकाओं से
10.	शकुनिगलः	–	पक्षी का गलप्रदेश (कण्ठप्रदेश)
11.	खद्योत	–	जुगनू
12.	सम्पद्भिः	–	सम्पत्तियों से
13.	रागावेशेन	–	विषयों के प्रति अनुराग की उत्तेजना से।
14.	बाध्यमानाः	–	कष्ट पाते हुए।
15.	पञ्चभिरपि	–	पाँच होते हुए भी। (शब्द–स्पर्श–रूप–रस–गन्ध का उपभोग करने वाली)
16.	ज्ञानेन्द्रियाँ	–	श्रोत्र–त्वक्–चक्षु–रसना–घ्राण। पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ
17.	आयास्यमानाः	–	क्लेश पाते हुए।
18.	आकुलीक्रियमाणाः	–	व्याकुल बनाये जाते हुए।
19.	ग्रहैः	–	क्रूर शनि आदि ग्रहों से। ग्रहों में शनि, राहु, केतु, मग्ल तथा रवि असौम्य ग्रह माने गए हैं और चन्द्र, बुद्ध (बुध) गुरु व शुक्र सौम्य ग्रह है।
20.	सत्त्वैः	–	हिंसक जन्तुओं से।
21.	मदनशरैः	–	कामदेव के बाणों से।
22.	विचेष्टन्ते	–	विविध चेष्टा करते हैं, छटपटाते हैं।
23.	कुलीराः इव	–	केकड़ों के समान।
24.	तिर्यक्	–	वक्र, कुटिल।
25.	अतिकृच्छ्रेण	–	बड़े कष्ट से।
26.	शिरःशूलम्	–	सिर में दर्द।
27.	आसन्नमृत्यवः इव	–	जिनकी मृत्यु निकट है उनके समान।
28.	उत्कुपितलोचनाः इव	–	नेत्र रोगों से पीड़ित व्यक्तियों की भाँति
29.	दुष्टवारणाः इव	–	अनियन्त्रित हाथियों के समान।

30. इषवः – बाण, शर।

31. दण्डविक्षेपैः – दण्डनीति के प्रयोगों से, डण्डा फेंक कर।

32. शातयन्ति – नष्ट कर देते हैं।

33. तैमिरिकाः – तिमिर नामक नेत्र रोग से ग्रसित।

34. उद्वेजयन्ति – उद्विग्न बना देते हैं।

35. उपद्रवम् – अशान्ति को।

36. अनुदिवसम् – प्रतिदिन।

37. उपगताः – प्राप्त हुए अर्थात् अनेक बुरी आदतों का निशाना बने हुए।

38. पतितम् – धर्म से च्युत् पृथ्वी पर गिरा हुआ।

8.8 बोध–प्रश्न

1. राज्याभिषेक के समय राजाओं की मग्लकलशों से क्या धो दी जाती है–

   (अ) सहनशीलता (ब) निपुणता

   (स) उदारता (द) स्मृति

2. राजा लोग किस–की गर्मी से झुलसते हैं–

   (अ) लालसा (ब) काम

   (स) धन (द) सूर्य

3. लालसारूपी विष से मोहित राजा लोग प्रत्येक वस्तु को किसका बना हुआ मानते है–

   (अ) सोने का (ब) ताँबे का

   (स) लोहे का (द) चांदी का

4. राजा लोग कैसे सभी दुराचारों के निवास–स्थान बन जाते हैं ?

5. राजा लोग किस कारण से अपने जन्म की बात को भूलकर अनेक दोषों से व्याप्त हो जाते हैं ?

6. इन्द्रियों एवं मन के वशीभूत होकर विह्वल हुए राजाओं की स्थिति का वर्णन कीजिए ?

7. लक्ष्मी के वश में हुए राजा लोग अपने समीपवर्त्ती लोगों से किस प्रकार का व्यवहार करते हैं ?

8. राजलक्ष्मी के प्रभाव से राजाओं की क्या–क्या दशा होती है ?

9. निम्नलिखित गद्यांशों का सप्रंसग अनुवाद कीजिए–

   (अ) तथाहि ..... परामृश्यते यशः।

   (ब) ग्रहैरिव ..... सञ्चार्यन्ते।

   (स) तृष्णाविषमूर्च्छिताः ..... क्षुद्राधिष्ठितभवनाः।

   (द) श्रूयमाणा ..... नावगच्छन्ति।

8.9 कतिपय उपयोगी पुस्तकें–

1. कादम्बरी (पूर्वार्द्धम्) सम्पादक – मोहनदेव पंत, मोतीलाल, बनारसीलाल, दिल्ली।

2. शुकनासोपदेशः – रामनाथ शर्मा "सुमन" शिक्षा साहित्य प्रकाशक, साहित्य भण्डार, मेरठ।

3. शुकनासोपदेशः – डॉ. विश्वनाथ शर्मा, आदर्श प्रकाशन, जयपुर।

4. संस्कृत साहित्य का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदासंस्थान, वाराणसी।

5. हर्षचरित – पं. जगन्नाथ पाठक, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।

6. संस्कृत साहित्य का इतिहास – ए.वी.कीथ, मोतीलाल, बनारसीदास, दिल्ली।

7. हर्षचरित (प्रथम उच्छवास) – चुन्नीलाल शुक्ल, साहित्य भण्डार, मेरठ।

8.10 बोध–प्रश्नों के उत्तर–

1. स

2. स

3. अ

4. दुराचारिणी राजलक्ष्मी से भाग्यवश ग्रहण किये गये राजालोग विह्वल होकर सभी दुराचारों के निवास–स्थान बन जाते हैं। जैसे राज्याभिषेक के समय ही इनकी उदारता मंगलकलशों के जल से धो दी जाती हैं, यज्ञकर्म के धुएँ से इनके हृदय को मलिन कर दिया जाता है, पुरोहित की कुशाओं से इनकी सहनशीलता को दूर फेंक दिया जाता है, पगड़ी (मुकुट) बाँधने से वृद्धावस्था के आगमन की स्मृति को ढक दिया जाता है इत्यादि अनेक प्रकार से ये राजा लोग राजलक्ष्मी के मद से मस्त होकर दुराचारों के निवास–स्थान बन जाते है।

5. थोड़े से धन की प्राप्ति से उत्पन्न अभिमान के कारण ये राजालोग अपने जन्म की बात भूल कर रक्त–सम्बन्धित अर्थात् वात–पित्त–कफ जनित तथा रागवेश–सम्बन्धित काम–क्रोध आदि अनेक दोषों से व्याप्त हो जाते हैं।

6 द्रष्टव्य – भाग–संख्या – 8.2

7 द्रष्टव्य – भाग–संख्या – 8.3

8 द्रष्टव्य – भाग–संख्या – 8.4

9 (अ) द्रष्टव्य – भाग–संख्या – 8.2

(ब) द्रष्टव्य – भाग–संख्या – 8.3

(स) द्रष्टव्य – भाग–संख्या – 8.4

(द) द्रष्टव्य – भाग–संख्या – 8.4

इकाई–9
शुकनासोपदेश–वर्णनम्

''आपरे तु–स्वार्थनिष्पादनपरैर्धनपिशित–ग्रास–गृध्रैरास्थाननलिनीबकैः....'' से प्रारम्भ कर ''...प्रीतहृदयो मुहूर्तं स्थित्वा स्वभवनमाजगाम।'' पर्यन्त अंश का हिन्दी में सप्रसंग अनुवाद, व्याकरण–सम्बन्धी टिप्पणी तथा गद्य शैली की विशेषता

इकाई की रूपरेखा–

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 अपरे तु स्वार्थनिष्पादन .....पावनमाकलयन्ति। पर्यन्त अंश का सप्रसंग हिन्दी अनुवाद।

9.2.1 व्याकरणात्मक टिप्पणी।

9.3 मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराश्च ..... भ्रातर उच्छेद्याः। पर्यन्त अंश का सप्रसंग हिन्दी अनुवाद।

9.3.1 व्याकरणात्मक टिप्पणी।

9.4 तदेवं प्रायातिकुटिलकष्ट ..... स्वभवनमाजगाम। पर्यन्त अंश का सप्रसंग हिन्दी अनुवाद।

9.4.1 व्याकरणात्मक टिप्पणी।

9.5 राजाओं का चरित्र–चित्रण

9.6 सारांश

9.7 शब्दावली

9.8 बोध–प्रश्न

9.9 कतिपय उपयोगी पुस्तकें

9.10 बोध–प्रश्नों के उत्तर

9.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में बाणभट्ट–कृत कादम्बरी कथा के "शुकनासोपदेश" नामक भाग के "अपरे तु स्वार्थनिष्पादन. .....स्थित्वा स्वभवनमाजगाम।" पर्यन्त गद्यांशों का सप्रसंग हिन्दी अनुवाद तथा व्याकरणात्मक टिप्पणी द्वारा विवेचन किया गया है। इस इकाई में शुकनास द्वारा चन्द्रापीड को राज्य की शासन–व्यवस्था में आने वाली अनेक कठिनाइयों से अवगत कराया गया हैं। राजाओं को चापलूस मन्त्रियों से हमेशा स्वयं को बचाये रखने का उपदेश दिया गया है। चापलूस मन्त्रियों द्वारा ठगे जाते हुए राजा लोग स्वयं का ही विनाश कर लेते हैं। शुकनास द्वारा दिये गये उपदेश का तात्कालिक प्रभाव भी चन्द्रापीड पर दृष्टिगोचर होता है।

9.1 प्रस्तावना

शुकनासोपदेश के अनुसार युवावस्था के दोष, लक्ष्मी की चंचलता, राजनीति के दांवपेच, राजा के

अन्तरङ्ग धूर्त मन्त्रियों के आचार आदि विषयों का वर्णन प्रस्तुत इकाई में किया गया है। शुकनास ने चन्द्रापीड को मिथ्या माहात्म्य के गर्व से बचने तथा चापलूस मन्त्रियों द्वारा की गई झूठी प्रशंसा से स्वयं को सावधान रहने का उपदेश दिया है। शुकनास के उपदेश का चन्द्रापीड पर तात्कालिक तथा अनुकूल प्रभाव भी पड़ता है।

9.2 अपरे तु स्वार्थनिष्पादन.....स्पर्शमपि पावनमाकलयन्ति। पर्यन्त अंश का सप्रसंग हिन्दी अनुवाद।

अपरे तु स्वार्थनिष्पादनपरैर्धनपिशितग्रासगृध्रैरास्थाननलिनीबकैः द्यूतं विनोद इति, परदाराभिगमनं वैदग्ध्यमिति, मृगयां श्रम इति, पानं विलास इति, प्रमत्ततां शौर्यमिति, स्वदारपरित्यागमव्यसनितेति, गुरुवचनावधीरणमपरप्रणेयत्वमिति, अजितभृत्यतां सुखोपसेव्यत्वमिति, नृत्यगीतवाद्यवेश्याभिसक्तिं रसिकतेति, महापराधानाकर्णनं महानुभावेतेति, परिभवसहत्वं क्षमेति, स्वच्छन्दतां प्रभुत्वमिति देवावमाननं महासत्त्वतेति, बन्दिजनख्यातिं यशः इति, तरलतामुत्साह इति, अविशेषज्ञतामपक्षपा– तित्वमिति दोषानपि गुणपक्षमध्यारोपयद्भिरन्तः स्वयमपि विहसद्भिः प्रतारणकुशलैर्धूर्तैरमानुषोचित्ताभिः स्तुतिभिः प्रतार्यमाणा वित्तमदमत्त– चिता निश्चेतनतया तथैवेत्यारोपितालीकाभिमाना मर्त्यधर्माणोऽपि दिव्यांशावतीर्ण– मिव सदैवतमिवातिमानुषमात्मानमुत्प्रेक्षमाणाः प्रारब्धदिव्योचितचेष्टानुभावाः सर्वजनस्योपहास्यतामुपयान्ति। आत्मविडम्बनाञ्चानुजीविना जनेन क्रियमाणाम– भिनन्दन्ति। मनसा देवताध्यारोपणप्रतारणासम्भूत सम्भावनोपहताश्चान्तः प्रविष्टा– परभुजद्वयमिवात्सबाहुयुगलं सम्भावयन्ति। त्वगन्तरिततृतीयलोचनं स्वललालट– माशङ्कन्ते। दर्शनप्रदानमप्यनुग्रहं गणयन्ति। दृष्टिपातमप्युपकारपक्षेस्थापयन्ति। सम्भाषणमपि संविभागमध्ये कुर्वन्ति। आज्ञामपि वरप्रदानं मन्यन्ते। स्पर्शमपि पावनमाकलयन्ति।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यावतरण के अन्तर्गत मन्त्री शुकनास ने उन राजाओं की वस्तुस्थिति का वर्णन किया है जो धूर्तों द्वारा की गई अमानवोचित प्रशस्तियों से ठगे जाते हुए लोगों के मध्य उपहास के पात्र बनते हैं–

हिन्दी अनुवाद : दूसरे राजा लोग उन धूर्तों द्वारा जो स्वार्थसिद्ध करने में संलग्न हैं, धनरूपी मांस को खाने के लिए गृध्र (गरुड, गिद्ध) बने रहते हैं, राजदरबाररूपी पुष्करिणी में बगुले बने होते हैं, जो जुए को विनोद, परनारीगमन को चातुर्य, शिकार को व्यायाम, सुरापान को विलासिता, प्रमाद को शूरता, अपनी स्त्री के त्याग को व्यसनहीनता, गुरुजनों के वचनों की अवहेलना को स्वाधीनता, नौकरों के काबू में (वश में) न रखने को आसानी से सेवा योग्य होना, नृत्य–गीत–वाद्य–एवं वेश्याओं में अनुराग को रसिकता, बड़े–बड़े अपराधों के न सुनने को महाप्रभावशालिता अपमान सहन को क्षमा, स्वच्छन्दता को प्रभुता, देवताओं के अनादर को महाशक्तिशालिता, बन्दीजनों के द्वारा गयी प्रशंसा को यश, चपलता को उत्साह तथा बुरे–भले (अच्छे–बुरे) की विशेष जानकारी न रखने को पक्षपात हीनता – इस प्रकार दोषों को भी गुणों की श्रेणी में रखते हुए, मन में स्वयं हँसते रहते हैं।

यद्यपि इस प्रकार के राजा लोग ठगी में चतुर हैं। मिथ्या भाषण करने वाले लोगों के द्वारा की गई अमानवोचित प्रशंसाओं से ठगे जाते हुए, धन के अभिमान से अचेतन, राजा लोग स्वयं की विवेकहीनता के कारण इन धूर्तों द्वारा बताये गये दोषों को गुणों के रूप में स्वीकार करके, झूठे अभिमान से मरणधर्मा होते हुए भी स्वयं को दैवीय अंश से अवतीर्ण मानते हैं। मानो किसी देवता से अधिष्ठित अति मानव मानते हुए देवताओं के योग्य चेष्टाओं तथा शापादि प्रभावों का प्रयोग करके सभी लोगों द्वारा उपहास के पात्र बन जाते हैं। सेवकों द्वारा की जा रही स्वयं की प्रवञ्चना का भी अभिनन्दन करते हैं।

राजा लोग धूर्तों द्वारा किये गये दैवत्व के आरोप रूप प्रवंचना से उत्पन्न मिथ्याधारणा से नष्ट हुए, मन से ही अपनी दो भुजाओं को मानो अन्तःप्रविष्ट अन्य दो भुजाओं वाला मान कर स्वयं को चतुर्भुज (विष्णु)

मानने लगते हैं। अपने मस्तक की त्वचा में प्रविष्ट हुए त्रिनेत्र वाला शिव मानने लगते हैं। सेवकों को (अपने आश्रितों को) दर्शन प्रदान करना अनुकम्पा मानते हैं, किसी पर दृष्टिपात को भी उपकार की कोटि में रखते हैं, वार्तालाप करने को भी पारितोषिक देना मानते हैं। सेवकों को आज्ञा देना भी वर प्रदान करना मानते हैं। स्पर्श करने को पवित्र कर देना समझते हैं।

विशेष–

(1) "धनपिशितग्रासगृध्रैः"– यहाँ धन में मांस का आरोप किया गया है, जो धूर्तों में गिद्ध के आरोप का निमित्त है। अतः यहाँ "परस्परित रूपक" अलंकार है।

(2) "आस्थाननलिनीबकैः" – यहाँ पर आस्थान मण्डप में नलिनी (पुष्करिणी) का आरोप तथा धूर्तों में बगुले के आरोप का निमित्त होने से "परस्परित रूपक" अलंकार है।

(3) मृगया श्रम इति – ऐसा वर्णन कालिदास रचित "अभिज्ञानशाकुन्तलम्" के द्वितीय अंक में भी मिलता है।

"मिथ्यैव व्यसनं वदन्ति मृगयामीदृग् विनोद कुतः।"

(4) "दिव्यांशावतीर्णमिव" – में "क्रियोत्प्रक्षा" अलंकार है।

(5) "सदैवतमिव" में "गुणोत्प्रेक्षा" अलंकार है। प्रस्तुत अंश में "इव" का प्रयोग "उत्प्रेक्षा" अर्थ में हुआ है "उपमा" अर्थ में नहीं।

9.2.1 व्याकरणात्मक टिप्पणी–

1.	स्वार्थनिष्पादनपरैः	– स्वस्य अर्थः स्वार्थः तस्य निष्पादनम् स्वार्थनिष्पादनं तस्मिन् परैः।
2.	धनपिशितग्रासगृध्रैः	– धनम् एव पिशितम् धनपिशितम् तस्य ग्रासः धनपिशितग्रासः तस्मिन् गृध्रैः।
3.	आस्थाननलिनी बकैः	– आस्थानम् एव नलिनी तस्या बकैः।
4.	मृगयाम्	– मृग + णिक् + श + यक् + टाप्। मृग्यन्ते पशवः यस्याम्।
5.	प्रमत्तताम्	– प्र + मद् + क्त + तल + टाप्। प्रमत्तस्य भावः प्रमत्तता ताम्।
6.	अव्यसनिता	– व्यसनम् अस्यास्तीति व्यसनी तस्य भावः व्यसनिता तेन व्यसनिता अव्यसनिता।
7.	अपरप्रणेयत्वम्	– परेण प्रणेयः परप्रणेयः तस्य भावः प्रणेयत्वम् न पणेयत्वम् अपरप्रणेयत्वम्।
8.	अजितभृत्यताम्	– जिताः भृत्याः येन स जितभृत्यः तस्य भावः जितभृत्यता न जितभृत्यता अजितभृत्यता ताम्
9.	नृत्यगीतवाद्यवेश्याभिसक्तिम्	– नृत्यं च गीतं च वाद्यं च वेश्याश्च नृत्यगीतवाद्यवेश्याः तासु अभिसक्तिम्।
10.	रसिकता	– रसः अस्यास्ति ग्राह्यत्वेन इति रसिकः तस्य भावः।
11.	महापराधानकर्णनम्	– महान्तश्च ते अपराधाः महापराधाः तेषाम्

अनाकर्णनम् न आकर्णनम्।

12. आकर्णनम् – आ + कर्ण् + णिच् + ल्युट्।

13. स्वच्छन्दताम् – स्वः छन्दः यस्य सः स्वच्छन्दः तस्य भावः स्वच्छन्दता ताम्।

14. महासत्त्वता – महत् सत्त्वं यस्य सः महासत्त्वः तस्य भावः।

15. बन्दिजनख्यातिम् – बन्दिनश्च ते जनाः बन्दिजनाः तेषाम् ख्यातिम्

16. अविशेषज्ञताम् – जानातीति ज्ञ विशेषेण जानाति विशेषज्ञः तस्य भावः विशेषज्ञता, न विशेषज्ञता अविशेषज्ञता ताम्।

17. अध्यारोपयद्भिः – अधि + आ + रुह् + णिक् + शतृ।

18. प्रतारणकुशलैः – कुशान् लान्तीति कुशलाः प्रतारणे, कुशलाः प्रतारण कुशलाः तैः।

19. प्रतार्यमाणाः – प्र + तृ + णिच् + यक् + शानच्।

20. वित्तमदमत्तचित्ताः – वित्तस्य मदः वित्तमदः तेन मत्तं चित्तं येषां ते।

21. निश्चेतनतया – निष्क्रान्तः चेतनायाः निश्चेतनः तस्य भावः निश्चेतनता तया।

22. मर्त्यधर्माणः – मर्तम् अर्हन्ति मर्त्या, मर्त्या धर्मा येषां ते मर्त्यधर्माणः।

23. दिव्यांशवतीर्णम् इव – दिवम् अर्हन्ति दिव्याः, दिव्यश्च ते अंशा दिव्यांशः तैः अवतीर्णम् इव।

24. अतिमानुषम् – मानुषम् अतिक्रान्तः अतिमानुषः तम्।

25. उत्प्रेक्षमाणाः – उत् + प्र + ईक्ष् + शानच्।

26. प्रारब्धदिव्योचितचेष्टानुभावाः – प्रकर्षेण आरब्धः प्रारब्धः, दिव्यानाम् उचिताः दिव्योचितः, प्रारब्धा दिव्योचिता चेष्टा अनुभावाश्च यैः ते।

27. उपहास्यताम् – उपहसितुं योग्यः उपहास्यः तस्य भावः उपहास्यता ताम्।

28. क्रियमाणम् – कृ + यक् + शानच्।

29. देवताध्यारोपणप्रतारणसम्भूतसम्भावनोपहताः – देवस्य भावः देवता, तस्य अध्यारोपणम् तद् एव प्रतारणा देवताध्यारोपण प्रतारणा तथा सम्भूता सम्भावना देवताध्यारोपणप्रतारणा–सम्भूतसम्भावना तया उपहताः।

30. अध्यारोपणम् – अधि + आ + रुह् + णिच् + ल्युट्।

31. प्रतारणा – प्र + तृ + णिच् + युच् + टाप्।

32.	सम्भूता	– सम् + भू + क्त + युच् + टाप्।
33.	सम्भावना	– सम् + भू + णिच् + युच् + टाप्।
34.	उपहताः	– उप + न् + क्त।
35.	अन्तःप्रविष्टापरभुजद्वयम् इव	– द्वौ अवयवौ तस्या तत् द्वयम् भुजयोः द्वयम् भुजद्वयम्, अन्तप्रविष्टम् अपरम् भुजद्वयम् यस्य तत इव।
36.	त्वगन्तरिततृतीयलोचनम्	– त्वचा अन्तरितं तृतीय लोचनं अस्मिन् तत्।
37.	पावनम्	– पू + णिच् + ल्युट्।

9.3 मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराश्च.....भ्रातर उच्छेद्याः। पर्यन्त अंश का सप्रसंग हिन्दी अनुवाद।

मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराश्च न प्रणमन्ति देवताभ्यः, न पूजयन्ति द्विजातीन, न मानयन्ति मान्यान्, नार्चयन्त्यर्चनीयान्, नाभिवादयन्त्यभिवादनार्हान्, नाभ्युत्तिष्ठन्ति गुरुन् अनर्थकायासान्तरितविषयोप– भोगसुखमित्युपहसन्ति विद्वज्जनम् जरावैक्लव्यप्रलपितमिति पश्यन्ति वृद्धजनोपदेशम् आत्मप्रज्ञापरिभव इत्यसूयन्ति सचिवोपदेशाय। कुप्यन्ति हितवादिने। सर्वथा तमभिनन्दन्ति, तमालपन्ति तं पार्श्वेकुर्वन्ति तं संवर्धयन्ति, तेन सह सुखमवतिष्ठन्ते, तस्मै ददति तं मित्रतामुपजनयन्तिः तस्य वचनं श्रृण्वन्ति, तत्र वर्षन्ति, तं बहु मन्यन्ते, तमाप्ततामापादयन्ि योऽहर्निशमनवरतमुपरचिताञ्जलिरधिदैवतमिव विगतान्य– कर्त्तव्यः स्तौति, यो वा माहात्म्यमुद्भावयति। किं वा तेषां साम्प्रतं येषामतिनृशंसप्रायोपदेशनिर्घृणं कौटिल्यशास्त्रं प्रमाणम्, अभिचारक्रियाः क्रूरैकप्र.– तयः पुरोधसो गुरवः, पराभिसन्धानपरा मन्त्रिण उपदेष्टारः, नरपतिसहस्रभुक्तोज्झितायां लक्ष्म्यामासक्तिः, मारणात्मकेषु शास्त्रष्वभियोगः सहजप्रेमार्द्रहृदयानुरक्ता भ्रातर उच्छेद्याः।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में शुकनास ने लक्ष्मीवान् राजाओं का वर्णन किया है जो लक्ष्मी के चक्र में तथा अपने दरबार में स्थित धूर्तों के अधीन होकर स्वेच्छा से कार्य करते हैं और देवता, गुरु, ब्राह्मण आदि का मान नहीं करते हैं।

हिन्दी अनुवाद – मिथ्या माहात्म्य के अभिमान से परिपूर्ण होकर वे राजा लोग देवताओं को प्रसन्न करने के लिए उनको प्रणाम नहीं करते, ब्राह्मणों की पूजा नहीं करते, माननीय जनों का मान नहीं करते। पूजनीय आचार्यों की पूजा नहीं करते, अभिवादन के योग्य व्यक्तियों का भी अभिवादन नहीं करते। गुरुजनों के सम्मान में अपने सिंहासन से नहीं उठते। शास्त्रीय कर्मों में व्यर्थ परिश्रम करके इन्होंने विषयोपभोग का सुख खो दिया है। इस प्रकार से सोचते हुए विद्वान् लोगों का उपहास करते हैं। वृद्धजनों के उपदेश को वृद्धावस्था की विकलता से की गई व्यर्थ की बकवास के रूप में मानते हैं। मन्त्रियों के परामर्श को स्वयं की बुद्धि का अपमान है ऐसा मानकर उनसे द्वेष करते हैं। हितकारी बात कहने वाले (हितैषी) सत्पुरुषों पर क्रोध करते हैं।

मिथ्या प्रशंसा करने वाले व्यक्तियों के साथ राजाओं का व्यवहार निम्न प्रकार होता है – राजा लोग मिथ्या प्रशंसा करने वालों का अभिनन्दन करते हैं, उनसे सत्भाषण करते हैं, उन्हें हमेशा स्वयं के साथ रखते हैं, उन्हें उन्नति प्रदान करते हैं, उनके साथ सुखपूर्वक व्यवहार करते हैं। उन्हें दान देते हैं, उन्हें अपना धनिष्ठ मित्र मानते हैं, उनकी सभी बातों को स्वीकार करते हैं, उनको धनादि प्रदान करते हैं। उन्हें सम्मान प्रदान करते हैं, उन्हें अपना सर्वश्रेष्ठ विश्वासपात्र मानते हैं – जो दिन–रात निरन्तर करबद्ध रूप से अन्य कर्त्तव्यों को त्यागकर देवता के समान उन राजाओं की स्तुति करते हैं अथवा उन राजाओं के

माहात्म्य को प्रकट करते हैं।

अथवा ऐसे राजाओं का कौनसा कार्य न्यायोचित हो सकता है अर्थात् कोई भी नहीं क्योंकि जिनके लिए अतिनिष्ठुरता से परिपूर्ण उपदेशों वाला कूटनीतिज्ञ कौटिल्य का "अर्थशास्त्र" प्रमाण है। जिनके आचार्य एवं गुरु एकमात्र क्रूरस्वभाव वाले मारण–उच्चाटन आदि अभिचार क्रिया करने में पारंगत हैं, दूसरों के साथ छल करने में प्रवीण मन्त्री जिनके उपदेशक हैं, अनेक राजाओं द्वारा भोगने के पश्चात् जिसका परित्याग किया गया है ऐसी दुराचारिणी लक्ष्मी में जिसका अनुराग है। युद्ध एवं शत्रु विनाशादि शास्त्रों में जिनकी अभिरुचि है, और स्वाभाविक प्रेम से आर्द्र (परिपूर्ण) हृदय वाले अनुरागी अग्रजानुज जिनके लिए मार्ग से हटा देने योग्य है। अतः राजाओं का सम्पूर्ण व्यवहार ही अन्याययुक्त है।

विशेष –

1. ऐसे अभिमानी राजा देवता, गुरु, माता–पिता एवं ब्राह्मणादि पूजनीय व्यक्तियों का सम्मान नहीं करते। इसके विपरीत धर्मशास्त्र (मनुस्मृति) में कहा गया है –

   "अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
   चत्वारो तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्।।"

2. "देवताभ्य" – क्रिया के निमित्त क्रिया होने पर तुमुन् प्रत्ययान्त के कर्म में चतुर्थी विभक्ति "क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः" सूत्र में।

3. "असूयन्ति सचिवोपदेशाय" – क्रूध्–द्रुह–ईर्ष्या एवं असूय इत्यादि शब्दार्थ धातु के योग में जिसके प्रति क्रोधादि किया जाता है उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है। यहाँ असूयः अर्थ वाली धातु के योग में सचिवोपदेशाय' में चतुर्थी विभक्ति "क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः" सूत्र से हुई है।

4. कुप्यन्ति हितवादिने – "क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः" सूत्र से क्रुध् अर्थ वाली धातु के योग में 'हितवादिने' में चतुर्थी विभक्ति हुई है।

5. तेन सह – "सहयुक्तेऽप्रधाने" सूत्र से सह के योग में 'तेन' पद में तृतीया विभक्ति हुई है।

6. मित्रतामुपजनयन्ति – दुह्–याच्–पच् ..... अकर्मक धातु के योग में मित्रता शब्द में गौण कर्म होने से द्वितीया विभक्ति हुई है। अकथितं च सूत्र से।

9.3.1 व्याकरणात्मक टिप्पणी–

1.	मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराः	–	महांश्चासौ आत्मा महात्मा तस्य भावः माहात्म्यम्, मिथ्या च तत् माहात्म्य मिथ्यामाहात्म्यम्, तस्य गर्वेण निर्भराः।
2.	मान्यान्	–	मानम् अर्हन्तीति मान्याः तान्।
3.	अभिवादनार्हात्	–	अभिवादन् अर्हन्ति अभिवादनार्हाः तान्।
4.	अभ्युत्तिष्ठन्ति	–	अभि + उत् + स्था + लट्।
5.	अनर्थकायासान्तरितविषयोपभोगसुखम्	–	अविद्यमानः अर्थः सः अनर्थः सः एव अनर्थकः, सः चासौ आयासः अनर्थकायासः, विषयाणाम् उपभोगविषयोपभोगः तस्य सुखम्, विषयोपभोग सुखम् अनर्थकायासेन अन्तरित विषयोपभोगसुख येन तम्।

6.	जरावैक्लव्यप्रलपितम्	– जरायाः वैक्लव्यम् जरावैक्लव्यम्, तेन प्रलपितम्।
7.	आत्मप्रज्ञापरिभवः	– आत्मनः प्रज्ञा आत्मप्रज्ञा तस्या, परिभवः।
8.	अवतिष्ठनन्ते	– अव + स्था + आत्मनेपद = "समवप्रविभ्यः स्थः" सूत्र से।
9.	अहर्निशम्	– अहश्च निशा च तयोः समाहारः।
10.	विगतान्यकर्त्तव्यः	– विगतम् अन्यत् कर्त्तव्यम् तस्य सः।
11.	अतिनृशंसप्रायोपदेशनिर्घृणम्	– नृन् शंसतीति नृशंसः अत्यन्तः नृशंसः अतिनृशंसः, अतिनृशंसः प्रायः यस्य सः अतिनृशंसायः सः चासौ उपदेशः अतिनृशंसप्रायोपदेशः तेन निर्घृणम्। (निष्क्रान्तं घृणायाः)
12.	अभिचारक्रियाक्रूरैकप्र.तयः	– अभिचारस्य क्रिया अभिचार क्रियाः ताभिः क्रूरा एका प्रकृति येषां ते।
13.	पुरोधसः	– पुरः दधतीति पुरोधसः = पुरस् + धा + असि।
14.	अभिसन्धाने	– अभि + सम् + धा + ल्युट्।
15.	नरपतिसहस्रभुक्तोज्झितायाम्	– नराणां पतयः नरपतयः तेषां सहस्राणि नरपतिसहस्राणि तैः भुक्ताः चासौ उज्झिता, नरपतिसहस्रभुक्तोज्झिता यस्याम्।
16.	सहजप्रेमार्द्रहृदयानुरक्ताः	– सह जायते इति सहजं च तत् प्रेम सहजप्रेम तेन आर्द्र हृदयं येषां ते सहजप्रेमार्द्रहृदयाः ते च अनुरक्ताः।
17.	उच्छेद्याः	– उत् + छिद् + ण्यत्।

9.4 तदेवं प्रायातिकुटिलकष्ट ..... स्थित्वा स्वभवनमाजगाम। पर्यन्त अंश का सप्रसंग हिन्दी अनुवाद ।

तदेवं प्रायातिकुटिलकष्टचेष्टासहस्रदारुणे राज्यतन्त्रेऽस्मिन् महामोह–कारिणि च यौवने कुमार। तथा प्रयतेथा यथा नोपहस्यसे जनैः न निन्द्यसे साधुभिः न धिक्क्रियसे गुरुभिः नोपालभ्यसे सुहृद्भिः न शोच्यसे विद्वद्भिः यथा च न प्रकाश्यसे विटैः, न प्रतार्यसेऽकुशलैः, नास्वाद्यसे भुजङ्गैः नावलुप्यसे सेवकवृकैः, न वञ्च्यसे धूर्तैः, न प्रलोभ्यसे वनिताभिः न विडम्ब्यसे लक्ष्म्या, न नर्त्यसे मदेन, नोन्मत्तीक्रियसे मदनेन, नाक्षिप्यसे विषयैः, नावकृष्यसे रागेणः। नापह्रियसे सुखेन। कामं भवान् प्रकृत्यैव धीरः पित्रा च महता प्रयत्नेन समारोपितसंस्कारः तरलहृदयमप्रतिबुद्धञ्च मदयन्ति धनानि, तथापि भवद्गुणसन्तोषो मामेवं मुखरी– कृतवान्। इदमेव च पुनः पुनरभिधीयसे – विद्वांसमपि सचेतनमपि महामत्त्वमप्यभिजातमपि धीरमपि प्रयत्नवन्तमपि पुरुषमिय दुविनीता खलीकरोती लक्ष्मीरिति। सर्वथा कल्याणैः पित्रा क्रियमाणमनुभवतु भवान्नवयौवराज्या– भिषेकमङ्गलम्। कुलक्रमागतामुद्वह पूर्वपुरुषैरूढां धुरम्। अवनमय द्विषतां शिरांसि। उन्नमय स्वबन्धुवर्गम्। अभिषेककानान्तरञ्च प्रारब्धदिग्विजय परिभ्रमन् विजितामपि तव पित्रा सप्तद्वीपभूषणां पुनर्विजयस्व वसुन्धराम्। अयञ्च ते कालः

प्रतापमारोपयितुम्। आरूढप्रतापो हि राजा त्रैलोक्यदर्शीव सिद्धादेशो भवति इत्येतावदभिधायोपशशाम्। उपशान्तवचसि शुकनासे चन्द्रापीडस्ता भिरुपदेशवाग्भिः प्रक्षालित इव, उन्मीलित इव, स्वच्छी.त इव, निर्मृष्ट इव, अभिषिक्त इव, अभिलिप्त इव, अलंकृत इव, पवित्रीकृत इव, उद्भासित इव, प्रीतहृदयो मुहूर्त स्थित्वा स्वभवनमाजगाम।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में शुकनास चन्द्रापीड को इस प्रकार की राजलक्ष्मी एवं राज्य–शासन में विषयासक्ति तथा कुसङ्गति से दूर रहने का उपदेश देते हैं। चंचल लक्ष्मी से सावधान रहते हुए युवराज पद को ग्रहण करने तथा दिग्विजय हेतु प्रस्थान करने लिए परामर्श एवं शुभकामना देते हुए कहते हैं कि–

हिन्दी अनुवाद – अतः हे राजकुमार चन्द्रापीड़! ऐसी अत्यन्त कुटिल तथा कष्टदायक हजारों चेष्टाओं के कारण भयंकर इस राज्य–शासन में तथा महा अज्ञान फैलाने वाले इस यौवन में रहते हुए ऐसा प्रयत्न करना, जिससे लोग तुम्हारा उपहास न करें, सत्पुरुष निन्दा न करें, गुरुजन अपमानित न करें, मित्र उपहास न करें, विद्वान् लोग तुम्हारे विषय में शोक न करें, जिससे कामी विट् लोग तुम्हें प्रकाश में न लावें, चालाक लोग तुम्हें ठग (धोखा) न लें, शत्रुपक्ष तुम्हें हानि न पहुचाएं, सेवक रूपी चालाक भेड़िये तुम्हारे अधिकारों का अतिक्रमण न कर लें, धूर्त छल नहीं कर पायें, स्त्रियाँ अपने वश में न कर लें, लक्ष्मी धोखा न दे, मद नचा न दे, काम उन्मत्त न बना दे, विषयासक्त न हो जाये, राग–द्वेष वश में न कर लें और सुख तुम्हें पथ भ्रष्ट न कर दे। यद्यपि आप स्वभाव से धैर्यशाली हैं और आपके पिताजी ने बड़े प्रयत्न से अच्छे संस्कार दिये हैं। जिस प्रकार धन चंचल–हृदय और नासमझ को मतवाला बनाया करते हैं, तो आपके गुणों से उत्पन्न सन्तोष ने मुझे इस प्रकार वाचाल बनाया है और तुमसे फिर यही बार–बार कहता हूँ कि यह उद्दण्ड लक्ष्मी विद्वान् पुरुष को भी, समझदार को भी, महाबलशाली को भी, श्रेष्ठकुल में उत्पन्न को भी, धैर्यशाली को भी और प्रयत्नशील पुरुष को भी खल (दुष्ट) बना देती हैं। आप अपने पिता द्वारा किये जा रहे युवराज पद पर अभिषेकरूपी मङ्गल का अनेक मङ्गलों के साथ सभी प्रकार से उपभोग कीजिये। कुलपरम्परा से प्राप्त तथा पूर्वजों द्वारा वहन किये गये राज्यभार को संभालिये। शत्रुओं को पराजित करके उनका सिर नीचा कीजिये। अपने बन्धुजनों का उद्धार कीजिये। अभिषेक के पश्चात् दिग्विजय प्रारम्भ करके भ्रमण करते हुए अपने पिता द्वारा जीती हुई भी सप्तद्वीपा आभूषणों वाली पृथ्वी को पुनः जीतिये। यह तुम्हारा (आपका) प्रताप स्थापित करने का समय है। वास्तव में प्रताप को स्थापित करने वाला राजा तीनों लोकों के द्रष्टा योगी की भाँति सफल आज्ञाओं वाला हो जाता है। बस इतना कहकर शुकनास मन्त्री चुप हो गये। शुकनास के उपदेश को सुनने के पश्चात् चन्द्रापीड प्राप्त किये हुए उपदेश के वचनों से मानो धोया हुआ, मानो प्रफुल्लित हुआ (खिला हुआ), मानो स्वच्छ किया गया, मानो प्रकाशित किया गया, मानो स्नान कराया गया, मानो लेपादि कराया गया, मानो अलंकृत किया गया, मानो पवित्र किया गया, मानो देदीप्यमान हुआ, प्रसन्न हृदय वाला होता हुआ, कुछ समय तक रुककर (ठहरकर) अपने महल में प्रविष्ट हो गया।

विशेष–

(1) "नोपहस्यसे जनैः ..... नापह्नियसे सुखेनं" तक सभी वाक्य कर्मवाच्य हैं; अतः यहाँ कर्त्ता में तृतीया तथा कर्म के अनुसार क्रिया में एकवचन का प्रयोग हुआ है।

(2) "विद्वासमपि ..... प्रयत्नवन्तमपि" पर्यन्त अंश में पुरुष के विशेषण का वर्णन है। अतः "पुरुषम्" का सम्बन्ध प्रत्येक से रहेगा।

(3) यहाँ "कुलक्रमागताम्" वाक्य से पूर्व वाक्यों में चन्द्रापीड को 'भवान्' पद से निर्दिष्ट किया है, जबकि इस वाक्य के पश्चात् के वाक्यों में क्रियाएँ "मध्यम पुरुष" की हैं – अतः यहाँ क्रमभङ्ग दोष है।

(4) शुकनास ने चन्द्रापीड को बुद्धिपूर्वक ऐसे कार्य करने की प्रेरणा दी है जिससे कि वह किसी के

लिए भी उपहास का पात्र न बन सके एवं कुल परम्परा का सम्यक् निर्वाह कर सकें। लक्ष्मी के स्वभाव

(5) विजयस्व – वि उपसर्ग पूर्वक जि धातु से यहाँ आत्मनेपद का प्रयोग हुआ है – "विपराभ्यां जेः" सूत्र से।

9.4.1 व्याकरणात्मक टिप्पणी –

1.	एवं प्रायातिकुटिलकष्टचेष्टासहस्रदारुणे	–	एवं प्रायः यस्य तत् एव प्रायम् अतिशयेन कुटिलम् अति कुटिलम् चेष्टानां सहस्रम्, चेष्टासहस्रम् एव प्रायः कुटिलं कष्टं च तत् चेष्टासहस्रम् एवं प्रायातिकुटिलकष्टचेष्टा–सहस्रम् तेन दारुणे।
2.	महामोहकारिणि	–	महांश्चासौ मोहः महामोहः तं करोतीति महामोहकारि तस्मिन्।
3.	सेवकवृकैः	–	सेवका वृकाः इव सेवकवृकाः तैः।
4.	समारोपितसंस्कार	–	समारोपिताः संस्कारा यस्मिन् सः।
5.	समारोपित	–	सम् + आ + रुह् + णिच् + क्त।
6.	मुखरी.तवान्	–	अमुखरं मुखरं कृतवान् इति मुखरीकृतवान्। मुखर + च्वि + कृ + क्त + क्तवत्।
7.	महासत्त्वम् अपि	–	महत् सत्त्वं यस्य तम् अपि।
8.	प्रयत्नवन्तं पुरुषम् अपि	–	प्रयत्नः अस्यास्तीति तम् पुरुषम् अपि।
9.	नवयौवराज्याभिषेकमङ्गलम्	–	युवा चासौ राजा युवराज–तस्य कर्म यौवराज्यम् नव च तद् यौवराज्यम् नवयौवराज्यम् तस्मिन् अभिषेकः नवयौवराज्याभिषेकः सः एव मङ्गलम् तत्।
10.	कुलक्रमागताम्	–	कुलस्य क्रमः कुलक्रमः तस्माद् आगताम्।
11.	पूर्वपुरुषैः	–	पूर्वे च ते पुरुषाः पूर्वपुरुषाः तैः।
12.	ऊढाम्	–	वह् + क्त + टाप्।
13.	अभिषेकानान्तरम्	–	अभिद्यमानम् अनन्तरं यत्र तद् अनन्तरम् अभिषेकस्य अनन्तरम्।
14.	प्रारब्धदिग्विजयः	–	दिशां विजयः दिग्विजयः प्रारब्धः दिग्विजयः येन सः।
15.	सप्तद्वीपभूषणाम्	–	सप्त च ते द्वीपाः सप्तद्वीपाः ते एव भूषणानि यस्याः ताम्।
16.	आरोपयितुम्	–	आ + रूह् + णिच् + तुमुन्।
17.	त्रैलोक्यदर्शी इव	–	त्रयाणां लोकानां समाहारः त्रिलोकी सः एव त्रैलोक्यम्। त्रैलोक्यं पश्यतीति त्रैलोक्यदर्शी सः इव।

18. अभिधाय — अभि + धा + क्त्वा + ल्यप्।

9.5 राजाओं का चरित्र–चित्रण–

महाकवि गद्यकार बाणभट्ट ने अपनी उत्कृष्ट रचना "कादम्बरी" के "शुकनासोपदेश" में शुकनास के माध्यम से राजलक्ष्मी एवं चापलूसों के वश में हुए राजाओं की स्थिति का वर्णन किया है। उन राजाओं का व्यवहार निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर वर्णित किया जा सकता है–

1. **विह्वलता** : दुराचारिणी राजलक्ष्मी के द्वारा भाग्यवश अपनाये हुए राजा लोग विह्वलता को प्राप्त कर लेते हैं। उनको राजलक्ष्मी अपने मद में आवृत कर लेती है तथा अनेक दुराचारों से युक्त बना देती है। (तथाहि अभिषेकसमय ..... परामृश्यते यशः)

2. **घमण्डी (अभिमानी)** : राजा लोग लक्ष्मी के वश में आकर अभिमानी हो जाते हैं, राज्य के धूर्त मन्त्रियों द्वारा की गई प्रशंसा से उनमें घमण्ड या अभिमान आ जाता है। अपने जन्म की बात को भूल जाते हैं तथा विषयासक्त होकर अनेक कष्टों को प्राप्त करते हैं। (मनस्विनजनगर्हिताभिः ..... विह्वलतामुपयान्ति।)

3. **पापी** : अपने अनुचित आचरण के कारण राजा लोग अनेक पापों के भागीदार हो जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो वे क्रूर ग्रहों द्वारा घेर लिये जाते हैं तथा उनका शरीर भी पापों के कारण अत्यधिक मोटा हो जाता है। (ग्रहैरिव ..... सञ्चार्यन्ते)

4. **असत्यवादी** : राजा लोग निरन्तर असत्यभाषण करते हैं। वे अपने स्वार्थसिद्धि के लिए असत्य वचनों का प्रयोग करते हैं जिससे ऐसा प्रतीत होता है मानो वे अनेक मुखरोगों से ग्रसित हो गये हैं। मरणासन्न लोगों की भाँति वे सगे–सम्बन्धियों को नहीं पहचानते हैं। (मृषायादविषविपाक ..... न प्रतिबुध्यन्ते।)

5. **लालची** : राजा लोग दुराचारिणी लक्ष्मी के वंश में होकर लालची हो जाते हैं तथा प्रत्येक वस्तु को सोने की बनी हुई मानते हैं। वे उच्च कुलों को दण्डनीति के प्रयोग द्वारा धनप्राप्ति के लालच से नष्ट कर देते हैं। (तृष्णाविषमूर्च्छिताः.....क्षुद्राधिष्ठितभवनाः)

6. **अशान्ति उत्पन्न करने वाले** : राजालोग मृतक के ढोल की भाँति सुने जाने मात्र से भी उद्विग्न कर देते हैं। महापाप को करने के निश्चय की भाँति ये राजालोग विचार में लाये जाने मात्र से अशान्ति पैदा कर देते हैं। प्रतिदिन उनकी देह फूलती रहती है मानों वे पाप से भरे जा रहे हों और उस अवस्था में सैंकड़ों बुरी आदतों में आसक्त ये राजा लोग अपने पतन को भी नही जानते। (श्रूयमाणा.....नावगच्छन्ति)

7. **विवेकहीन** : कतिपय राजा लोग धूर्तों द्वारा की गई देवताओं के समान प्रशंसा से ठगे जाते हुए तथा धन के नशे में विवेकहीनता के कारण मिथ्या, अभियान से युक्त होकर मरणधर्मा होते हुए भी मानो स्वयं को देवताओं का अवतार समझते हैं और अतिमानव मानते हुए दिव्य चेष्टाओं को करते तथा सभी लोगों की उपहास का पात्र बनते हैं। ये लोग मन से अपनी दो भुजाओं को मानो भीतर छिपी हुई अन्य दो भुजाओं वाला समझते लगते हैं अर्थात् स्वयं को विष्णु (चतुर्भुज) मानते हैं, अपने ललाट में छिपे हुए नेत्र से युक्त होकर स्वयं को त्रिनेत्रधारी (शिव) मानते हैं। ("मनसा ..... आशङ्कन्ते")

8. **नास्तिक** : राजा लोग व्यर्थ के बड़प्पन के गर्व से भरे हुए देवताओं को प्रणाम नहीं करते, ब्राह्मणों को पूजा नही करते हैं। अभिवादन के योग्य लोगों का अभिनन्दन नही करते। गुरुजनों को देखकर सम्मान करने के लिए नहीं उठते, विद्वान् लोगों का उपहास करते हैं। वृद्धजनों के आदेश को व्यर्थ का प्रलाप समझते हैं। मन्त्रियों के परामर्श को ईर्ष्या की दृष्टि से देखते हैं और

हितकारी बात कहने वाले पर क्रोध करते हैं। ("मिथ्यामाहात्म्य ..... हितवादिने")

9. **चापलूसों के प्रेमी** : राजा लोग उस व्यक्ति का अभिनन्दन करते हैं, उसको बढ़ावा देते हैं, उसके साथ बैठते हैं, उसे अपना घनिष्ठ मित्र मानते हैं जो दिन–रात निरन्तर हाथ जोड़कर अन्य कर्त्तव्यों को छोड़कर देवताओं की भाँति उनकी स्तुति करता है अथवा उसकी महिमा प्रकट करता है। ("सर्वथा तमभिनन्दन्ति ..... माहात्म्यमुद्भावयति")

9.6 सारांश –

गद्यकारशिरोमणि बाणभट्ट ने अपनी रचनाओं में स्थान–स्थान पर मानव जीवन को सन्मार्ग की दिशा की ओर प्रेरित करने वाले सारगर्भित उपदेशों का समावेश किया है। बाणभट्ट के उपदेश सारगर्भिता, काव्यत्मकता, उपयोगिता एवं ओजस्विता आदि गुणों से अपने अनुपम वैशिष्ट्य के लिए प्रख्यात है। इस "शुकनासोपदेश" में कविवर बाण ने शुकनास द्वारा चन्द्रापीड के माध्यम से अभिनव यौवन तथा ऐश्वर्य मद के कारण होने वाले उच्छृंखलता, निरंकुशता तथा शास्त्र और लोक की मर्यादाओं का उल्लंघन आदि स्वाभाविक दोषों का यथार्थ चित्रण कर वस्तुतः एक सार्वभौम तथ्य का प्रतिपादन किया है तथा दोषों के वश में न होकर श्रेष्ठ गुरुजनों द्वारा निर्दिष्ट सन्मार्ग पर चलकर जीवन को सार्थक बनाने की प्रेरणा प्रदान की है।

गद्यकार बाणभट्ट ने शुकनासोपदेश के माध्यम से एक महत्त्वपूर्ण संकेत यह भी प्रदान किया है कि केवल शास्त्रों के अध्ययन मात्र से ही किसी मनुष्य में जीवन को सफल बनाने वाली विशेष बुद्धि उत्पन्न नहीं होती। शास्त्र–ज्ञान के साथ–साथ व्यावहारिक ज्ञान व तदनुरूप आचरण भी परमावश्यक है। इसके लिए गुरु का उपदेश एक ऐसा प्रकाशस्तम्भ है, जिसकी प्रकाशमान ज्योति के द्वारा मानव का जीवन–पथ सदैव प्रकाशित रहता है तथा वह पथभ्रष्ट होने से बचा रहता है। "इस प्रकार शुकनास का यह उपदेश प्रत्येक उस युवक के प्रति दीक्षान्त भाषण के रूप में है जो ब्रह्मचर्याश्रम में सैद्धान्तिक ज्ञान उपार्जित करने के अनन्तर गृहस्थाश्रम में प्रवेश के लिये तत्पर है।"

(1) **युवावस्था और अनर्थ–परम्परा** : शुकनास ने उपदेश के प्रारम्भ में युवराज को बताया है कि यौवन में स्वभावतः एक ऐसा अन्धकार उत्पन्न होता है, जो न सूर्य के तेज प्रकाश से हटता है, न रत्नों के आलोक व प्रदीपों की प्रभा से दूर होता है। मानवबुद्धि युवस्था के आगमन पर शास्त्ररूपी जल के प्रक्षालन से निर्मल होने पर भी प्रायः मलिन हो जाती है। युवकों की दृष्टि इस अवस्था में विषय–भोगों में आसक्त हो जाती है। इन्द्रियों को निरन्तर आकृष्ट करने वाली इच्छा अत्यन्त दुर्दमनीय तथा अन्त में अत्यन्त दुःखद होती है। विषयों के प्रति अत्यधिक आसक्ति मनुष्य को कुमार्ग में ले जाकर उसे नष्ट कर देती है।

(2) **धूर्तवंचना एवं राजप्रकृति** : लक्ष्मी के विषय में विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करने के पश्चात् शुकनास ऐसे राजाओं का वर्णन चन्द्रापीड के समक्ष प्रस्तुत करता है जो स्वविवेक के आधार पर निर्णय न लेकर धूर्तों एवं चापलूसों के चक्कर में फँसे रहते हैं तथा जैसा वे कहते हैं वैसा कार्य करते हुए उपहास के पात्र बनते हैं। शुकनास धूर्तों के विषय में कहता है कि ये लोग अपने स्वार्थ–साधन में तत्पर राजा के धनरूपी मांस को खाने के लिए गिद्धरूपी पक्षी की भाँति, राजसभा रूपी पुष्करिणी में बगुले बनकर बैठे रहते हैं। ये बगुला भगत तरह–तरह के व्यसनों में ही गुणों का आरोप कर आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा के ऐसे पुल बाँधते हैं कि वे स्वयं को साक्षात् विष्णु और शिव का अवतार ही समझ बैठते हैं तथा विचित्र एवं अवांछित चेष्टाएँ करने लगते हैं।

(3) **चन्द्रापीड पर उपदेश का तात्कालिक प्रभाव** : शुकनास के उपदेश देकर विरत हो जाने पर वह उन निर्मल उपदेशवचनों से मानो धुला हुआ, मानो खिला हुआ, मानो स्वच्छ किया

हुआ–सा, मानो चन्दन आदि से लिप्त–सा, पवित्र किया हुआ–सा, प्रसन्नचित्त हुआ वहाँ कुछ देर रुककर अपने महल में लौट आया अर्थात् उस उपदेश का युवराज चन्द्रापीड पर अनुकूल प्रभाव पड़ा।

सिंहावलोकन के रूप में : अन्त में चन्द्रपीड को वह संयत आचरण का परामर्श देते हुए कहता है–हे राजकुमार! इस भयंकर शासन–व्यवस्था में तथा अन्धा बना देने वाले इस यौवनकाल में आप ऐसा प्रयत्न करें जिससे लोग आपका उपहास न कर सकें। अन्ततः राजकुमार को आशीर्वाद देते हुए महामन्त्री शुकनास अनेक मंगल कामनायें करता हुए कहता है– "राज्याभिषेक के बाद अपने पिता द्वारा जीती हुई सप्तद्वीपा पृथ्वी को पुनः विजय करो, क्योंकि जो राजा प्रारम्भ से ही अपना प्रभाव जमा लेता है, उसी की आज्ञाएँ सिद्ध योगी के वचनों के समान अमोघ व अप्रतिहत होती हैं।"

कादम्बरी का यह अत्यन्त सीमित अंश भी मौलिकता, मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि, भावाभिव्यक्ति एवं लोक–शिक्षा से आद्यन्त स्वादु नारिकेलपाक ही है। यहाँ भारतीय मनीषियों द्वारा प्रतिपादित जीवनसंबंधी अनेक अमूल्य विचार–रत्नों को मनोरम एवं सरस–शैली में प्रस्तुत किया गया हैं।

9.7 शब्दावली

1.	द्यूतम्	–	जुए को।
2.	वैदग्ध्यम्	–	चतुराई।
3.	मृगया	–	शिकार खेलना (करना)।
4.	शौर्यम्	–	शूरता, वीरता।
5.	अपरप्रणेयत्वम्	–	दूसरे से प्रेरित न होना, स्वाधीनता।
6.	रसिकता	–	आनन्द लेना, रसास्वादन।
7.	परिभवसहत्वम्	–	अपमान सहन करने को।
8.	क्षमा	–	सहनशीलता
9.	प्रभुत्वम्	–	प्रभुता, स्वशक्तिप्रभाव।
10.	महासत्त्वता	–	महाशक्तिशालिता।
11.	विहसद्भिः	–	हँसते हुए।
12.	धूर्तैः	–	चालाक लोगों द्वारा
13.	स्तुतिभि	–	प्रशंसाओं से।
14.	प्रतार्यमाणाः	–	ठगे जाते हुए।
15.	निश्चेतनतया	–	विवेकहीनता के कारण।
16.	उत्प्रेक्षमाणाः	–	समझते हुए, मानते हुए।
17.	उपहास्यताम्	–	मजाक की विषमता को, हंसी की पात्रता को।
18.	अभिनन्दन्ति	–	अभिनन्दन करते है, सराहते हैं।
19.	आशङ्कन्ते	–	शङ्का करने लगते हैं।

20.	अनुग्रहम्	–	कृपा, अनुकम्पा।
21.	गणयन्ति	–	गिनते हैं।
22.	देवताभ्यः	–	देवताओं को प्रसन्न करने के लिए।
23.	मान्यान्	–	सम्मान के योग्य व्यक्तियों को
24.	अर्चनीयान्	–	पूजनीयों को।
25.	सचिवोपदेशाय	–	मन्त्रियों की सलाह से, सचिवों के सत्परामर्श से।
26.	असूयन्ति	–	द्वेष करते हैं।
27.	हितवादिने	–	हित की बात बोलने पर।
28.	कुप्यन्ति	–	क्रोध करते हैं।
29.	संवर्धयन्ति	–	बढ़ावा देते हैं, सहायता करना।
30.	अहर्निशम्	–	दिन–रात
31.	स्तौति	–	स्तुति करता है, प्रार्थना करता है।
32.	माहात्म्यम्	–	बड़प्पन को, महिमा को।
33.	उद्भावयति	–	प्रकट करता है।
34.	साम्प्रतम्	–	न्यायसंगत, उचित है।
35.	पुरोधसः	–	पुरोहित।
36.	अभियोगः	–	लगाव, अभिरुचि।
37.	उच्छेद्याः	–	उखाड़ फेकने योग्य है।
38.	राज्यतन्त्रे	–	राज्य शासन में।
39.	प्रयतेथाः	–	प्रयत्न करो, ऐसा व्यवहार करो।
40.	सृहृद्भिः	–	मित्रजनों के द्वारा।
41.	विटैः	–	वेश्यागामी बदमाश लोग।
42.	वनिताभिः	–	स्त्रियाँ।
43.	मदेन	–	घमण्ड, उन्माद।
44.	रागेन	–	प्रेमवासना।
45.	प्रकृत्या एव	–	स्वभाव से ही
46.	तरलहृदयम्	–	चंचल हृदय वाले को।
47.	दुर्विनीता	–	उद्दण्ड।
48.	पूर्वपुरुषैः	–	पूर्वजों द्वारा, पुरखों द्वारा।

49. ऊढाम् – वहन किये गये। (वह् + क्त)

50. द्विषताम् – शत्रुओं के।

51. उन्नमय – उन्नत कर, ऊँचा उठाओ।

52. अभिधाय – कहकर।

9.8 बोध–प्रश्न

1. धूर्तों के अधीनस्थ राजा लोग द्यूतक्रीड़ा (जुए) को क्या मानते हैं –

   (अ) चतुरता (ब) विनोद

   (स) विलासिता (द) व्यसनहीनता

2. राजा लोग दर्शन देने को क्या समझते हैं –

   (अ) कृपा (ब) ईनाम

   (स) वरदान (द) अहंकार

3. राजलक्ष्मी से ग्रसित राजालोग किसका अभिनन्दर करते हैं –

   (अ) गुरुजनों का (ब) माता–पिता का

   (स) देवताओं का (द) चापलूसों का

4. "धनपिशितग्रासगृध्रैः" प्रस्तुत अंश में कौनसा अलंकार है –

   (अ) श्लेष अलंकार (ब) उत्प्रेक्षा अलंकार

   (स) रूपक अलंकार (द) उपमा अलंकार

5. राज–दरबार के धूर्त किस प्रकार के होते हैं ? लिखिये।

6. मिथ्या प्रशंसा के गर्व से युक्त राजा स्वयं के बारे में क्या सोचते हैं ?

7. लक्ष्मी के वश में हुए राजा दूसरों के प्रति कैसा व्यवहार करते हैं ?

8. राजाओं द्वारा राजदरबार के धूर्तों के प्रति कैसा व्यवहार किया जाता है ?

9. महामात्य शुकनास द्वारा चन्द्रापीड को क्या परामर्श एवं शुभकामना दी गई ?

10. शुकनास के उपदेश का युवराज चन्द्रापीड पर क्या एवं कैसा प्रभाव पड़ा ?

11. निम्नलिखित गद्यांशों का सप्रसंग अनुवाद कीजिए–

   (अ) अपरे तु ..... प्रतार्यमाणाः।

   (ब) मिथ्यामाहात्म्य..... हितवादिने।

   (स) तदेवं प्रायातिकुटिल ..... नापह्नियसे सुखेन।

   (द) सर्वथा कल्याणैः ..... इत्येतावदभिधायोपशशाम्।

9.9 कतिपय उपयोगी पुस्तकें–

1. कादम्बरी (पूर्वार्द्धम्) सम्पादक – मोहनदेव पंत, मोतीलाल, बनारसीलाल, दिल्ली।

2. शुकनासोपदेशः – रामनाथ शर्मा "सुमन" शिक्षा साहित्य प्रकाशक, साहित्य भण्डार, मेरठ।

3. शुकनासोपदेशः – डॉ. विश्वनाथ शर्मा, आदर्श–प्रकाशन, जयपुर।

4. संस्कृत साहित्य का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदासंस्थान, वाराणसी।

5. संस्कृत साहित्य का इतिहास – ए.बी.कीथ, मोतीलाल, बनारसीदास, दिल्ली।

6. हर्षचरित (प्रथम उच्छवास) – चुन्नीलाल शुक्ल, साहित्य भण्डार, मेरठ।

9.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

(1) ब

(2) अ

(3) द

(4) स

(5) राजाओं के धूर्त मन्त्री स्वार्थसिद्ध करने में संलग्न रहते हैं, धनरूपी मांस को खाने के लिए गिद्ध बने रहते हैं, राजदरबार रूपी पुष्करिणी में बगुले बनकर निवास करते हैं तथा जो राजाओं को दुष्परामर्श देते हैं जैसे– जुए को विनोद, परनारी–गमन को चातुर्य, शिकार करने को व्यायाम और सुरापान को विलासिता की श्रेणी में रखते हैं। समस्त दोषों को गुणों की श्रेणी में रखकर राजाओं को उपहास का पात्र बनाकर स्वयं मन ही मन प्रसन्न होते हैं।

(6) राजा लोग धूर्तों द्वारा की गई मिथ्या प्रशंसा के गर्व से युक्त होकर स्वयं को दैवीय अंश से अवतीर्ण मानते हैं। देवता से अधिष्ठित अतिमानव मानते हुए देवताओं के योग्य चेष्टाओं तथा शापादि–प्रभावों से सम्पन्न समझते हैं। स्वयं को विष्णु (चतुर्भुज) तथा शिव (त्रिनेत्र) मानने लगते हैं।

(7) द्रष्टव्य भाग–संख्या – 9.3

(8) द्रष्टव्य भाग–संख्या – 9.3

(9) द्रष्टव्य भाग–संख्या – 9.4

(10) द्रष्टव्य भाग–संख्या – 9.4

(11) (अ) द्रष्टव्य भाग–संख्या – 9.2

(ब) द्रष्टव्य भाग–संख्या – 9.3

(स) द्रष्टव्य भाग–संख्या – 9.4

(द) द्रष्टव्य भाग–संख्या – 9.4

इकाई–10

समास–प्रकरण, अव्ययीभाव समास

अव्ययीभाव–सम्बन्धी सूत्रों की व्याख्या तथा उदाहरण, समस्त पदों की समासविग्रह प्रक्रिया का सूत्रोल्लेखपूर्वक निरूपण

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 समास का अर्थ, प्रकार, विग्रह इत्यादि

10.3 अव्ययीभाव समास

10.3.1 विभक्ति, समीप, समृद्धि, व्यृद्धि तथा अर्थाभाव अर्थ में अव्ययीभाव समास के उदाहरण तथा प्रक्रिया

10.3.2 अव्यय, असम्प्रति, शब्दप्रादुर्भाव पश्चात् तथा यथा अर्थ में अव्ययीभाव समास के उदाहरण तथा प्रक्रिया

10.3.3 आनुपूर्व्य, युगपद, सादृश्य, सम्पत्ति साकल्य तथा अन्त अर्थ में अव्ययीभाव समास के उदाहरण तथा प्रक्रिया

10.4 बोध–प्रश्न

10.5 कतिपय उपयोगी पुस्तकें

10.6 बोध–प्रश्नों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

द्वितीय वर्ष संस्कृत के द्वितीय प्रश्नपत्र के पाठ्यक्रम की इकाई 10 समास – प्रकरण से सम्बद्ध है। इसके अध्ययनोपरान्त आप जानेंगे –

(1) समास क्या है एवं समास कितने प्रकार का होता है ?

(2) समास–विग्रह से क्या तात्पर्य है ?

(3) संस्कृत भाषा का अध्ययन करते समय अर्थ का ज्ञान सम्यक रूप से कर सकेगें।

10.1 प्रस्तावना

संस्कृत भाषा विश्व की प्राचीनतम भाषा है। संस्कृत भाषा रूपी दुर्ग को हम तब तक हस्तगत नहीं कर सकते जब तक हम सन्धि एवं समास रूपी परिखाओं को पार नहीं कर लेते।

समास का लक्षण संस्कृतज्ञों ने इस प्रकार किया है–

विभक्तिर्लुप्यते यत्र तदर्थस्तु प्रतीयते।
पदानां चैकपद्यं च समासः सोऽभिधीयते।।

अर्थात् जहाँ विभक्ति का लोप हो जाता है, पर उसका अर्थ प्रतीत होता रहता है, और जहाँ अनेक पद

मिलकर एक पद रूप में परिणत हो जाते हैं उसे समास कहते है। उदाहरणार्थ राजपुरुषः का विग्रह है राज्ञः पुरुषः जब राजन् एवं पुरुष शब्दों की विभक्ति का लोप कर देगें तो शब्द होगा 'राजपुरुष' यही संक्षिप्तीकरण अथवा समसनम् 'शब्दों को पास–पास रखना' समास कहलाता है। संस्कृत में प्रमुख समास हैं अव्ययीभाव, तत्पुरुष, नञ् तत्पुरुष, कर्मधारय, द्विगु, बहुव्रीहि एवं द्वन्द्व समास।

पाणिनि संस्कृत के सर्वाधिक प्रतिष्ठित वैयाकरण हुए हैं उनके द्वारा रचित ग्रन्थ है 'अष्टाध्यायी'। यह ग्रन्थ आठ अध्यायों में विभक्त है। प्रत्येक अध्याय चार पादों में विभक्त है एवं प्रत्येक पाद में अनेक सूत्र है। प्रस्तुत इकाई में सूत्र के आगे उसकी संख्या भी अंकित है। यथा 2/4/50 इसका तात्पर्य है प्रस्तुत सूत्र पाणिनि कृत अष्टाध्यायी के द्वितीय अध्याय के चतुर्थ पाद का पचासवाँ सूत्र है।

संस्कृत भाषा के अध्ययन को सुगम बनाने एवं भाषा की गरिमा को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए समास का अध्ययन नितान्त आवश्यक है।

10.2 समास का अर्थ, प्रकार, विग्रह इत्यादि

'समसनं समासः' संक्षेपीकरण को समास कहते है। जब दो या दो से अधिक पद मिलकर एक पद हो जाते हैं तो उसे समास कहते है। समास हो जाने पर उन दो समस्यमान पदों की विभक्तियों का प्रायः लोप हो जाता है। यथा राज्ञः पुरुषः राजपुरुषः। यहाँ राज्ञः एवं पुरुष ये दो पद मिलकर राजपुरुषः यह नया पद बनाते है।

समास प्रायः पाँच प्रकार के होते हैं –

1. **केवल समास** – जो समास किसी संज्ञा से रहित होता है उसे केवल समास की संज्ञा से अभिहित किया जाता है।

2. **अव्ययीभाव समास** – प्रायः जिसमें पूर्व पद की प्रधानता होती है उसे अव्ययीभाव समास कहा जाता है। इसमें प्रायः पूर्व पद अव्यय होता है और उत्तर पद अनव्यय। समास होने पर समस्त पद अव्यय बन जाता है।

3. **तत्पुरुष समास** – प्रायः जिसमें उत्तरपद की प्रधानता होती है वहाँ तत्पुरुष समास होता है। द्वितीयान्त से लेकर सप्तम्यन्त तक जिस–जिस विभक्यन्त का उत्तर पद के साथ समास होता है वह तत्पुरुष उसी विभक्ति के नाम से अभिहित किया जाता है। यथा द्वितीया तत्पुरुष, तृतीया तत्पुरुष इत्यादि।

   कर्मधारय समास – तत्पुरुष का ही एक भेद होता है– कर्मधारय समास। जहाँ विशेषण एवं विशेष्य का समास होता है उसे कर्मधारय समास कहते है।

   द्विगु समास – यह कर्मधारय का ही एक भेद है। विशेषण एवं विशेष्य के समास में यदि विशेषण संख्यावाची हो तो उसे द्विगु समास कहते है।

4. **बहुव्रीहि समास** – प्रायः जहाँ न तो पूर्वपद की प्रधानता होती है और न ही उत्तरपद की अपितु इन पदों से सम्बद्ध किसी अन्य अर्थ की प्रधानता हो वहाँ बहुव्रीहि समास होता है। उदाहरणार्थ 'लम्बोदरः' 'लम्बं उदरं यस्य सः' यहाँ न तो लम्ब की ओर न ही उदरं की प्रधानता है वरन् अन्य पदार्थ 'गणेश' की प्रधानता है।

5. **द्वन्द्व समास** – 'च' के अर्थ में द्वन्द्व समास का विधान किया जाता है। इसमें दोनों ;या दो से अधिक सबद्ध पदों के अर्थों की प्रायः प्रधानता होती है।

समास – विग्रह

1. **लौकिक विग्रह** – जिसका लोक में प्रयोग किया जाता है जैसे 'राजपुरुषः' का 'राज्ञः पुरुषः'।

2. **अलौकिक विग्रह** – जिसका लोक में प्रयोग नहीं किया जाता है। जैसे राजपुरुषः का राजन् ङस् पुरुष सु।

10.3 अव्ययीभाव समास

अव्ययीभावः 2/1/5

यह अधिकार सूत्र है। इसका अधिकार 'तत्पुरुषः' इस सूत्र के पूर्व तक है। इसका तात्पर्य है तत्पुरुषः (2/1/21) सूत्र के पूर्व तक जो समासविधान किया जाएगा वह अव्ययीभावसंज्ञक होगा।

अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यृद्धयर्थाभावात्ययासम्प्रतिशब्दप्रादुर्भाव पश्चाद्यथानुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसम्पत्तिसाकल्यान्तवचनेषु। 2/1/6

विभक्ति, समीप, समृद्धि (सम्पत्ति का आधिक्य), व्यृद्धि (सम्पत्ति का अभाव), अव्यय (नाश), असम्प्रति (अब युक्त न होना), शब्द–प्रादुर्भाव (शब्द की प्रकाशता), पश्चात् (पीछे), यथा (योग्यता, वीप्सा, पदार्थानविवृत्ति, एवं सादृश्य), आनुपूर्व्य (क्रमानुसार), यौगपद्य (एक साथ होना), सादृश्य (समानता), सम्पत्ति (अनुरूप) साकल्य (सम्पूर्णता) एवं अन्त (समाप्ति) इन सोलह अर्थों में से किसी भी एक अर्थ में विद्यमान अवयव का समर्थ सुबन्त के साथ नित्य समास होता है उसे अव्यवीभाव समास कहा जाता है।

(प्रायः जिस समास का विग्रह न हो या जिसके विग्रह में समास में गृहीत पदों से भिन्न पदों का (अस्वपद) प्रयोग किया जाता है उसे नित्य समास कहा जाता है।)

अव्ययीभाव समास अस्वपद विग्रह है। जब विग्रह में गृहीत पदों के अतिरिक्त शब्दों का प्रयोग किया जाता है। उसे अस्वपद कहते है। उदाहरणार्थ 'यथाशक्ति' 'शक्तिमनतिक्रम्य' यहाँ अनतिक्रम्य शब्द समस्त पद में नहीं है अतः यह अस्वपद है।

10.3.1 प्रथमा निर्दिष्टं समास उपसर्जनम् 1/2/43

समासविधायक सूत्र में प्रथमा विभक्ति से जिस पद का निर्देश किया जाता है वह उपसर्जनसंज्ञक होता है। अव्ययं विभक्ति इत्यादि समासविधायक सूत्र में 'अव्ययम्' पद प्रथमाविभक्ति से निर्दिष्ट है, अतः इस पद से बोध्य अधि आदि अवयवों की अलौकिक विग्रह में उपसर्जनसंज्ञा हो जायेगी।

उपसर्जनं पूर्वम् 2/2/0

समास में उपसर्जन संज्ञक का पहले प्रयोग किया जाएगा।

विभक्ति अर्थ में अव्ययीभाव समास

अधिहरि

हरौ इतिअधिहरि लौकिक विग्रह

हरि ङि अधि इति अलौकिक विग्रह

अव्ययं विभक्ति.....इत्यादि सूत्र से विभक्ति अर्थ में समास। 'कृत्तद्धितसमासाश्च' सूत्र से समास की प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपोधातुप्रातिपदिकयोः' सूत्र से प्रातिपदिक के अवयव सुप् का लोप।

हरि अधि

'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से अवयव अधि की उपसर्जन संज्ञा 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से उपसर्जन का पूर्व निपात।

अधि हरि

प्रथमा एकवचन में सुँ की प्राप्ति। 'अव्ययीभावश्च' सूत्र से समास की अव्यय संज्ञा। अव्ययादाप्सुपः सूत्र से अव्यय से परे सुप् का लोप करने पर रूप सिद्ध हुआ

अधिहरि

अव्ययीभावश्च 2/4/18

अव्ययीभाव समास नपुंसकलिंग में हो।

नाव्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्याः 2/4/83

अदन्त अव्ययीभाव समास से परे सुप् का लोप नहीं होता है किन्तु पंचमी को छोड़कर अन्य विभक्तियों में सुप् के स्थान पर अम् आदेश हो जाता है। उदाहरणार्थ –

अधिगोपम्

गोपि इति अधिगोपम् लौकिक विग्रह

गोपा ङि अधि इति अलौकिक विग्रह

अव्ययं विभक्ति.....इत्यादि सूत्र से विभक्ति अर्थ में अव्यय का सुबन्त के साथ नित्य समास। कृत्तद्धितसमासाश्च से समास की प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातु प्रातिपदिकयोः' से सुप् का लोप।

गोपा अधि

'अव्ययीभावश्च' से समास की नपुंसकलिंग संज्ञा। 'ह्रस्वोनपुंसके प्रातिपदिकस्य' सूत्र से नपुसंकलिंग के प्रातिपदिक को ह्रस्व हो जाएगा।

गोप अधि

'प्रथमा निर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से अधि की उपसर्जन संज्ञा एवं 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से उपसर्जन का पूर्व निपात।

अधिगोप

स्वौजसमौट्0.....इत्यादि सूत्र से प्रथमा विभक्ति एकवचन में सुँ प्रत्यय की प्राप्ति 'अव्ययीभावः' सूत्र से अव्ययसंज्ञा। 'अव्ययदाप्सुपः' सूत्र से अव्यय के प्रातिपदिक सुप् के लोप की प्राप्ति किन्तु **नाव्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्याः** सूत्र से सुप् के लोप का निषेध एवं सुँ के स्थान पर अम् आदेश।

अधिगोप अम्

अमिपूर्वः सूत्र से पूर्वरूपएकादेश करने पर रूप सिद्ध हुआ।

अधिगोपम्

समीप अर्थ में अव्ययी भाव समास

उपकृष्णम् –

कृष्णस्य समीपे इति उपकृष्णम् (लौकिक विग्रह)

कृष्ण ङस् उप इति उपकृष्णम् (अलौकिक विग्रह)

'अव्ययं विभक्ति समीप समृद्धि.....' इत्यादि सूत्र से 'समीप अर्थं में उप अव्यय का सुबन्त के

साथ नित्य समास। 'कृत्तद्धितसमासाश्च' सूत्र से समास की प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपोधातुप्रातिपदिकयोः' सूत्र से प्रातिपदिक के अव्यय सुप् का लोप।

कृष्ण उप

'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से 'उप' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनम् पूर्वम्' सूत्र से उपसर्जन का पूर्व निपात

उप कृष्ण

प्रथमा एक वचन में 'सुँ' की प्राप्ति। 'अव्ययीभावश्य' सूत्र से–अव्यय संज्ञा'। एवं 'अव्ययादाप्सुपः' सूत्र से सुप् के लोप की प्राप्ति किन्तु 'नाव्ययीभावदतोऽम् त्वपऽचम्याः' सूत्र से सुप् के लोप का निषेध एवं 'सुँ' को 'अम्' आदेश। इस प्रकार रूप बना

उपकृष्ण + अम्

'अमिपूर्वः' सूत्र से पूर्व रूप एकादेश। रूप बना

'उपकृष्णम्'

समृद्धि अर्थ में अव्ययीभाव समास

सुमद्रम्

मद्राणां समृद्धिः इति सुमद्रम् (लौकिक विग्रह)

मद्र आम् सुँ (समृद्धयर्थक सु है) (अलौकिक विग्रह)

'अव्ययं विभक्ति समीप.....' इत्यादि सूत्र से समृद्धि अर्थ में स्थित सु अव्यय का सुबन्त पद के साथ समास। कृत्तद्धितसमासाश्च सूत्र से समास की प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपौ धातु प्रातिपदिकयोः' सूत्र से प्रातिपदिक के अव्यय 'सुप्' का लोप

'मद्र सु'

'प्रथमा निर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से अव्यय 'सु' की उपसर्जन संज्ञा। एवं 'उपसर्जन पूर्वम्' सूत्र से उपसर्जन का अर्थ निपात। इस प्रकार रूप बना

सुमद्र

प्रथमा एक वचन में 'सुँ' की प्राप्ति। 'अव्ययीभावश्च' यूत्र से 'अव्यय संज्ञा' एवं 'अव्ययादाप्सुपः' सूत्र से अव्यय के 'सुप्' क लोप की प्राप्ति। 'नाव्ययीभावादतोऽम् त्वपंचम्याः' सूत्र से अव्यय के सुप् के लोप का निषेध एवं सु के स्थान पर 'अम्' आदेश

सुमद्र + अम्

'अमिपूर्वः' सूत्र से पूर्व रूप एकादेश करने पर रूप बना

'सुमद्रम्'

व्यृद्धि अर्थ में अव्ययी भाव समास

दुर्यवनम्

यवनानां व्यृद्धि इति दुर्यवनम् (लौकिक विग्रह)

यवन आम् दुर् इति दुर्यवनम् (अलौकिक विग्रह)

'अव्ययं विभक्तिसमीप.....इत्यादि' सूत्र से व्यृद्धयर्थ में 'दुर' अव्यय का सुबन्त पद से समास। समास की 'कृत्तद्धितसमासाश्च' सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातु प्रातिपदिकयोः' सूत्र से प्रातिपदिक के अव्यय सुप् का लोप

यवन दुर्

'प्रथमा निर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से दुर् की 'उपसर्जन संज्ञा' 'उपसर्जनं पूर्व' सूत्र से उपसर्जन का पूर्व निपात। इस प्रकार रूप बना

दुर् यवन

प्रथमा एकवचन में 'सुँ' की प्राप्ति। 'अव्ययीभावश्च' सूत्र से 'अव्यय संज्ञा'। 'अव्ययादाप्सुपः' सूत्र से 'सुँ' के लोप की प्राप्ति। किन्तु 'नाव्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्याः' सूत्र से 'सुँ' के लोप का निषेध एवं 'सुँ' के स्थान पर 'अम्' आदेश।

दुर्यवन + अम्

'अमिपूर्वः' सूत्र से पूर्व रूप एकादेश करने पर रूप बना

'दुर्यवनम्'

अभाव अर्थ में अव्ययीभाव समास

निर्मक्षिकम् –

मक्षिकाणाम् अभावः इतिनिर्मक्षिकम् निर्मक्षिकम् (लौकिक विग्रह)

मक्षिका आम् नि (अभावअर्थक) (अलौकिक विग्रह)

'अव्ययं विभक्ति–समीप–समृद्धि.....इत्यादि' सूत्र से अभाव अर्थ में निर् अव्यय का 'मक्षिकाणाम्' सुबन्त के साथ समास हुआ। समास की 'कृत्तद्धितसमासाश्च' सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपोधातुप्रातिपदिकयोः' सूत्र से प्रातिपदिक के अव्यय सुप् का लोप। रूप बना

मक्षिका निर्

'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से 'निर्' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से उपसर्जन का पूर्व निपात। इस प्रकार रूप बना

निर् मक्षिका

'अव्ययीभावश्च' सूत्र से नपुसंकलिंग। एवं 'ह्रस्वोनपुंसकेप्रातिपदिकस्य' सूत्र से नपुसंकलिंग में प्रातिपदिक को ह्रस्व आदेश तो रूप बना

निर्मक्षिक

प्रथमा एकवचन में सुप् की प्राप्ति।

'अव्ययीभावश्च' सूत्र से अव्ययसंज्ञा। 'अव्ययादाप्सुपः' सूत्र से अव्यय के सुप् के लोप की प्राप्ति किन्तु 'नाव्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्याः' सूत्र से 'सु' के लोप का निषेध एवं 'सु' को अम् आदेश। रूप बना

निर्मक्षिक + अम्

'अमिपूर्वः' सूत्र से पूर्व रूप एकादेश करने पर रूप बना

'निर्मक्षिकम्'

10.3.2 अत्यय अर्थ में अव्ययी भाव समास

अतिहिमम् –

हिमस्य अत्ययोऽतिहिमम् (लौकिक विग्रह)

हिम ङस् अति (अलौकिक विग्रह)

'अव्ययं विभक्ति समीप.....इत्यादि' सूत्र से विनाश अर्थ में वर्तमान 'अति' अव्यय की सुबन्त 'हिमस्य' के साथ समास। समास की 'कृत्तद्धितसमासाश्च' सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपोधातुप्रातिपदिकयोः' से प्रातिपदिक के अवयव 'सुप्' 'ङस्' का लोप।

हिम अति

'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनं' सूत्र से उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से उपसर्जन का पूर्व निपात। रूप बना

अतिहिम

प्रथमा एकवचन में 'सु' की प्राप्ति। 'अव्ययीभावश्य' सूत्र से 'अव्यय संज्ञा'। 'अव्ययादाप्सुपः' सूत्र से सुप् के लोप की प्राप्ति। किन्तु 'नाव्ययीभावादतोऽम् त्वपंचम्याः' सूत्र से सु के लोप का निषेध एवं सु को अम् अदिश

अतिहिम + अम्

'अमिपूर्वः' सूत्र से पूर्व रूप एकादेश करने पर रूप बना

'अतिहिमम्'

असम्प्रति अर्थ में

अतिनिद्रम्

निद्रा सम्प्रति न युज्यते इति अतिनिद्रम् (लौकिक विग्रह)

निद्रा सु अति (असम्प्रति बोधक) (अलौकिक विग्रह)

'अव्ययं विभक्ति समीप.....' इत्यादि सूत्र से असम्प्रति अर्थ में 'अति' अव्यय का 'निद्रम्' सुबन्त के साथ समास। 'कृत्ता[तिसमासाश्च' सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपोधातु प्रातिपदिकयोः' सूत्र से प्रातिपदिक के अव्यय सुप् 'सु' का लोप।

निद्रा अति

'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनम् पूर्वम्' सूत्र से उपसर्जन का पूर्व निपात

अतिनिद्रा

'अव्ययीभावश्च' सूत्र से नपुंसकलिंग। 'ह्रस्वोस्नपुंसके प्रातिपदिकस्य' सूत्र से नपुंसकलिंग में प्रातिपदिक को ह्रस्व आदेश।

अतिनिद्र

प्रथमा एकवचन में 'सु' की प्राप्ति। अव्ययीभावश्च सूत्र से अव्यय संज्ञा। 'अव्ययादाप्सुपः' सूत्र से अव्यय के 'सु' के लोप की प्राप्ति किन्तु 'नाव्ययीभावादतोऽम् व पंचम्याः' सूत्र से 'सु' के लोप का निषेध एवं 'अम्' आदेश

अतिनिद्र + अम्

'अमिपूर्वः' सूत्र से पूर्व रूप एकादेश करने पर रूप बना

'अतिनिद्रम्'

शब्दप्रादुर्भाव अर्थ में

इतिहरि

हरिशब्दस्य प्रकाश इतिहरि। (लौकिक)

हरि ङस् इति (अलौकिक विग्रह)

'अययंविभक्ति समीप समृद्धि.....इत्यादि' सूत्र से शब्द प्रादुर्भाव अर्थ में वर्तमान 'इति' अव्यय का सुबन्त 'हरिः' के साथ समास। 'कृत्तद्धितसमासाश्च' सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा 'सुपोधातुप्रातिपदिकयोः' सूत्र से प्रातिपदिक के 'सुप्' 'ङस्' का लोप।

हरि इति

प्रथमा एकवचन में 'सु' की प्राप्ति। 'अव्ययीभावश्च' सूत्र से अव्यय संज्ञा। 'अव्ययादाप्सुपः' सूत्र से अव्यय के 'सुप्' का लोप। रूप बना

इतिहरि

पश्चाद् अर्थ में

अनुविष्णुः

'विष्णोः पश्चादनुविष्णुः' (लौकिक विग्रह)

विष्णु ङस् अनु (अलौकिक विग्रह)

'अव्ययं विभक्ति.....इत्यादि' सूत्र से पश्चाद् अर्थ में 'अनु' अव्यय का सुबन्त 'विष्णोः' के साथ समास। 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' सूत्र से प्रातिपदिक के अव्यय सुप् 'ङस्' का लोप।

विष्णु अनु

'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से 'अनु' की उपसर्जन संज्ञा एवं 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से उपसर्जन का पूर्व निपात

'अनु विष्णु'

प्रथमा एकवचन में 'सु' की प्राप्ति। 'अव्ययीभावश्च' सूत्र से अव्यय संज्ञा। 'अव्ययादाप्सुपः' सूत्र से अव्यय के सुप् 'सु' का लोप। रूप बना

'अनुविष्णु'

यथा अर्थ में अव्ययीभाव

यथा.....इसके चार अर्थ हैं– (1) योग्यता (2) वीप्सा (3) पदार्थानतिवृत्ति (4) सादृश्य।

योग्यता अर्थ में यथा

अनुरूपम् –

रूपस्य योग्यमनुरूपम्

रूप ङस् अनु

'अव्ययविभक्ति.....इत्यादि' सूत्र से अनु अव्यय की सुबन्त रूपस्य के साथ समास। 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से समास की प्रातिपदिकसंज्ञा। 'सुपोधातुप्रातिपदिकयोः' सूत्र से प्रातिपदिक के अव्यय सुप् 'ङस्' का लोप।

रूप अनु

'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से उपसर्जन संज्ञा 'अनु' की 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से उपसर्जन का पूर्व निपात

अनु रूप

प्रथमा एकवचन में 'सु' की प्राप्ति। 'अव्ययीभावश्च' सूत्र से अव्यय संज्ञा। 'अव्ययादाप्सुपः' सूत्र से अव्यय के सुप् के लोप की प्राप्ति। किन्तु 'नाव्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्याः' सूत्र से 'सु' के लोप का निषेध एवं अम् आदेश।

अनुरूप अम्

'अमिपूर्वः' सूत्र से 'पूर्व रूप एकादेश' करने पर रूप बना।

'अनुरूपम्'

प्रत्यर्थम् –

अर्थम् अर्थम् प्रति इति प्रत्यर्थं (लौकिक विग्रह)

अर्थअम् प्रति (अलौकिक विग्रह)

'अव्ययं विभक्ति' इत्यादि सूत्र से वीप्सा अर्थ में अव्यय प्रति का सुबन्त अर्थम् के साथ समास। 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपोधातुप्रातिपदिकयोः' सूत्र से प्रातिपदिक के अव्यय सुप् 'अम्' का लोप।

अर्थ प्रति

'प्रथमानिर्दिष्टं उपसर्जनम्' सूत्र से प्रति की उपसर्जन संज्ञा एवं 'उपसर्जनम् पूर्वम्' सूत्र से उपसर्जन का पूर्व निपात।

'प्रति अर्थ'

'इकोयणचि' सूत्र से यण संधि करने पर रूप बना 'प्रत्यर्थ'।

प्रथमा एकवचन में 'सु' की प्राप्ति। एवं अव्ययी भावश्च सूत्र से अव्यय संज्ञा। 'अव्ययादाप्सुपः' सूत्र से 'सु' के लोप की प्राप्ति किन्तु 'नाव्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्याः' सूत्र से अव्यय के 'सु' के लोप का निषेध एवं 'सु' को अम् आदेश।

प्रत्यर्थ + अम्

अमिपूर्व से पूर्व रूप एकादेश करने पर रूप बना।

'प्रत्यर्थम्'

यथाशक्ति –

शक्तिं अनतिक्रम्य यथाशक्ति (लौकिक विग्रह)

शक्ति अम् यथा (अलौकिक विग्रह)

'अव्ययं विभक्ति.....' इत्यादि सूत्र से 'पदार्थानतिवृत्ति' अर्थ में यथा अव्यय का सुबन्त 'शक्तिम्' के साथ समास। 'कृत्तद्धितसमासाश्च' सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा। सुपोधातुप्रातिपदिकयोः' सूत्र से प्रातिपदिक के अव्यय सुप् का लोप।

शक्ति यथा

'प्रथमानिर्दिष्टं उपसर्जनम्' से 'यथा' अव्यय की उपसर्जन संज्ञा एवं 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से उपसर्जन का पूर्व निपात।

यथा शक्ति

प्रथमा एकवचन में 'सु' की प्राप्ति। 'अव्ययीभावश्च' सूत्र से अव्ययी भाव संज्ञा। 'अव्ययदाप्सुपः' सूत्र से अव्यय के 'सुप्' 'सु' का लोप। रूप बना।

'यथाशक्ति'

अव्ययीभावे चाकाले –

पूर्वसूत्रों की अनुवृत्ति से इस सूत्र का भावार्थ है कालवाची उत्तरपद के परे न रहते हुए अव्ययी भाव समास में 'सह' को 'स' आदेश होता है। उदाहरणार्थ–

सादृश्य अर्थ में

सहरि –

हरेः सादृश्यम् सहरि (लौकिक विग्रह)

हरि ङस् सह (अलौकिक विग्रह)

'अव्ययः विभक्ति.....इत्यादि' सूत्र से सादृश्य अर्थ में सह अव्यय का सुबन्त 'हरिः' के साथ समास। 'कृत्ति(तिसमासाश्च' सूत्र से समास की प्रातिपदिक संज्ञा 'सुपोधातुप्रातिपदिकयोः' सूत्र से प्रातिपदिक के अव्यय सुप् 'ङस्' का लोप।

हरि सह

'प्रथमानिर्दिष्टं उपसर्जनम्' सूत्र से 'सह' की उपसर्जन संज्ञा 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से उपसर्जन का पूर्व निपात।

'सह हरि'

'अव्ययीभावे चाकाले' सूत्र से 'सह' को 'स' आदेश।

'स हरि'

प्रथमा एकवचन में सु की प्राप्ति। अव्ययीभावश्च सूत्र से अव्यय संज्ञा। 'अव्ययादाप्सुपः' सूत्र से

अव्यय के सुप् का लोप। रूप बना

सहरि।

10.3.3 आनुपूर्व्य अर्थ में

अनुज्येष्ठम्

ज्येष्ठस्य आनुपूर्व्येण (लौकिक विग्रह)

ज्येष्ठ ङस् अनु (अलौकिक विग्रह)

'अव्ययं समीप.....' इत्यादि सूत्र से अव्यय अनु के साथ वर्तमान 'अनुप्येष्ठस्य' सुबन्त का समास। 'कृत्ति(तसमासाश्च' सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपोधातुप्रातिपदिकयोः' सूत्र से प्रातिपदिक के अवयव सुप् 'ङस्' का लोप।

ज्येष्ठ अनु

'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से 'अनु' की उपसर्जन संज्ञा। एवं 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से उपसर्जन का पूर्व निपात ।

अनु ज्येष्ठ

प्रथमा एक वचन में 'सु' की प्राप्ति। अव्ययीभावश्च से अव्यय संज्ञा। 'अव्ययादाप्सुपः' सूत्र से अव्यय के सुप् के लोप की प्राप्ति किन्तु 'नाव्ययी–भावादतोऽमत्वपञ्चम्याः' सूत्र से 'सु' को अम् आदेश।

अनुज्येष्ठ + अम्

'अमिपूर्वः' से पूर्वरूप एकादेश करने पर रूप बना।

'अनुज्येष्ठम्'

युगपद् अर्थ में

सचक्रम्

चक्रेण युगपद् (लौकिक)

चक्र टा सह (अलौकिक विग्रह)

'अव्ययं विभक्ति.....' सूत्र से यौगपद्य अर्थ में अव्यय सह का वर्तमान सुबन्त चक्रेण के साथ समास 'कृत्तद्धितसमासाश्च' सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा। एवं 'सुपोधातुप्रातिपदिकयोः' सूत्र से प्रातिपदिक के सुप् का लोप।

चक्र सह

'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से उपसर्जन संज्ञा 'उपसर्जनम् पूर्वम्' से उपसर्जन का पूर्व निपात।

सह चक्र

'अव्ययीभावे चाकाले' सूत्र से सह को स आदेश।

सचक्र

प्रथमा एकवचन में 'सु'। अव्ययीभावश्च से अव्यय संज्ञा 'अव्ययादाप्सुपः' सूत्र से अव्यय के सुप् के लोप की प्राप्ति। किन्तु 'नाव्ययीभावादातोऽम् त्वपञ्चम्याः' सूत्र से 'सु' के लोप की प्राप्ति एवं 'सु' को अम् आदेश।

सचक्र + अम्

अमिपूर्वः से पूर्व रूप एकादेश करने पर रूप बना।

'सचक्रम्'

सादृश्य अर्थ में अव्ययी भाव समास

ससरिव

सदृशः सख्या ससरिव (लौकिक वि.)

सरिव टा सह (अलौकिक वि.)

'अव्ययंविभक्ति.....' सूत्र से सादृश्य अर्थ में सह अव्यय के साथ सुबन्त सख्या का समास। 'कृत्त.....' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपोधातु.....' सूत्र से प्रातिपदिक के अव्यय सुप् का लोप।

सरिव सह

'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से अव्यय की उपसर्जन संज्ञा एवं 'उपसर्जनम् पूर्वम्' सूत्र से उपसर्जन का पूर्व निपात।

सह सरिव

'अव्ययीभावे चाकाले' सूत्र से सह हो स आदेश।

ससरिव

प्रथमा एकवचन में सु की 'प्राप्ति'। 'अव्ययीभावश्च' से अव्यय संज्ञा। 'अव्ययादाप्सुपः' सूत्र से सुप् का लोप रूप सिद्ध हुआ।

ससरिव

सम्पत्ति अर्थ में अव्ययी भाव समास

सक्षत्रम्

क्षत्राणां सम्पत्तिः सक्षत्रम् (लौकिक विग्रह)

क्षत्र आम् सह (अलौकिक)

'अव्ययं विभक्ति.....' सूत्र से सम्पत्ति अर्थ में अव्यय सह के साथ क्षत्राणां सुबन्त का समास। 'कृत्त.....' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपोधातु.....' से प्रातिपदिक के सुप् का लोप।

क्षत्र सह

'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से उपसर्जन संज्ञा का पूर्व निपात

सह क्षत्र

'अव्ययीभावे चाकाले' सूत्र से सह को स आदेश

सक्षत्र

प्रथमा विभक्ति एक वचन में सुँ की प्राप्ति। 'अव्ययी भावश्च' से अव्यय संज्ञा। 'अव्ययादाप्सुपः' सूत्र से अव्यय के 'सुप्' के लोप की प्राप्ति। किन्तु 'नाव्ययी.....' सूत्र से लोप की निषेध व 'अम्' आदेश। 'अमिपूर्वः' से पूर्व रूप एकादेश होने पर रूप बना।

सक्षत्रम्

साकल्य अर्थ में अव्ययी भाव समास

सतृणम्

तृणमप्यपरित्यज्य सतृणम् (लौकिक विग्रह)

तृण अम् सह (अलौकिक विग्रह)

'अव्ययं विभक्ति.....' सूत्र से साकल्य अर्थ में अव्यय सह का सुबन्त तृणम् के साथ समास। 'कृत्त.....' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपोधातु.....' से प्रातिपदिक के सुप् का लोप।

तृण सह

'प्रथमा.....' सूत्र से उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से उपसर्जन संज्ञा का पूर्व निपात

सह तृणम्

'अव्ययीभावे चाकाले' सूत्र से 'सह' को 'स' आदेश

सतृण

प्रथमा एकवचन में 'सुँ' की प्राप्ति। अव्ययीभावश्च से अव्यय संज्ञा। 'अव्ययादाप्सुपः' से सुप् के लोप की प्राप्ति। किन्तु 'नाव्ययीभाव.....' सूत्र से सु के लोप का निषेध व अम् आदेश

सतृण + अम्

अमिपूर्वः से पूर्वरूप एकादेश करने पर रूप बना

सतृणम्

अन्त अर्थ में

साग्नि

अग्नि ग्रन्थपर्यन्तम् (लौकिक विग्रह)

अग्नि अम् सह (अलौकिक)

'अव्ययं विभक्ति.....' सूत्र से अन्त अर्थ में अव्यय सह का वर्तमान सुबन्त अग्नि के साथ समास। 'कृत्त.....' सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपोधातु.....' सूत्र से सुप् का लोप।

अग्नि सह

उपसर्जन संज्ञा 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से। 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से उपसर्जन का पूर्व निपात।

सह अग्नि

'अव्ययीभाव चाकाले' सूत्र से सह का स आदेश।

स अग्नि

'अकः सवर्णे दीर्घः' सूत्र से दीर्घ सन्धि।

साग्नि

प्रथमा एक वचन में 'सु' की प्राप्ति। 'अव्ययीभावश्च' सूत्र से अव्यय संज्ञा। 'अव्ययादाप्सुपः' सूत्र से अव्यय के सुप् का लोप रूप बना।

साग्नि

नदीभिश्च 2/1/19

संख्यावाची सुबन्त, नद्यर्थक सुबन्त के साथ समास को प्राप्त होता है और वह समास अव्ययीभावसंज्ञक होता है। 'समाहारे चायमिष्यते' नियम से यह समाहार अर्थ में ही होता है।

पंचगंगम्

पञ्चानां गंगानां समाहारः (लौकिक विग्रह)

पञ्चन् आम् गंगाआम् (अलौकिक विग्रह)

संख्यावाची सुबन्त पञ्चन् का नद्यर्थक सुबन्त गंगा के साथ समास। पंचन् आम् की 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से उपसर्जन संज्ञा एवं 'उपसर्जनं पूर्वम्' से उसका पूर्व निपात।

पञ्चन् गंगा

'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' सूत्र से पञ्चन् के पदान्त नकार का लोप। कृत्तद्धित समासाश्च से समास की प्रातिपदिक संज्ञा। सुपोधातु.....से प्रातिपदिक के सुप् का लोप।

पञ्चगंगा

'अव्ययीभावश्च' सूत्र से नपुंसक लिंग। 'ह्रस्वोनपुंसकेप्रातिपदिकस्य सूत्र से प्रातिपदिक को ह्रस्व

पञ्चगंग

स्वौजसां.....सूत्र से प्रथमा विभक्ति एकवचन के अर्थ में 'सु' की प्राप्ति ।

पञ्चगंग सु

अव्ययादाप्सुपः से सुप् के लोप की प्राप्ति नाव्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्याः से सु को अम् आदेश। अमिपूर्वः से पूर्वरुप एकादेश करने पर रूप सिद्ध हुआ–

पञ्चगंगम्

अनश्च 5/4/108

यदि अव्ययीभाव समास के अन्त में 'अन्' अन्त वाला शब्द हो तो उससे परे समासान्त टच् प्रत्यय होता है।

नस्तद्धिते 6/4/144

तद्धित प्रत्यय के परे रहने पर नकारान्त भसंज्ञक की 'टि' का लोप होता है। (भ संज्ञा यचिभम् सूत्र से होती है।) उदाहरणार्थ –

उपराजम्

राज्ञः समीपम् (लौ. वि.)

राजन् ङस् उप (अलौ. वि.)

अव्ययं विभक्ति.....इत्यादि सूत्र से समीपवाची अव्यय उप का सुबन्त राजन् के साथ अव्ययीभाव समास।

प्रथमा निर्दिष्टं समास उपसर्जनं सूत्र से उप की उपसर्जन संज्ञा **उपसर्जनं पूर्वम्** सूत्र से पूर्व निपात। उपराजन्

कृत्तद्धितसमासाश्च सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा, सुपो.....से सुप् का लोप उपराजन् अवश्य सूत्र से अन्त्य अन् होने से समासान्त टच् प्रत्यय

उपराजन् टच्

'टच्' के अन्तिम चकार की हलन्त्यम् सूत्र से एवं टकार की 'चुटू' सूत्र से इत्संज्ञा व लोप

उपराजन् अ

'यचिभम्' सूत्र से उपराजन् की 'भ' संज्ञा एवं नस्तद्धिते सूत्र से 'भ' संज्ञक की 'टि' का लोप

उपराज् अ

प्रथमा एक वचन में सु की प्राप्ति। 'अव्ययीभावश्च' से अव्यय संज्ञा अव्ययादाप्सुपः से अव्यय के सुप् के लोप की प्राप्ति किन्तु नाव्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्याः से सु के लोप का निषेध व अम् आदेश।

उपराज अम्

अमिपूर्वः से पूर्वरूप एकादेश करने पर रूप सिद्ध हुआ।

उपराजम्

अध्यात्मम्

आत्मनि इति (लौ. वि.)

आत्मन् ङि अधि (अलौ. वि.)

अव्ययं विभक्ति.....सूत्र से विभक्ति अर्थ में अधि अवयव का सुबन्त के साथ अव्ययीभावसमास। 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से अधि की उपसर्जन संज्ञा एवं 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से पूर्व निपात

अधि आत्मन् ङि

'कृत्तद्धिसमासाश्च सूत्र से समास की प्रातिपदिक संज्ञा एवं **सुपोधातुप्रातिपदिकयोः'** सूत्र से सुप् का लोप

अधि आत्मन्

इकोयणचि सूत्र से यणादेश करने पर

अध्यात्मन्

अनश्च सूत्र से समासान्त टच् प्रत्यय

अध्यात्मन् टच्

टच् प्रत्यय के अन्त्य चकार की **हलत्यम्** एवं आदि टकार की **चुटू** से इत्संज्ञा व लोप

अध्यात्मन् अ

यचिमम् से 'भसंज्ञा' एवं नस्तद्धिते से भसंज्ञक की 'टि' का लोप करने पर

अध्यात्म् अ

प्रथमा एक वचन में सु की प्राप्ति

अध्यात्म सुँ

'अव्ययादाप्सुपः' से सुप् के लोप की प्राप्ति थी किन्तु **नाव्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्याः** सूत्र से सुप् के लोप का निषेध एवं सु को अम् आदेश

अध्यात्म अम्

'अमिपूर्वः' सूत्र से पूर्वरूप एकादेश करने पर रूप सिद्ध हुआ

अध्यात्मम्

10.4 बोध प्रश्न

1. निम्न शब्दों में समास का निर्धारण करते हुए सूत्र बताइये।
   (1) समुद्रम (2) अधिगोपम्
   (3) अतिहिमम् (4) इतिहरि
2. सादृश्य, साकल्य अर्थों में अव्ययीभाव समास की सिद्धि कीजिए।
3. समास का अर्थ एवं प्रकार बताइये।
4. अव्ययीभाव समास की परिभाषा उदाहरणसहित बताइये।

10.5 कतिपय उपयोगी पुस्तकें

1. लघु सिद्धान्त कौमुदी 'भैमी व्याख्या', पं. भीमसेन शर्मा (समास प्रकरण)
2. लघु सिद्धान्त कौमुदी, पं. महेश सिंह कुशवाह
3. लघु सिद्धान्त कौमुदी, पं. धरानन्द शास्त्री
4. लघु सिद्धान्त कौमुदी, डॉ. अर्कनाथ चौधरी

10.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. द्रष्टव्य भाग संख्या 10.3.1 में।
2. द्रष्टव्य भाग संख्या 10.3.3 में।
3. द्रष्टव्य भाग संख्या 10.2 में।
4. द्रष्टव्य भाग संख्या 10.3 में।

इकाई–11

तत्पुरुष समास, व्यधिकरण तत्पुरुष समास

व्यधिकरण तत्पुरुष समास–सम्बन्धी सूत्रों की व्याख्या तथा उदाहरण, समस्त पदों की समास विग्रह–प्रक्रिया का सूत्रोल्लेख पूर्वक निरूपण

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 द्वितीय तत्पुरुष समास

11.3 तृतीया तत्पुरुष समास

11.4 चतुर्थी तत्पुरुष समास

11.5 पंचमी तत्पुरुष समास

11.6 षष्ठी तत्पुरुष समास

11.7 सप्तमी तत्पुरुष समास

11.8 बोध–प्रश्न

11.9 कतिपय उपयोगी पुस्तकें

11.10 बोध–प्रश्नों के उत्तर

11.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई व्याकरण की महत्त्वपूर्ण अवधारणा समास से सम्बद्ध है। समास काव्य को पढ़ने तथा उसका अर्थ समझाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

1. तत्पुरुष समास को गहनता से समझ पायेंगे।
2. पदों के लौकिक तथा अलौकिक विग्रह से भी काव्य का अर्थसंगतिकरण सरल हो जाता है।

11.1 प्रस्तावना

तत्पुरुष समास तथ उसमें भी व्यधिकरण तत्पुरुष से यह तात्पर्य है कि पदों का जब विग्रह किया जायेगा तो दोनों पदों में पृथक्–पृथक् विभक्ति होगी। तृतीया तत्पुरुष के दो नियम हैं अतः उपसर्जन संज्ञा हेतु विशेष अनुकर्षण करना पड़ता है। पंचमी तत्पुरुष में स्तोक आदि से परे पंचमी विभक्ति का समास में भी लोप नहीं होता है।

11.2 द्वितीया तत्पुरुष समास

द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः 2/1/13

द्वितीयान्त सुबन्त श्रित, अतीत, पतित, गत, अत्यस्त, प्राप्त और आपन्न इन प्रातिपदिकों से बने सुबन्तों के साथ विकल्प से समास को प्राप्त होता है एवं उसकी तत्पुरुष संज्ञा होती है। उदाहरणार्थ–

कृष्णश्रितः

कृष्णं श्रितः (लौ. वि.)

कृष्ण अम् श्रित सु (अलौ. वि.)

द्वितीयान्त सुबन्त कृष्ण अम् का श्रित सु सुबन्त के साथ द्वितीया श्रितातीत इत्यादि सूत्र से तत्पुरुष समास।

समास विधायक सूत्र द्वितीया श्रितातीत.....इत्यादि सूत्र में द्वितीया शब्द प्रथमा में है। द्वितीया विभक्ति यहाँ कृष्ण अम् में है। अतः प्रथमा निर्दिष्टं समास उपसर्जनम् से 'कृष्ण अम्' की उपसर्जन संज्ञा व उपसर्जनं पूर्वम् से पूर्व निपात।

कृष्ण अम् श्रित सु

कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिक संज्ञा, सुपोधातु..... से प्रातिपदिक के सुप् का लोप

कृष्ण श्रित

प्रथमाविभक्ति एक वचन में सुँ प्रत्यय की प्राप्ति

कृष्णश्रित सुँ

'उपदेशेऽजनुनासिकइत्' सूत्र से सुँ में स्थित अनुनासिक 'उँ' की इत्संज्ञा व तस्यलोपः से लोप

कृष्णश्रित स्

'ससुषो रुँः' से स् को रुँत्व आदेश

कृष्णश्रित रुँ

पुनः उपदेशे.....सूत्र से उँ की इत्संज्ञा व लोप 'विरामोऽवसानम्' सूत्र से र् की अवसान संज्ञा। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' सूत्र से अवसान संज्ञक 'र्' को विसर्ग आदेश करने पर रूप सिद्ध हुआ।

कृष्णश्रितः

ध्यातव्य है उपर्युक्त पाँच सूत्र 'सुँ' को विसर्ग बनाने हेतु हैं। अतः आगे जहाँ भी प्रथमा एक वचन में सुँ को विसर्ग बनाना होगा इन्हीं सूत्रों का प्रयोग होगा।

इसी भाँति अतीत अर्थ में

आशातीतः

आशां अतीतः लौ. वि.

आशा अम् अतीत सु अलौ. वि.

पतित अर्थ में

नरकपतितः

नरकं पतितः लौ. वि.

नरक अम् पतित सु अलौ. वि.

गत अर्थ में

स्वर्गगतः

स्वर्ग गतः लौ. वि.

स्वर्ग अम् गत सु अलौ. वि.

अत्यस्त अर्थ में

कूपाऽत्यस्तः

कूपं अत्यस्तः लौ.वि.

कूप अम् अत्यस्त सु अलौ. वि.

प्राप्त अर्थ में

सुखप्राप्तः

सुखं प्राप्तः लौ. वि.

सुख अम् प्राप्त सु अलौ. वि.

आपन्न अर्थ में

संकटापन्नः

संकटं आपन्नः लौ. वि.

संकट अम् आपन्न सु अलौ. वि.

द्वितीयाश्रिता. इत्यादि सूत्र से द्वितीया तत्पुरुष समास होगा। उपसर्जन संज्ञा, पूर्व निपात, प्रातिपदिक संज्ञा, सुप् का लोप, प्रथमा विभक्ति एक वचन में सु की प्राप्ति, विसर्ग विषयक सूत्र लगाने से कृष्णश्रितः वत् अन्य शब्द आशातीतः, नरकपतितः स्वर्गगतः, कूपात्यस्तः, सुखप्राप्तः, संकटापन्नः शब्द सि(हो जायेंगें।

11.2 तृतीया तत्पुरुष समास

तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन 2/1/29

तृतीयान्त पद का तृतीया पद के अर्थ द्वारा निर्मित (उत्पन्न किए गए) गुण के वाचक पद के साथ एवं 'अर्थ' पद के साथ समास हो। उदाहरणार्थं 'शंकुलया खण्डः' इस विग्रह में तृतीयान्त शंकुलया का तत्कृतगुणवाचक सुबन्त 'खण्ड' से समास होकर 'शंकुला खण्डः' रुप बनता है।

शंकुलाखण्डः

शंकुलया खण्डः इति लौ. वि.

शंकुला टा खण्ड सु अलौ. वि.

तृतीयान्त शंकुलया का तत्कृत गुणवाचक सुबन्त 'खण्डः' से 'तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन' सूत्र से समास हुआ। समासविधायक सूत्र में तृतीया पद प्रथमानिर्दिष्ट है अतः तद्बोध्य शंकुला टा की प्रथमा निर्दिष्टं.....सूत्र से उपसर्जन संज्ञा एवं उपसर्जनं पूर्वं से पूर्वम् निपात।

कृत्तद्धित.....सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा एवं सुपोधातु.....सूत्र से सुप् का लोप।

शंकुलाखण्ड

प्रथमा एक वचन में सुँ प्रत्यय।

शंकुलाखण्ड सुँ

रुँत्व एवं विसर्ग आदेश करने पर शङ्कुलाखण्डः रुप सिद्ध हो जाता है।

धान्यार्थः

धान्येन अर्थः लौकिक विग्रह

धान्य टा अर्थ सुँ अलौकिक विग्रह

तृतीयान्त 'धान्य टा' का 'अर्थ सुँ' सुबन्त के साथ 'तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन' सूत्र से तृतीया तत्पुरुष समास। तृतीयान्त की उपसर्जन संज्ञा, पूर्वनिपात, प्रातिपदिक संज्ञा एवं सुप् का लोप करने पर रूप बना।

धान्य अर्थ

'अकः सवर्णे दीर्घः' सूत्र से दीर्घ संधि करने पर रूप हुआ।

धान्यार्थ

प्रथमा एक वचन में सुँ प्रत्यय।

धान्यार्थ सुँ

रुँत्व एवं विसर्ग आदेश करने पर धान्यार्थः रूप सिद्ध हो जाता है।

कर्तृकरणे कृता बहुलम् 2/1/31

कर्ता एवं करण अर्थ में वर्तमान तृतीयान्त सुबन्त का सुबन्त कृदन्त (कृत् प्रत्यय जिसके अन्त में हो) के साथ बहुलता से समास होता है। एवं वह समास तत्पुरुष होता है। बहुलता से तात्पर्य है कि समास कभी होता है कभी नहीं। उदाहरणार्थ – हरित्रातः (कर्ता अर्थ में)

हरिणा त्रातः इति लौकिक विग्रह

हरि टा त्रात सुँ इति अलौकिक विग्रह

हरि शब्द त्राण क्रिया का कर्ता है एवं तृतीयान्त है। 'त्रात' शब्द क्त प्रत्ययान्त होने से कृदन्त है। अतः तृतीयान्त 'हरि' शब्द का सुबन्त कृदन्त 'त्रातः' के साथ 'कर्तृकरणे कृता बहुलम्' सूत्र से तृतीया तत्पुरुष समास। समास विधायक सूत्र कर्तृकरणे..... सूत्र में स्थित कर्तृ पद से बोध्य विग्रह में स्थित 'हरि' शब्द की प्रथमा निर्दिष्टं.....इत्यादि सूत्र से उपसर्जन संज्ञा एवं पूर्व निपात। कृत्तद्वित.....सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा एवं सुपोधातु.....सूत्र से प्रातिपदिक के सुप् का लोप

हरित्रात

प्रथमा विभक्ति एक वचन में सुँ प्रत्यय। रूँत्व एवं विसर्ग विषयक कार्य करने पर रूप सिद्ध हुआ।

हरित्रातः

नख भिन्नः (करण अर्थ में)

नखैः भिन्नः इति लौकिक विग्रह

नख भिस् भिन्न सुँ अलौकिक विग्रह

अलौकिक विग्रह में 'नख भिस्' इस करणतृतीयान्त का 'भिन्न सुँ' इस कृदन्त सुबन्त के साथ 'कर्तृकरणे कृता बहुलम्' सूत्र से बहुलता से तृतीया तत्पुरुष समास। उपसर्जन संज्ञा, पूर्व निपात, प्रातिपदिक संज्ञा, सुप् का लोप

नख भिन्न

प्रथमा विभक्ति एकवचन में सुँ प्रत्यय नखभिन्न सुँ।

रूँत्व एवं विसर्ग विषयक कार्य करने पर रूप सिद्ध हुआ।

नखभिन्नः

11.3 चतुर्थी तत्पुरुष समास

चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः 2/1/35

चतुर्थ्यन्त के अर्थ के निमित्त जो वस्तु हो, उसके वाचक पद के साथ, तथा अर्थ, बलि, हित, सुख एवं रक्षित इन पदों के साथ चतुर्थ्यन्त का समास होता है। तदर्थ के साथ चतुर्थी का जो समास होता है वह प्रकृतिविकृतिभाव में ही इष्ट है। अन्यत्र नहीं।

तदर्थ के साथ चतुर्थी तत्पुरुष समास

यूपदारू (तदर्थ) चतुर्थ्यन्त का तदर्थ से समास

यूपाय दारू इति लौ. विग्रह

यूप ङे दारू सुँ अलौकिक विग्रह

यहाँ दारू चतुर्थ्यन्त यूप के लिए है अतः यहाँ चतुर्थी तदर्थार्थबलि.....इत्यादि सूत्र से चतुर्थी तत्पुरुष समास। समास विधायक सूत्र में चतुर्थी पद प्रथमनिर्दिष्ट है अतः इसके बोध्य यूप ङे. की प्रथमा निर्दिष्ट.....सूत्र से उपसर्जन संज्ञा व उपसर्जनं पूर्वम् से पूर्व निपात।

यूप ङे. दारू सुँ

कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिक संज्ञा व सुपोधातु.....सूत्र से सुप् का लोप।

यूप दारू

प्रथमा विभक्ति एक वचन में सुँ प्रत्यय

यूप दारू सुँ

'परवल्लिंग द्वन्द्वतत्पुरुषयोः' सूत्र द्वारा उत्तरपद के लिंगानुसार तत्पुरुष के भी नपुंसक माने जाने से 'स्वर्मोनपुंसकात्' सूत्र से सुँ का लुक् होकर प्रयोग सिद्ध हुआ।

यूप दारू

अर्थ के साथ चतुर्थी तत्पुरुष समास

अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिंगता चेति वक्तव्यम् (वार्तिक)

अर्थ के साथ चतुर्थ्यन्त का समास नित्य समास कहना चाहिये। और समस्तपद का लिंगवचन विशेष्य के अनुसार ही समझना चाहिये।

द्विजार्थः सूपः

द्विजाय अयम् लौ. वि.

द्विज ङे. अर्थ सु अलौ. वि.

चतुर्थ्यन्त पद 'द्विजाय' का 'अर्थ' के साथ चतुर्थी तदर्थार्थ.....सूत्र से चतुर्थी तत्पुरुष समास। अर्थेन नित्य समासो.....वार्तिक से समास का नित्य रूप से विधान एवं विशेष्य के अनुसार लिंग। यहाँ 'सूपः' विशेष्य पुल्लिग है अतः द्विजार्थः में भी पुल्लिग एक वचन ही प्रयुक्त होगा।

कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिक संज्ञा एवं सुपोधातु.....से सुप् का लोप

द्विज अर्थ

अकः सवर्णे दीर्घः से दीर्घ संधि करने पर

द्विजार्थ

प्रथमाविभक्ति एक वचन में सुँ प्रत्यय

द्विजार्थ सुँ

रूँत्व एवं विसर्ग विषयक कार्य करने पर रूप सिद्ध हुआ

द्विजार्थः सूपः

द्विजार्था यवागूः

द्विजाय इयम् लौकिक विग्रह

द्विज डे. अर्थ सु. अलौकिक विग्रह

द्विजार्थ तक की सिद्धि पूर्व शब्दानुसार (द्विजार्थः सूपः) के अनुसार

यहाँ विशेष्य यवागूः (स्त्रीलिंग) है अतः स्त्रीत्व की विवक्षा में द्विजार्थ शब्द से

अजाद्यतष्टाप् सूत्र से टाप् प्रत्यय	द्विजार्थ टाप्
प् की हलन्त्यम् एवं ट् की चुटू सूत्र से इत्संज्ञा व लोप	द्विजार्थ आ
अकः सवर्णे दीर्घः से दीर्घादेश	द्विजार्था
प्रथमा एक वचन में सुँ प्रत्यय।	द्विजार्था सुँ
अनुनासिक उँ की उपदेशेऽज.....से इत्संज्ञा व लोप	द्विजार्था स्
अपृक्त स् का हल्ङ्याब्भ्य.....इत्यादि सूत्र से लोप होकर रूप बनेगा	द्विजार्था यवागूः

द्विजार्थम् पयः

यहाँ विशेष्य पयः नपुंसकलिंग है। अतः प्रथमा एक वचन में सुँ प्रत्यय

द्विजार्थ सुँ

नपुंसकलिंग में अतोऽम् सूत्र से सुँ को अम् आदेश।

द्विजार्थ अम्

अमिपूर्वः सूत्र से पूर्व रूप एकादेश करने पर शब्द सिद्ध होगा।

द्विजार्थं पयः

चतुर्थ्यन्त सुबन्त का 'बलि' के साथ समास।

भूतबलिः

भूतेभ्यो बलिः लौ.वि.

भूत भ्यास् बलि सुँ अलौकिक विग्रह

यहाँ चतुर्थ्यन्त 'भूतभ्यस्' का 'बलि सुँ' सुबन्त के साथ चतुर्थी तदर्थार्थबलि.....सूत्र से चतुर्थी तत्पुरुष समास। चतुर्थी विभक्ति से बोध्य भूतभ्यस् की उपसर्जन संज्ञा, पूर्व निपात, प्रातिपदिक संज्ञा, सुप् का लोप।

भूतबलि

प्रथमा एकवचन में सुँ प्रत्यय करने पर। भूतबलि सुँ

विसर्ग सम्बन्धी कार्य करने पर रूप सिद्ध होगा। भूतबलिः

चतुर्थ्यन्त सुबन्त का 'हित' सुबन्त के साथ समास

गोहितम्

गोभ्यो हितम् लौकिक विग्रह

गो भ्यस् हित सुँ अलौकिक विग्रह

चतुर्थ्यन्त 'गोभ्यस्' सुबन्त का 'हित सुँ' सुबन्त के साथ चतुर्थी तदर्थार्थ.....सूत्र से तत्पुरुष समास। चतुर्थी विभक्ति से बोध्य गोभ्यस् की उपसर्जन संज्ञा, पूर्वनिपात, प्रातिपदिक संज्ञा एवं सुप् का लोप।

गोहित

प्रथमा एक वचन में सुँ की प्राप्ति।

गोहित सुँ

परवल्लिंग द्वन्द्वतत्पुरुषयोः से हित के नपुंसक होने के कारण नपुसंकलिंग। अतोऽम् से नपुंसक लिंग में सुँ को अम् आदेश।

गोहित अम्

अमिपूर्वः से पूर्वरूपएकादेश करने पर शब्द सिद्ध हुआ।

गोहितम्

इसी भाँति गोभ्यः सुखम् गोसुखम् एवं गोभ्यो रक्षितं गोरक्षितम् शब्दों की रूप सिद्धि होती है।

11.4 पंचमी तत्पुरुष समास

पंचमी भयेन 2/1/36

पंचम्यन्त सुबन्त, भयप्रकृतिक सुबन्त के साथ समास को प्राप्त होता है और वह समास पंचमी तत्पुरुष होता है। उदाहरणार्थ

चोरभयम् चोराद् भयं लौकिक विग्रह

चोर ङसि् भय सु अलौ. वि.

'पंचमी' शब्द सूत्र में प्रथमान्त है एवं यह 'चोराद्' शब्द को सूचित करता है अतः 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से इसकी उपसर्जन संज्ञा एवं उपसर्जनम् पूर्वम् सूत्र से उसका पूर्व निपात।

'कृत्तद्धितसमासाश्च' सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा एवं 'सुपोधातुप्रातिपदिकयोः' से प्रातिपदिक के अवयव सुप् का लोप।

चोरभय

प्रथमा एक वचन में 'सु' की प्राप्ति। नपुंसकलिंग एकवचन में 'सु' को अम् आदेश।

चोरभय + अम्

'अमिपूर्वः' से पूर्वरूप एकादेश करने पर रूप बना।

चोरभयम्

भयभीतभीतिभीभिरिति वाच्यम् (वार्तिक)

वार्तिककार ने पंचमी भयेन सूत्र के संदर्भ में यह जोड़ा है कि 'भय' शब्द के अतिरिक्त भीत, भीति, और भी (डर) शब्दों के साथ भी पंचम्यन्त का समास कहा है. यथा भयाद् भीतो भयभीतः, सिंहाद्भीतिः सिंहभीतिः इत्यादि।

स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन 2/1/38

स्तोकार्थक (स्वल्पार्थक), अन्तिकार्थक (समीपार्थक), दूरार्थक एवं कृच्छ्र शब्द इन चार प्रातिपदिकों के पंचम्यन्त सुबन्त का क्त प्रत्ययान्त के सुबन्त के साथ समास होता है और वह समास पंचमी तत्पुरुष समास कहलाता है।

पंचम्याः स्तोकादिभ्यः 6/3/2

स्तोकादियों से परे पंचमीविभक्ति का लोप न हो उत्तर पद के परे रहते।

स्तोकान्मुक्तः

स्तोकाद् मुक्तः	लौ. वि.
स्तोक ङसि मुक्त सुँ	अलौकिक विग्रह

'पंचम्यन्त स्तोकङसि' का क्त प्रत्ययान्त 'मुक्त सुँ' के साथ स्तोकान्तिकदूरार्थ.....सूत्र से पंचमी तत्पुरुष समास। समासविधायक सूत्र में प्रथम विभक्ति से बोध्य स्तोकङसि की उपसर्जन संज्ञा, पूर्व निपात। कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिक संज्ञा एवं सुपोधातु..... से सुप् के लोप की प्राप्ति किन्तु पंचम्याः स्तोकादिभ्यः से पंचमी के लोप का निषेध।

स्तोक ङसि मुक्त

'टा–ङसि – ङसामिनात्स्याः' सूत्र से ङसि के स्थान पर आत् आदेश करने पर।

स्तोक आत् मुक्त

अकः सवर्णे दीर्घः से दीर्घादेश।	स्तोकात् मुक्त
झलां जशोऽन्ते से जश्त्व दकार।	स्तोकाद् मुक्त।

यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा सूत्र से दकार को वैकल्पिक अनुनासिक नकार।

स्तोकान् मुक्त

प्रथमा विभक्ति एकवचन में सुँ। विसर्गविषयक कार्य करने पर सिद्ध हुआ।

स्तोकान्मुक्तः

अन्तिकादागतः

अन्तिकात् आगतः लौ.वि.

अन्तिक ङसि आगत सुँ अलौकिक वि.

पंच्म्यन्त 'अन्तिक ङसि' सुबन्त का क्तप्रत्ययान्त सुबन्त 'आगत' के साथ स्तोकान्तिक–दूरार्थ..... इत्यादि सूत्र से पंचमी तत्पुरुष समास। समासविधायक सूत्र में प्रथमा विभक्ति से बोध्य 'अन्तिक' की प्रथमानिर्दिष्ट.....सूत्र से उपसर्जन संज्ञा व उपसर्जनं पूर्वं से पूर्व निपात। प्रातिपदिक संज्ञा एवं सुपो धातु प्रातिपदिकयोः सूत्र से प्रातिपदिक के सुप् के लोप की प्राप्ति किन्तु पंचम्याः स्तोकादिभ्यः सूत्र पंचमी के लोप का निषेध

अन्तिक ङसि आगत

टा–ङसि–ङसामिनात्स्याः सूत्र से ङसि के स्थान पर आत् आदेश करने पर।

अन्तिक आत् आगत

अकः सवर्णे दीर्घः से दीर्घादेश।	अन्तिकात् आगत
झलां जशोऽन्ते से जश्त्व दकार।	अन्तिकाद् आगत
प्रथमा एक वचन में सुँ।	अन्तिकादागत + सुँ
विसर्ग विषयक कार्य करने पर प्रयोग सिद्ध हुआ।	अन्तिकादागतः

इसी भाँति दूरादागतः एवं कृच्छ्रादागतः की रूप सिद्धि की जाएगी।

दूरादागतः

दूरात् आगतः लौ. वि.

दूर ङसि आगत सु अलौ. वि.

स्तोकान्तिक.....सूत्र से पंचमी तत्पुरुष समास, उपसर्जन संज्ञा, पूर्वनिपात, प्रातिपदिक संज्ञा एवं सुप् के लोप की प्राप्ति। पंचम्याः.....सूत्र से पंचमी के लोप का निषेध।	दूर ङसि आगत
टा. ङसिङसामिनात्स्याः से ङसि को आत् आदेश।	दूर आत् आगत
दीर्घ आदेश।	दूरात् आगत
झलां जशोऽन्ते से दकार।	दूरादागत

प्रथमा एक वचन में सुँ। सुँ को रूँत्व व विसर्ग करने पर रूप सिद्ध हुआ।

दूरादागतः

कृच्छ्रादागतः

कृच्छ्रात् आगतः

कृच्छ्र ङसि आगत सुँ

पंचम्यन्त 'कृच्छ्राद्' का कृत प्रत्ययान्त 'आगत' के साथ 'स्तोकाऽन्तिक–दूरार्थ –कृच्छ्रेण क्तेन' सूत्र से समास। 'कृच्छ्राद्' की उपसर्जन संज्ञा एवं पूर्व निपात। 'कृत्तद्धितसमासाश्च' सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा एवं

'सुपोधातुप्रातिपदिकयोः' सूत्र से प्रातिपदिक के अव्यय सुप् के लोप की प्राप्ति किन्तु 'पंचम्याः स्तोकाऽदिभ्यः' सूत्र से पंचमी विभक्ति के लोप का निषेध।

कृच्छ्र ङसि आगत

'टाङसिङसामिनात्स्याः' सूत्र से ङसि को आत् आदेश

कृच्छ्र आत् आगत

रूप बना कृच्छ्रादागत

प्रथमा विभक्ति एक वचन में 'सु'। विभक्ति सम्बन्धी कार्य करने पर रूप बना।
'कृच्छ्रादागतः'

11.5 षष्ठी तत्पुरुष समास

षष्ठी – षष्ठ्यन्त पद का समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समास होता है और वह समास षष्ठी तत्पुरुष समास कहलात है। उदाहरणार्थ –

राजपुरुषः

राज्ञः पुरुषः लौ. वि.

राजन् ङस् पुरुष सुँ अलौ. वि.

राजन् ङस् इस षष्ठ्यन्त सुबन्त का पुरुष सुँ इस सुबन्त के साथ 'षष्ठी' सूत्र से विकल्प से षष्ठी तत्पुरुष समास। समासविधायक सूत्र में षष्ठी प्रथमानिर्दिष्ट है अतः तद्बोध्य राजन्ङस् की उपसर्जन संज्ञा व पूर्व निपात।

राजन् ङस् पुरुष सुँ

कृत्तद्धित समासाश्च से प्रातिपदिक संज्ञा व सुपोधातु... से प्रातिपदिक के सुप् का लोप।

राजन् पुरुष

न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य से प्रातिपदिक के नकार का लोप करने पर

राज पुरुष

प्रथमा विभक्ति एक वचन में सुँ प्रत्यय

राजपुरुष सुँ

सुँ के उकार अनुबन्ध का लोप, सकार को रूँत्व तथा रूँत्व को विसर्ग आदेश करने पर प्रयोग सिद्ध हुआ।

राजपुरुषः

11.6 सप्तमी तत्पुरुष समास

सप्तमी शौण्डैः – सप्तम्यन्त सुबन्त शौण्ड आदि सुबन्तों के साथ विकल्प से समास को प्राप्त होता है और वह समास सप्तमी तत्पुरुष समास कहलाता है। उदाहरणार्थ –

अक्षशौण्डः

अक्षेषु शौण्डः इति लौकिक विग्रह

अक्ष सुप् शौण्ड सुँ अलौकिक विग्रह

सप्तम्यन्त सुबन्त अक्षसुप् का सुबन्त शौण्ड के साथ सप्तमी शौण्डैः सूत्र से सप्तमी तत्पुरुष समास। समास विधायक सूत्र में प्रथमान्त पद के बोध्य अक्ष की उपसर्जन संज्ञा व पूर्व निपात। कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिक संज्ञा व सुपोधातु ..... सूत्र से प्रातिपदिक के सुप् का लोप

अक्ष शौण्ड

प्रथमा विभक्ति एक वचन में सुँ प्रत्यय। विसर्ग विषयक कार्य करने पर रूप सिद्ध हुआ।
अक्षशौण्डः

ध्वाङ्क्षेण क्षेपे 2/1/41

निन्दा गम्यमान होने पर ध्वाङक्ष (कौवा) वाचक सुबन्तों के साथ सप्तम्यन्त सुँबन्त तत्पुरुषसमास को प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ –

तीर्थध्वाङ्क्षः तीर्थे ध्वाङ्क्ष इव

(तीर्थ में पहुँचकर जैसे कौवा बहुत देर तक नहीं ठहरता वैसे जो विद्यार्थी गुरूकुल आदि में देर तक न ठहरे उसे तीर्थध्वाङ्क्ष आदि कहा जाता है। इससे विद्यार्थी की अस्थिरताजन्य निन्दा व्यक्त होती है।)

तीर्थध्वाङ्क्ष

तीर्थे ध्वाङ्क्ष इव

तीर्थ ङि ध्वाङ्क्ष सुँ

ध्वाङ्क्षेण क्षेपे सूत्र से ध्वाङ्क्ष सुबन्त का सप्तम्यन्त सुबन्त तीर्थ ङि के साथ सप्तमी तत्पुरुष समास। कृत्तद्धित.....सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा एवं सुपोधातु..... सूत्र से प्रातिपदिक के सुप् का लोप

तीर्थ ध्वाङ्क्ष

उपसर्जन संज्ञा, पूर्व निपात। प्रथमा एकवचन अर्थ में सुँ प्रत्यय। विसर्ग विषयक कार्य करने पर रूप सिद्ध हुआ।

तीर्थध्वाङ्क्षः

11.8 बोध–प्रश्न

1. निम्नलिखित सूत्रों की सोदाहरण व्याख्या कीजिए –

   क. कर्तृकरणे कृता बहुलम्

   ख. पंचम्याः स्तोकादिभ्यः

   ग. पंचमी भयेन

   घ. षष्ठी

   ड. सप्तमी शौण्डैः

2. निम्नलिखित समस्त पदों की सिद्धि कीजिए –

   1. कृष्णश्रितः

2. हरित्रातः

3. यूपदारू

4. गोरक्षितः

5. द्विजार्थः सूपः

11.9 उपयोगी पुस्तकें

1. लघु सिद्धान्त कौमुदी 'भैमी व्याख्या' पं. भीमसेन शर्मा (समास प्रकरण)
2. लघु सिद्धान्त कौमुदी, पं. महेश सिंह कुशवाह
3. लघु सिद्धान्त कौमुदी, पं. धरानन्द शास्त्री
4. लघु सिद्धान्त कौमुदी, डॉ. अर्कनाथ चौधरी

11.10 बोध–प्रश्नों के उत्तर

1 क. द्रष्टव्य 11.2 इकाई

ख. द्रष्टव्य 11.4 इकाई

ग. द्रष्टव्य 11.4 इकाई

घ. द्रष्टव्य 11.5 इकाई

ड. द्रष्टव्य 11.6 इकाई

2. द्रष्टव्य 11.1 से 11.4 इकाई पर्यन्त

इकाई–12

कर्मधारय समास, समानाधिकरण समास

कर्मधारय समास–सम्बन्धी सूत्रों की व्याख्या तथा उदाहरण, समस्त पदों की समास विग्रह प्रक्रिया का सूत्रोल्लेख पूर्वक निरूपण

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः

12.2.1 विशेषणं विशेष्येण बहुलम्

12.2.2 उपमानानि सामान्यवचनैः

12.2.3 उदाहरण एवं विग्रह (लौकिक तथा अलौकिक विग्रह)

12.3 उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे

12.3.1 उदाहरण एवं विग्रह

12.4 बोध–प्रश्न

12.5 उपयोगी पुस्तकें

12.6 बोध–प्रश्नों के उत्तर

12.0 उद्देश्य

यह इकाई समास प्रकरण से सम्बद्ध है। इस इकाई को पढ़ने के उपरान्त –

1. आप यह जान जायेंगे कि कर्मधारय तत्पुरुष समास का ही एक भेद है।
2. समानाधिकरण तत्पुरुष समास को कर्मधारय संज्ञा दी जाती है।
3. विशेषण और विशेष्य में जो समास होता है उसे कर्मधारय के नाम से जाना जाता है तथा कर्मधारय समास के अन्य समस्त बिन्दु इस इकाई के माध्यम से व्याख्यात होंगे।

12.1 प्रस्तावना

1. संस्कृतभाषा रूपी दुर्ग की बाह्य परिखाओं के नाम से प्रसिद्ध सन्धि और समास को पार किये (अच्छी तरह से समझे) बिना संस्कृत भाषा को शास्त्रीय एवं व्यावहारिक दृष्टि से चरितार्थ कर पाना सम्भव नहीं है। इसका कारण यही है कि संस्कृत वाङ्मय सन्धि और समास के अभाव में स्वाभाविकता को प्राप्त नहीं हो पाता है और स्वाभाविकता के अभाव में लोक ग्राह्य नहीं हो पाता है। 'लघ्वर्थं चाध्येयं व्याकरणम्' महाभाष्यकार पतञ्जलि के इस वचन के अनुसार व्याकरणशास्त्र के ज्ञान का मुख्य प्रयोजन लाघव है। इनमें समास का बोध करने के लिए उन पदों एवं पदों में निहित तत्तद् विभक्तियों का ज्ञान आवश्यक होता है अतः प्रकृत प्रकरण के माध्यम से समास की विशेषताओं का बोध एवं उनके शास्त्रीय तथा व्यावहारिक संस्कृत में चमत्कृति पैदा करना है।

2. इस कर्मधारय समास से पूर्व समास से सम्बन्धित इकाइयों के प्रारम्भ में भूमिका के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया ही गया है कि सम् उपसर्गपूर्वक अस् धातु से घञ् प्रत्यय एवं उपधा में विद्यमान अवर्ण के स्थान पर वृद्धि करने पर समास शब्द निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है – संक्षेप या संक्षिप्तीकरण। इसे इस प्रकार भी समझा जा सकता है कि जब दो या दो से अधिक पदों के मिलने की स्थिति में उनसे सम्बन्धित विभक्तियों का लोप हो जाता है तथा वे दोनों पद मिलकर एकपद बन जाते हैं तो वह समास कहलाता है –

पदानां लुप्यते यत्र प्रायः स्वाः स्वाः विभक्तयः।
पुनरेकपदीभावः समास उच्यते तदा॥

यह समास पाँच प्रकार का होता है –

1. **केवल समास :** समास होने पर भी शास्त्र में कोई विशेष संज्ञा न किये जाने पर केवल समास होता है उदाहरणतः भूतपूर्वः।

2. **अव्ययीभाव समास :** अनव्ययम् अव्ययं भवति इति अव्ययीभावः। इस समास में प्रायः पूर्वपद (अव्यय) की प्रधानता होने पर उत्तरपद भी अव्यय के रूप में बना लिया जाता है उदाहरण – अधिहरि, उपकृष्णम् आदि।

3. **तत्पुरुषसमास :** इस तत्पुरुष तथा इसके भेद कर्मधारय के सम्बन्ध में प्रकृत प्रकरण में विवेचन किया जायेगा।

4. **बहुव्रीहिसमास :** इस समास में प्रायः समस्यमान (मिलने वाले) पदों से भिन्न किन्तु उससे सम्बद्ध किसी अन्य पद की प्रधानता होती है। उदाहरणतः – पीताम्बरः – पीतम् अम्बरं यस्य सः।

5. **द्वन्द्व समास :** 'च' के अथ में किये जाने वाले इस समास में प्रायः सभी पदों के अर्थों की प्रधानता होती है। उदाहरणतः हरिहरौ, हरिहरगुरवः।

कर्मधारय चूँकि तत्पुरुष समास का भेद है इसलिए सर्वप्रथम तत्पुरुष समास से सम्बन्धित जानकारी होना आवश्यक है।

'प्रायेण उत्तरपदार्थप्रधानः तत्पुरुषः' इस लक्षण के अनुसार जिन दो या दो से अधिक पदों में प्रायः उत्तरपद के अर्थ की प्रधानता (मुख्यता) का बोध होता है वह तत्पुरुष समास कहलाता है। यहाँ प्रयुक्त तत्पुरुष शब्द दो तरह से व्याख्यान के योग्य है –

1. तस्य पुरुषः इति तत्पुरुषः अर्थात् उसका (स्वामी का) सेवक।

2. स चासौ पुरुषः इति तत्पुरुषः अर्थात् वह पुरुष।

इनमें प्रथम अर्थ के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि इसमें पूर्वपद एवम् उत्तरपद में भिन्न-भिन्न विभक्तियों का प्रयोग किया गया है। अतः इसे **व्यधिकरण** या **वैयधिकरण** तत्पुरुष कहा जाता है और यह व्यधिकरण तत्पुरुष द्वितीया विभक्ति से लेकर सप्तमी विभक्ति पर्यन्त अलग-अलग सूत्रों से व्यवस्थित किया जाता है।

द्वितीय अर्थ पर ध्यान देने से यह स्पष्ट होता है कि यहाँ पूर्व एवं उत्तर दोनों ही पदों में समान अर्थात् एक ही तरह की विभक्ति का प्रयोग किया गया है। इस तरह यह **समानाधिकरण** तत्पुरुष कहा जाता है। इसके अन्तर्गत कर्मधारय समास तथा उसके भेद द्विगु आदि समास का ग्रहण किया जाता है। प्रसङ्गतः कर्मधारय समास से सम्बन्धित विवेचन इस प्रकार है –

12.2 तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः (पा.सू. 1। 2। 42॥)

यह कर्मधारयसंज्ञाविधायक सूत्र है। इसके अनुसार समानाधिकरण तत्पुरुष समास को कर्मधारय समास कहते हैं। कर्मधारय पद में 'कर्म' शब्द क्रिया अर्थ का वाचक है। इस तरह इस समास में पूर्व तथा उत्तर दोनों ही पद एक ही क्रियामें अन्वित (युक्त) होते हैं। समानाधिकरण का अर्थ है- सभी पदों में एक ही तरह की विभक्तियों का प्रयोग होना। इस कर्मधारय संज्ञा के बाद उससे सम्बन्धित फल का कथन करने के लिए अग्रिम सूत्र प्रवृत्त होता है।

12.2.1 विशेषणं विशेष्येण बहुलम् (पा.सू. 2। 1। 57॥)

विशेषणवाचक शब्द विशेष्य वाचक शब्द के साथ बहुलतया मिलता है।

विशेषण शब्द का अर्थ है - विशिष्यते अनेन इति विशेषणम् अर्थात् जिसके द्वारा किसी वस्तु की विशेषता बतलाई जाती है उसे विशेषण कहते हैं। इस विशेषण को भेदक अथवा व्यावर्तक भी कहा जाता है। इसका कारण यह है कि वह स्वयं के द्वारा किसी के वैशिष्ट्य का अङ्कन करता है। इसी तरह यह विशेषण जिसकी विशेषता बतलाता है उसे विशेष्य, भेद्य अथवा व्यावर्त्य कहा जाता है। इन विशेषण एवं विशेष्य दोनों में से विशेष्य प्रधान और विशेषण अप्रधान होता है। जैसा कि स्पष्ट है-

भेद्यं विशेष्यमित्याहुर्भेदकं तु विशेषणम्।
प्रधानं तु विशेष्यं स्यादप्रधानं विशेषणम्॥

सूत्र में पठित बहुल शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है - बहून् अर्थात् लाति इति बहुलम्। यह बहुल शब्द चार अर्थों में दिखाई पड़ता है। जैसा कि प्रसिद्ध है -

क्वचित् प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिद् विभाषा क्वचिदन्यदेव।
विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति॥

अर्थात् **1. क्वचित् प्रवृत्ति :-** 'बहुलम्' से सम्बन्धित कार्य कहीं न होने योग्य स्थान पर भी हो जाता है।

2. क्वचिद् अप्रवृत्ति :- यह कार्य उपयुक्त स्थान पर भी कभी नहीं होता है।

3. क्वचिद् विभाषा :- यह कार्य कहीं विकल्प से हो जाता है।

4. क्वचिद् अन्यद् एव :- कहीं कुछ अन्य भी हो जाता है।

उदाहरण - नीलोत्पलम् - नीलम् उत्पलम् अथवा नीलञ्च तदुत्पलम्। लौकिक विग्रह।
नील सु उत्पल सु अलौकिक विग्रह।

यह विकल्प का उदाहरण है यहाँ 'नील' शब्द विशेषण तथा 'उत्पल' शब्द विशेष्य है। अतः 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' सूत्र से कर्मधारय समास, 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा होकर 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से दोनों पदों की विभक्तियों का लोप हो जाता है। चूँकि नील शब्द अर्थात् विशेषण समासविधायक सूत्र में प्रथमा से निर्दिष्ट है अतः उसकी उपसर्जन संज्ञा करके पूर्वप्रयोग कर दिया जाता है। 'नील उत्पल' इस दशा में 'आद्गुणः' सूत्र से गुण रूप एकादेश करके 'नीलोत्पलं' शब्द बनता है। 'परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः' सूत्र के अनुसार तत्पुरुष समास में पर (उत्तर) पद की तरह लिङ्गविधान के नियम से प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय, 'अतोऽम्' से अम् आदेश एवं पूर्वरूप करने पर 'नीलोत्पलम्' प्रयोग निष्पन्न होता है।

इसी तरह -

रक्तोत्पलम्	रक्तं च तदुत्पलम्	–	लौकिक विग्रह
	रक्त सु उत्पल सु	–	अलौकिक विग्रह
महावृक्षः	महांश्चासौ वृक्षः	–	लौकिक विग्रह
	महत् सु वृक्ष सु	–	अलौकिक विग्रह
कृष्णचतुर्दशी	कृष्णा चासौ चतुर्दशी	–	लौकिक विग्रह
	कृष्णा सु चतुर्दशी सु	–	अलौकिक विग्रह
पूर्ववैयाकरणाः	पूर्वे च ते वैयाकरणाः	–	लौकिक विग्रह
	पूर्व जस् वैयाकरण जस्	–	अलौकिक विग्रह
क्षुद्रजन्तवः	क्षुद्राश्च ते जन्तवः	–	लौकिक विग्रह
	क्षुद्र जस् जन्तु जस्	–	अलौकिक विग्रह
वृद्धव्याघ्रः	वृद्धश्चासौ व्याघ्रः	–	लौकिक विग्रह
	वृद्ध सु व्याघ्र सु	–	अलौकिक विग्रह
निर्मलगुणाः	निर्मलाश्च ते गुणाः	–	लौकिक विग्रह
	निर्मल जस् गुण जस्	–	अलौकिक विग्रह
सिताम्भोजम्	सितञ्च तदम्भोजम्	–	लौकिक विग्रह
	सित सु अम्भोज सु	–	अलौकिक विग्रह

यहाँ 'बहुल' शब्द का ग्रहण होने से 'कृष्णसर्पः' में नित्य समास होने से स्वपद विग्रह नहीं हुआ है। इसी प्रकार कहीं समास की प्रवृत्ति नहीं होती है। यथा – रामो जामदग्न्यः।

किं क्षेपे – (पा.सू. 2। 1। 64)

'क्षेप' शब्द निन्दार्थक है। इस तरह निन्दा अर्थ का बोध होने पर 'किम्' अव्यय समानाधिकरण प्रातिपदिक के साथ मिलता है और वह तत्पुरुष समास कहलाता है। उदाहरण –

कुराजा– कुत्सितः राजा – लौकिक विग्रह

कु राजन् सु – अलौकिक विग्रह

यहाँ प्रकृत सूत्र से निन्दार्थक किम् अव्यय का राजन् शब्द के साथ समास, प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्तिलोप, पुनः प्रातिपदिक संज्ञा करके प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय, उपधा में विद्यमान 'अन्' के अकार को दीर्घ, सुप्रत्यय का हल्ङ्यादिलोप एवं 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' सूत्र से न का लोप करने पर 'कुराजा' शब्द निष्पन्न होता है। इसी तरह किंसखा, किंप्रभुः।

विशेष : यहाँ उस राजा को किंराजा (निन्दित राजा) कहा जाता है, जो अत्यधिक ऐश्वर्यसम्पन्न होकर भी प्रजा का समुचित पालन नहीं करता है।

12.2.2 उपमानानि सामान्यवचनैः (पा.सू. 2। 1। 54)

उपमानवाचक पूर्वपद का सामान्य गुण धर्म वाचक उत्तरपद के साथ समास होता है। उपमान का अर्थ है – जिससे किसी अन्य वस्तु की समानता प्रदर्शित की जाए।

इसी तरह जिस वस्तु की समानता प्रदर्शित की जाती है वह उपमेय है। सामान्यवचन शब्द का अर्थ है – समान धर्म।

उदाहरण– घनश्यामः (श्रीकृष्णः) घन इव श्यामः – लौकिक विग्रह

घन सु श्याम सु – अलौकिक विग्रह

यहाँ घन (बादल) उपमान है तथा श्रीकृष्ण उपमेय है। इन दोनों में श्यामता समान धर्म है। यह श्याम शब्द पहले श्यामगुण का वाचक है और बाद में श्यामगुण वाले व्यक्ति का।

उपर्युक्त विग्रह वाक्य के आधार पर 'उपमानानि सामान्यवचनैः' सूत्र के द्वारा समास, प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्तिलोप आदि पूर्ववत् करके पुनः प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय एवं रुत्व विसर्ग कर देने पर 'घनश्यामः' प्रयोग निष्पन्न होता है।

12.2.3 इसी तरह –

कर्पूरगौरः	कर्पूर इव गौरः	–	लौकिक विग्रह
	कर्पूर सु गौर सु	–	अलौकिक विग्रह
दुग्धधवलम्	दुग्धमिव धवलम्	–	लौकिक विग्रह
	दुग्ध सु धवल सु	–	अलौकिक विग्रह
सुधाकरमनोहरम्	सुधाकर इव मनोहरम्	–	लौकिक विग्रह
	सुधाकर सु मनोहर सु	–	अलौकिक विग्रह
नवनीतकोमला	नवनीत इव कोमला	–	लौकिक विग्रह
	नवनीत सु कोमल सु	–	अलौकिक विग्रह
हेमरुचिरा	हेम इव रुचिरा	–	लौकिक विग्रह
	हेम सु रुचिर सु	–	अलौकिक विग्रह
गजस्थूलः	गज इव स्थूल	–	लौकिक विग्रह
	गज सु स्थूल सु	–	अलौकिक विग्रह
शिरीषमृद्वी	शिरीषमिव मृद्वी	–	लौकिक विग्रह
	शिरीष सु मृद्वी सु	–	अलौकिक विग्रह
काककृष्णः	काक इव कृष्णः	–	लौकिक विग्रह
	काक सु कृष्ण सु	–	अलौकिक विग्रह

दण्डदीर्घः, समुद्रगम्भीरः, नीरदश्यामः।

12.3 उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे (पा.सू. 2। 1। 56)

व्याघ्रआदि उपमानवाचक शब्द के साथ उपमेय वाची शब्दों का सामान्य धर्म से भिन्न प्रयोग की दशा में समास होता है। उदाहरण –

पुरुषव्याघ्रः पुरुषः व्याघ्र इव – लौकिक विग्रह

पुरुष सु व्याघ्र सु – अलौकिक विग्रह

यहाँ प्रकृत सूत्र से उपमेय 'पुरुष' शब्द का उपमान 'व्याघ्र' शब्द के साथ समास, प्रातिपदिकसंज्ञा एवं दोनों विभक्तियों का लोप उपमेयवाचक 'पुरुष' शब्द की उपसर्जन संज्ञा करके पूर्वप्रयोग, पुनः प्रातिपदिकसंज्ञा, प्रथमा एकवचन में सुप्रत्यय एवं रुत्वविसर्ग करने पर पुरुषव्याघ्रः प्रयोग निष्पन्न होता है।

विशेष – यहाँ सादृश्य का कथन करने वाले शौर्य रूप साधारण धर्म का ग्रहण न होने से समास किया गया है।

12.3.1 इसी तरह –

करकमलम्	करम् कमलम् इव	–	लौकिक विग्रह
	कर सु कमल सु	–	अलौकिक विग्रह
चरणाम्बुजम्	चरणम् अम्बुजम् इव	–	लौकिक विग्रह
	चरण सु अम्बुज सु	–	अलौकिक विग्रह
नृसिंहः	ना सिंह इव	–	लौकिक विग्रह
	नृ सु सिंह सु	–	अलौकिक विग्रह
नरकुञ्जरः	नरः कुञ्जर इव	–	लौकिक विग्रह
	नृ सु कुञ्जर सु	–	अलौकिक विग्रह
मुखचन्द्रः	मुखम् चन्द्र इव	–	लौकिक विग्रह
	मुख सु चन्द्र सु	–	अलौकिक विग्रह
नृसोमः	ना सोम इव	–	लौकिक विग्रह
	नृ सु सोम सु	–	अलौकिक विग्रह

12.4 बोध-प्रश्न

1. कर्मधारय समास एवं उसके भेद लक्षण उदाहरणों के साथ स्पष्ट कीजिए।
2. अधोलिखित सूत्रों की सोदाहरण व्याख्या कीजिए –
   (क) तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः
   (ख) विशेषणं विशेष्येण बहुलम्
   (ग) उपमानानि सामान्यवचनैः
   (घ) उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे
3. समानाधिकरण एवं व्यधिकरण पदों के अर्थ को स्पष्ट करते हुए उनके एक-एक उदाहरण प्रदर्शित कीजिये।
4. अधोलिखित उदाहरण वाक्यों में विग्रह प्रदर्शित कीजिये –

(1) नीलोत्पलम्

(2) कुराजा

(3) पुरुषव्याघ्रः

(4) सुधाकरमनोहरम्

(5) चरणाम्बुजम्

12.5 उपयोगी पुस्तकें

1. लघुसिद्धान्तकौमुदी – भैमी व्याख्या सहित – पं. भीमसेन शास्त्री, भैमी प्रकाशन, दिल्ली
2. लघुसिद्धान्तकौमुदी – डॉ अर्कनाथ चौधरी, जयपुर
3. लघुसिद्धान्तकौमुदी– महेश कुशवाहा, वाराणसी
4. प्रौढ़ रचनानुवादकौमुदी – कपिलदेव द्विवेदी, वाराणसी

12.6 बोध–प्रश्नों के उत्तर

1. द्रष्टव्य भाग संख्या 12.2 में।
2. द्रष्टव्य भाग संख्या 12.2.1 से 12.2.3 तक में।
3. द्रष्टव्य भाग संख्या 12.2 से 12.3 तक में।
4. द्रष्टव्य भाग संख्या 12.2 से 12.3 तक में।

इकाई–13

द्विगु, नञ् तत्पुरुष तथा उपपद तत्पुरुष समास

उपर्युक्त समासों से सम्बन्धित सूत्रों की व्याख्या तथा उदाहरण, समस्त–पदों की समास विग्रह प्रक्रिया का सूत्रोल्लेख पूर्वक निरूपण

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 द्विगु समास संज्ञा

13.3 तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च सूत्र द्विगु समास का विधायक

13.4 द्विगु के सामान्य नियम

13.4.1 द्विगुरेकवचनम्

13.4.2 स नपुंसकम्

13.4.3 उदाहरण तथा विग्रह (लौकिक एवं अलौकिक विग्रह)

13.5 अन्य तत्पुरुष समास

13.5.1 नञ् तत्पुरुष

13.6 उपपद तत्पुरुष समास

13.7 बोध–प्रश्न

13.8 उपयोगी पुस्तकें

13.9 बोध–प्रश्नों के उत्तर

13.0 उद्देश्य

इस समास में समानाधिकरण के साथ पूर्व पद के संख्यावाची होने से सम्बन्धित विशेष विषय को स्पष्टीकरण किया जायेगा, जिससे अध्येताओं को अनुवाद एवं वाक्यप्रयोग से सम्बन्धित विषय का ज्ञान होगा।

13.1 प्रस्तावना

तत्पुरुष समास समनाधिकरण एवं व्यधिकरण भेद से दो प्रकार का होता है – यह पूर्व में स्पष्ट किया गया है। इनमें व्यधिकरण तत्पुरुष के उदाहरण द्वितीया से लेकर सप्तमी तत्पुरुष के रूप में वर्णित किया गया है। समानाधिकरण तत्पुरुष के उदाहरण तत्पुरुष के भेद कर्मधारय तथा कर्मधारय के भेद 'द्विगु' के अन्तर्गत प्रदर्शित किये गये हैं। इनमें जहाँ कर्मधारय में विशेषण विशेष्य भाव रूप विशेषता से युक्त समानाधिकरण है वहीं द्विगु समास के अन्तर्गत पूर्वपद संख्यावाची के रूप में होकर समानाधिकरण अर्थात् समान विभक्ति वाला होता है।

13.2 सङ्ख्यापूर्वो द्विगुः (पा.सू. 2। 1 । 51) द्विगु संज्ञा

'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' इस सूत्र में जो तद्धितार्थ, उत्तरपद तथा समाहार नामक तीन प्रकार का समास कहा जाता है, यदि उसका पूर्वपद संख्यावाचक हो तो वह द्विगुसमास कहलाता है।

तात्पर्य यह है कि तद्धितार्थ विषयक (पञ्चकपालः), उत्तरपद परे रहते (पञ्चगवधनः) तथा समाहार (पञ्चगवम्) में संख्यावाचक पूर्वपद होने पर द्विगुसमास होता है।

13.3 तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च (पा.सू. 2। 1। 5) द्विगु समास का विधायक

तद्धित प्रत्यय के अर्थ का विषय होने पर, उत्तरपद परे होने पर अथवा समाहार अर्थात् समूह अर्थ का कथन होने पर दिशा एवं संख्यावाचक शब्द का समानाधिकरण सुबन्त शब्द के साथ समास होता है।

तद्धित प्रत्ययार्थ – पौर्वशालः	पूर्वस्यां शालायां भवः	लौकिक विग्रह
	पूर्वा ङि शाला ङि भव सु	अलौकिक विग्रह

यहाँ भव अर्थ में 'दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञः' सूत्र से तद्धित 'ञ' प्रत्यय का विधान होने की स्थिति में प्रकृत सूत्र के द्वारा समास, प्रातिपदिकसंज्ञा करके विभक्तियों का लोप 'पूर्वा शाला' इस स्थिति में 'सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः' वार्तिक से सर्वनामबोधक पूर्वा शब्द को पुंवद्भाव, 'पूर्व शाला' इस दशा में दिक्पूर्व.... सूत्र से 'ञ' प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, 'तद्धितेष्वचामादेः' सूत्र से ञित् मानकर आदिवृद्धि पौर्वशाला अ इस स्थिति में 'यचि भम्' से भसंज्ञा करके 'यस्येति च' सूत्र से 'आ' का लोप: पौर्वशाल शब्द से प्रातिपदिक संज्ञा होकर सुप्रत्यय एवं रुत्व विसर्ग होने पर पौर्वशालः प्रयोग निष्पन्न होता है। इसी प्रकार – आपरशालः अपरस्यां शालायां भवः।

उत्तरपद परे होने से सम्बन्धित उदाहरण –

पञ्चगवधनः	पञ्च गावः धनं यस्य	लौकिक विग्रह
	पञ्चन् जस गो जस् धन सु	अलौकिक विग्रह

इस त्रिपद बहुव्रीहि में 'अनेकमन्यपदार्थे' सूत्र द्वारा बहुव्रीहि समास प्रातिपदिक संज्ञा एवं तीनों विभक्तियों का लुक् अनन्तर पञ्चन् एवं गो शब्द का 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' 'द्वन्द्वतत्पुरुषयोरुत्तरपदे नित्यसमासवचनम्' की सहायता से नित्य समास (तत्पुरुष), उपसर्जन संज्ञा करके पञ्चन् शब्द का पूर्व प्रयोग 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' से नलोप 'पञ्चगोधन' इस स्थिति में 'गोरतद्धितलुकि' सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय अनुबन्ध लोप 'पञ्च गो अ धन' इस स्थिति में 'एचोऽयवायावः' सूत्र से ओ के स्थान पर 'अव्' आदेश 'पञ्च ग् अव् अ धन' की पुनः प्रातिपदिकसंज्ञा, प्रथमा एकवचन सु प्रत्यय एव रुत्व विसर्ग करने पर 'पञ्चगवधनः' प्रयोग निष्पन्न होता है।

13.4 द्विगु के सामान्य नियम

13.4.1 द्विगुरेकवचनम् (पा.सू. 2। 4 । 1)

द्विगु समास के समाहार अर्थ में एकवचन (एक अर्थ का बोध) होता है।

13.4.2 स नपुंसकम् (पा.सू. 2। 4। 17)

द्विगु और द्वन्द्व समास में समाहार अर्थ में नपुंसक लिङ्ग होता है।

उदाहरण –

पञ्चगवम् –	पञ्चानां गवां समाहारः	–	लौकिक विग्रह

पञ्चन् आम् गो आम् – अलौकिक विग्रह

यहाँ 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' सूत्र की सहायता से 'संख्यापूर्वो द्विगुः' सूत्र से द्विगुसमास, प्रातिपदिक संज्ञा करके दोनों विभक्तियों का लोप, 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य ' से 'न्' का लोप 'पञ्च' शब्द की उपसर्जनसंज्ञा करके पूर्वप्रयोग, 'पञ्च गो' इस दशा में 'गोरतद्धितलुकि' सूत्र से समासान्त टच् (अ) प्रत्यय, अनुबन्ध लोप 'पञ्च गो अ' 'एचोऽयवायावः' सूत्र से ओ को 'अव्' आदेश 'पञ्चगव' इस स्थिति में 'द्विगुरेकवचनम्' सूत्र के अनुसार प्रथमा विभक्ति एकवचन में सु प्रत्यय 'स नपुंसकम्' से नपुंसकलिङ्ग की व्यवस्था होने से सु प्रत्यय के स्थान पर अम् आदेश एवं 'अमि पूर्वः' सूत्र से पूर्वरूप एकादेश करने पर पञ्चगवम् प्रयोग निष्पन्न होता है।

13.4.3 उदाहरण तथ विग्रह

इसी तरह –

पञ्चपात्रम्–	पञ्चानां पात्राणां समाहारः	–	लौकिक विग्रह
	पञ्चन् आम् पात्र आम्	–	अलौकिक विग्रह
त्रिभुवनम्–	त्रयाणां भुवनानां समाहारः	–	लौकिक विग्रह
	त्रि आम् भुवन आम्	–	अलौकिक विग्रह
चतुर्युगम्–	चतुर्णां युगानां समाहारः	–	लौकिक विग्रह
	चतुर् आम् युग आम्	–	अलौकिक विग्रह
पञ्चग्रामम्–	पञ्चानां ग्रामाणां समाहारः	–	लौकिक विग्रह
	पञ्चन् आम् ग्राम आम्	–	अलौकिक विग्रह

जिस द्विगु समास में उत्तरपद अकारान्त होता है उसका स्त्रीलिङ्ग में ङीप् आदि प्रत्यय करके प्रयोग किया जाता है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि पात्र आदि शब्द के भी अकारान्त होने से स्त्रीलिङ्ग की प्राप्ति होती है। किन्तु 'पात्राद्यन्तस्य न' वार्तिक से निषेध कर दिया जाता है। उदाहरण –

त्रिलोकी –	त्रयाणां लोकानां समाहारः	–	लौकिक विग्रह
	त्रि आम् लोक आम्	–	अलौकिक विग्रह
पञ्चपूली–	पञ्चानां पूलानां समाहारः	–	लौकिक विग्रह
	पञ्चन् आम् पूल आम्	–	अलौकिक विग्रह
अष्टाध्यायी–	अष्टानाम् अध्यायानां समाहारः	–	लौकिक विग्रह
	अष्टन् आम् अध्याय आम्	–	अलौकिक विग्रह
पञ्चवटी–	पञ्चानां वटानां समाहारः	–	लौकिक विग्रह
	पञ्चन् आम् वट आम्	–	अलौकिक विग्रह

इसी प्रकार यदि द्विगु समास का उत्तरपद आकारान्त हो तो विकल्प से स्त्रीलिङ्ग अर्थात् ईकारान्त होता है।

उदाहरण –

पञ्चखट्वी, पञ्चखट्वम्। पञ्चानां खट्वानां समाहारः

त्रिशालम्, त्रिशाली। चतुःशालम् चतुःशाली

13.5 अन्य तत्पुरुष समास

नञ् समास –

13.5.1 नञ् (पा.सू. 2। 2। 6)

'नञ्' अव्यय का सुबन्त अर्थात् प्रातिपदिक के साथ समास होता है। 'नञ्' निषेधार्थक अव्यय है। इसमें 'ञ्' का अनुबन्धलोप (हलन्त्यम्) होकर 'न' शेष रहता है।

नलोपो नञः (पा.सू. 6। 3। 72)

बाद में उत्तरपद के दिखाई पड़ने पर नञ् के नकार (न्) का लोप हो जाता है।

अब्राह्मणः न ब्राह्मणः – लौकिक विग्रह

न ब्राह्मण सु – अलौकिक विग्रह

यहाँ नञ् सूत्र से समास, पूर्ववत् प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति लोप करके 'न ब्राह्मण' इस दशा में 'नलोपो नञः' सूत्र से न् का लोप, 'अब्राह्मण' इस स्थिति में पुनः प्रातिपदिकसंज्ञा, प्रथमा विभक्ति एकवचन में सुप्रत्यय एवं रुत्व विसर्ग करने पर 'अब्राह्मणः' प्रयोग निष्पन्न होता है।

इसी तरह –

अज्ञः न ज्ञः – लौकिक विग्रह

न ज्ञ सु – अलौकिक विग्रह

असाधुः न साधुः – लौकिक विग्रह

न साधु सु – अलौकिक विग्रह

अपण्डितः न पण्डितः – लौकिक विग्रह

न पण्डित सु – अलौकिक विग्रह

अपापः, अधर्मः, असारः, अकृपा, अविवेकः, अयोग्यः।

तस्मान्नुडचि (पा.सू. 6। 3। 73)

नञ् के नकार का लोप हो जाने पर उससे पश्चाद्वर्ती अजादि पद को नुट् आगम होता है।

पूर्व में नञ् के नकार का लोप बताया गया है, अतः उत्तरपद के विद्यमान होने पर प्रकृत सूत्र से नुट् आगम होता है। आगम और आदेश भिन्न-भिन्न हैं। इनमें आगम मित्र के सदृश तथा आदेश शत्रु के समान होता है – **मित्रवदागमः शत्रुवदादेशः।**

अनश्व : न अश्वः – लौकिक विग्रह

न अश्व सु – अलौकिक विग्रह

यहाँ 'नञ्' सूत्र से समास, प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति लोप 'न अश्व' इस स्थिति में 'नलोपो नञः' सूत्र से नलोप (न्)

'अ अश्व' इस स्थिति में 'आद्यन्तौ टकितौ' सूत्र की सहायता से अश्व शब्द के अकार से पूर्व नुट् (न्) आगम, अ न् अश्व = अनश्व शब्द की पुनः प्रातिपदिक संज्ञा, प्रथमा एकवचन में सुप्रत्यय एवं रुत्व विसर्ग कर देने पर 'अनश्वः' प्रयोग निष्पन्न होता है।

इसी तरह –

अनद्यतनम् न अद्यतनम् लौकिक विग्रह

न अद्यतन सु अलौकिक विग्रह

अनात्मा न आत्मा लौकिक विग्रह

न आत्मन् सु अलौकिक विग्रह

अनार्यः, अनाशा, अनीश्वरः, अनीहा, अनुत्साहः, अनेकः, अनैक्यम्, अनौत्सुक्यम्, अनृणी, अनुक्त्वा।

13.6 उपपद तत्पुरुष समास

तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् (पा. सू. 3। 1। 92)

'कर्मण्यण्' सूत्रस्थ 'कर्मणि' इस सप्तम्यन्त पद से बोध्य कुम्भ आदि को कहने वाले शब्दों की उपपदसंज्ञा होती है। (इस स्थिति में ही प्रत्ययों की विधान होता है)

उपपद शब्द का अर्थ है – उप समीपोच्चारितं पदमुपपदम् अर्थात् समीप में उच्चारित पद। सप्तमीस्थ शब्द का अर्थ है – सप्तमी विभक्तियुक्त शब्द। इस तरह सप्तमी विभक्ति से युक्त पद के द्वारा समीप में उच्चारित जिस कुम्भ आदि का बोध होता है उसकी उपपद संज्ञा होती है।

उपपदमतिङ् (पा. सू. 2। 2। 19)

तिङ् प्रत्यय (धातुओं के तिप् तस् झि आदि मूल प्रत्यय) से भिन्न अर्थात् कृत् प्रत्यय से सम्बन्धित होने पर उपपद वाचक सुबन्त प्रातिपदिक का समर्थ शब्द के साथ नित्य समास होता है। उदाहरण –

कुम्भकारः कुम्भं करोति – लौकिक विग्रह

यहाँ 'तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्' सूत्र से कर्म रूप 'कुम्भ' शब्द के उपपद संज्ञक होने से कृ धातु से 'कर्म ण' सूत्र से अण् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप 'अचो ञ्णिति' सूत्र से णित् मानकर ऋ के स्थान पर आ वृद्धि एवं रपर, कुम्भ क् आर् अ = कुम्भकार शब्द में कुम्भस्य कार, कुम्भ ङस् कार इस अलौकिक विग्रह में उपपदमतिङ् से समास, प्रातिपदिकसंज्ञा करके विभक्ति लोप, कुम्भकार शब्द की पुनः प्रातिपदिक संज्ञा प्रथमा एकवचन में सुप्रत्यय एवं रुत्व विसर्ग करने पर कुम्भकारः प्रयोग निष्पन्न होता है।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि 'कार' शब्द में 'कृ + अण्' 'इस तिङ् से भिन्न कृत् प्रत्यय के होने पर ही समास हुआ है। इसी तरह –

सूत्रकारः, वार्तिककारः, भाष्यकारः स्वर्णकारः लौहकारः आदि।

13.7 बोधप्रश्न –

1. द्विगु समास का लक्षण प्रस्तुत करते हुए उसके उदाहरण को स्पष्ट कीजिये।

2. अधोलिखित सूत्रों की सोदाहरण व्याख्या कीजिये –

   (1) तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च

   (2) स नपुंसकम्

   (3) नञ्

   (4) तस्मान्नुडचि

   (5) तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्

3. अधोलिखित उदाहरण वाक्यों में विग्रह प्रदर्शित कीजिये –

   (1) पञ्चगवधनः (2) त्रिभुवनम् (3) अष्टाध्यायी

   (4) अज्ञः (5) अनद्यतनम् (6) वार्तिककारः

13.8 उपयोगी पुस्तकें –

1. लघुसिद्धान्तकौमुदी – भैमी व्याख्या सहित – पं. भीमसेन शास्त्री, भैमी प्रकाशन, दिल्ली

2. लघुसिद्धान्तकौमुदी – डॉ अर्कनाथ चौधरी, जयपुर

3. लघुसिद्धान्तकौमुदी– महेश कुशवाहा, वाराणसी

4. प्रौढ़ रचनानुवादकौमुदी – कपिलदेव द्विवेदी, वाराणसी

13.9 बोध–प्रश्नों के उत्तर –

1. द्रष्टव्य भाग संख्या 13.2 में।

2 एवं 3 के उत्तर विद्यार्थी इकाई से स्वयं जाँच करें।

इकाई–14

बहुव्रीहि तथा द्वन्द्व समास

उपर्युक्त दोनों समासों से सम्बन्धित सूत्रों की व्याख्या तथा उदाहरण, समस्त–पदों की समास विग्रह–प्रक्रिया का सूत्रोल्लेख पूर्वक निरूपण

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 शेषो बहुव्रीहिः – अधिकार सूत्र

14.3 अनेकमन्यपदार्थे

14.4 पूर्वनिपात के सूत्र

14.4.1 सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ

14.4.2 हलदन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम्

14.4.3 समासान्त प्रत्यय

14.5 द्वन्द्व समास

14.5.1 द्वन्द्व समास के चतुर्विध भेद

14.6 पूर्वनिपात के नियम

14.6.1 द्वन्द्वे घि

14.6.2 अजाद्यदन्तम्

14.6.3 अल्पाच्तरम्

14.6.4 एकशेष द्वन्द्व

14.7 समाहार अर्थ में द्वन्द्व समास

14.8 बोध–प्रश्न

14.9 कतिपय उपयोगी पुस्तकें

14.10 बोध–प्रश्नों के उत्तर

14.0 उद्देश्य

बहुव्रीहि समास – यह भी समास का प्रमुख भेद है। इसमें प्रायः अन्य पद (निर्धारित दो या तीन पदों) से अतिरिक्त पद के अर्थ की प्रधानता होती है। अन्य पदार्थ प्रधान होने के कारण ही इस समास का लिङ्ग और वचन भी वही होता है जो अन्य पद का रहता है। इसके विवेचन का मुख्य उद्देश्य लौकिक एवम् अलौकिक विग्रह वाक्यों का बोध करके प्रवृत्ति निवृत्ति रूप व्यवहार में लाना है।

द्वन्द्व समास – समासों के अन्तर्गत यह भी एक महत्त्वपूर्ण समास है इस द्वन्द्व शब्द को सूत्रकार पाणिनि ने द्वन्द्वं

रहस्यमर्यादावचनव्युत्क्रमणयज्ञपात्रप्रयोगाभिव्यक्तिषु (सूत्र 8। 1। 15) के अनुसार अनेक अर्थों में निपातन द्वारा ग्रहण किया है। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने स्वयं को 'द्वन्द्वः सामासिकस्य च' द्वारा समासों में द्वन्द्व समास कहा है। इस तरह द्वन्द्व के वास्तविक स्वरूप एवं उसके भेदों का विवेचन करना ही प्रमुख उद्देश्य है।

14.1 प्रस्तावना

बहुव्रीहि शब्द में भी चूँकि अन्य पदार्थ के अर्थ की प्रधानता है जिसे सर्वप्रथम समझ कर इससे सम्बन्धित अधिकार सूत्र के अन्तर्गत आने वाले विधि सूत्रों का समुचित ज्ञान करना है।

बहुव्रीहि – बहवः व्रीहयः यस्य यस्मिन् वा– लौकिक विग्रह (प्रचुर धान्यराशि है जिसमें)

बहु जस् व्रीहि जस् – अलौकिक विग्रह

इसी प्रकार से सूत्रार्थ के स्पष्टीकरण के साथ तत्तत् उदाहरण वाक्यों का यथाक्रम बोध किया जाना है।

14.2 शेषो बहुव्रीहिः (पा. सू. 2। 2। 23)

यह अधिकार सूत्र है। शेष शब्द का अर्थ है – उक्तादन्यः शेषः। अर्थात् कहे जाने से जो बचा रहता है वह शेष है। इस तरह द्वन्द्व समास से पूर्व प्रथमान्त पदों में होने वाला समास बहुव्रीहि संज्ञक होता है।

14.3 अनेकमन्यपदार्थे (पा.सू. 2। 2।24)

अनेक प्रथमा विभक्त्यन्त पदों का अन्य पद के अर्थ में विकल्प से समास होता है और वह बहुव्रीहि समास कहलाता है।

बहुव्रीहि समास में प्रायः अन्य पद के अर्थ की प्रधानता दिखाई पड़ती है – अन्यपदार्थप्रधानः बहुव्रीहिः। यहाँ पूर्व अथवा उत्तरपद के अर्थ की प्रधानता न होकर प्रायः अन्य किसी तीसरे पद के अर्थ की प्रधानता दिखाई पड़ती है और वह बहुव्रीहि समास कहलाता है। इस समास में 'यत्' शब्द की द्वितीया से लेकर सप्तमी विभक्ति तक का प्रयोग अन्य पद के अर्थ का कथन करने के लिए किया जाता है। यथा – यम्, येन, यस्मै, यस्मात्, यस्य, यस्मिन्।

14.4 पूर्वनिपात के सूत्र

14.4.1 सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ (पा. सू. 2। 2। 35)

सप्तम्यन्त एवं विशेषण वाचक शब्द का बहुव्रीहि समास में पूर्व प्रयोग होता है।

14.4.2 हलदन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम् (पा.सू. 6। 3। 8)

संज्ञा अर्थ के गम्यमान होने पर हलन्त एवं अदन्त शब्दों से परे सप्तमी विभक्ति का लुक् नहीं होता है। उदाहरण –

कण्ठेकालः कण्ठे कालः यस्य – लौकिक विग्रह

कण्ठ ङि काल सु – अलौकिक विग्रह

यहाँ अकारान्त 'कण्ठ' शब्द के अनन्तर सप्तमी विभक्ति के एकवचन का 'ङि' प्रत्यय विद्यमान है, जिसमें गुण करके 'कण्ठे' शब्द निष्पन्न हुआ है। चूँकि यह सप्तम्यन्त पद है अतः 'सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ' सूत्र से पूर्व प्रयोग किया गया है। इस सप्तम्यन्त के पूर्व प्रयोग के ज्ञापन से यहाँ व्यधिकरण बहुव्रीहि समास किया गया है। तदनन्तर प्रातिपदिक संज्ञा करके विभक्ति लोप प्राप्त है किन्तु 'हलदन्तात्सप्तम्याः संज्ञायाम्' सूत्र से सप्तमी विभक्ति का अलुक् एवं अन्य का लोप 'कण्ठेकाल' शब्द की पुनः प्रातिपदिक संज्ञा, प्रथमा

एकवचन में सुप्रत्यय एवं रुत्वविसर्ग कर देने पर 'कण्ठेकालः' प्रयोग निष्पन्न होता है।

विशेषणपूर्वपद का उदाहरण –

चित्रगुः	चित्राः गावः यस्य सः	–	लौकिक विग्रह
	चित्रा जस् गो जस्	–	अलौकिक विग्रह
उरसिलोमा	उरसि लोमानि यस्य सः	–	लौकिक विग्रह
	उरस् ङि लोमन् जस्	–	अलौकिक विग्रह
शरजन्मा	शरेषु जन्म यस्य सः	–	लौकिक विग्रह
	शर ङि जन्म सु	–	अलौकिक विग्रह
अग्रजन्मा	अग्रे जन्म यस्य सः	–	लौकिक विग्रह
	अग्रे जन्म सु	–	अलौकिक विग्रह
इन्दुमौलिः	इन्दुः मौलौ यस्य सः	–	लौकिक विग्रह
	इन्दु सु मौलि ङि	–	अलौकिक विग्रह
चन्द्रमौलिः	चन्द्रः मौलौ यस्य सः	–	लौकिक विग्रह
	चन्द्र सु मौलि ङि	–	अलौकिक विग्रह
दण्डपाणिः	दण्डः पाणौ यस्य सः	–	लौकिक विग्रह
	दण्ड सु पाणि ङि	–	अलौकिक विग्रह
चक्रपाणिः	चक्रं पाणौ यस्य सः	–	लौकिक विग्रह
	चक्र सु पाणि ङि	–	अलौकिक विग्रह
पद्मनाभः	पद्मं नाभौ यस्य सः	–	लौकिक विग्रह
	पद्म सु नाभि ङि	–	अलौकिक विग्रह

समानाधिकरण बहुव्रीहि के उदाहरण –

1.	**प्राप्तोदकः (ग्रामः)**	प्राप्तम् उदकं यम्	–	लौकिक विग्रह
		प्राप्त सु उदक सु	–	अलौकिक विग्रह
2.	**ऊढरथः (अनड्वान्)**	ऊढः रथः येन	–	लौकिक विग्रह
		ऊढ सु रथ सु	–	अलौकिक विग्रह
3.	**उपहृतपशुः (रुद्रः)**	उपहृतः पशुः यस्मै	–	लौकिक विग्रह
		उपहृत सु पशु सु	–	अलौकिक विग्रह
4.	**उद्धृतौदना (स्थाली)**	उद्धृतम् ओदनम् यस्याः	–	लौकिक विग्रह
		उद्धृत सु ओदन सु	–	अलौकिक विग्रह

5.	**पीताम्बरः (हरिः)**	पीतम् अम्बरं यस्य	–	लौकिक विग्रह
		पीत सु अम्बर सु	–	अलौकिक विग्रह
6.	**वीरपुरुषकः (ग्रामः)**	वीराः पुरुषाः यस्मिन्	–	लौकिक विग्रह
		वीर जस् पुरुष जस्	–	अलौकिक विग्रह

यहाँ प्रथम उदाहरण वाक्य में 'शेषो बहुव्रीहिः' के अधिकार में 'अनेकमन्यपदार्थे' सूत्र से अनेक प्रथमान्त के अन्य पद के अर्थ में मिलने से बहुव्रीहि समास, प्रातिपदिक संज्ञा करके विभक्ति का लोप, पुनः प्रातिपदिक संज्ञा करके प्रथमा विभक्ति एकवचन में सुप्रत्यय, 'प्राप्त उदक सु' इस दशा में अकार एवं उकार के स्थान पर गुणरूप एकादेश तथा सुप्रत्यय के स्थान पर रुत्व एवं विसर्ग कर देने पर 'प्राप्तोदकः' प्रयोग निष्पन्न होता है।

द्वितीय एवं तृतीय उदाहरण वाक्यों में 'अनेकमन्यपदार्थे' सूत्र से समास आदि कार्य पूर्ववत् हैं।

चतुर्थ वाक्य में भी पूर्ववत् समास आदि करके पुनः प्रथमा एकवचन में सुप्रत्यय स्त्रीत्वविवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' से टाप् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप 'उद्धृत ओदन आ सु' इस दशा में अकार एवम् ओकार के स्थान पर वृद्धि एकादेश 'उद्धृतौदन आ सु' इस दशा में सवर्ण दीर्घ एवं सु प्रत्यय का हल्ङ्यादि लोप करने पर यह प्रयोग निष्पन्न होता है।

पञ्चम उदाहरण वाक्य में पूर्ववत् समास आदि कार्य, पीत एवं अम्बर शब्दस्थ अकार में सवर्णदीर्घ एकादेश तथा पुनः प्रातिपदिक संज्ञा करके प्रथमा एकवचन में सुप्रत्यय एवं रुत्व विसर्ग करने पर यह प्रयोग निष्पन्न होता है।

षष्ठ उदाहरण वाक्य में पूर्ववत् 'शेषो बहुव्रीहिः' के अधिकार में 'अनेकमन्यपदार्थे' सूत्र से समास, प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति लोप, 'शेषाद्विभाषा' सूत्र से कप् प्रत्यय अनुबन्ध लोप, 'वीरपुरुषक' शब्द की पुनः प्रातिपदिकसंज्ञा प्रथमा एकवचन में सुप्रत्यय एवं रुत्व विसर्ग करने पर 'वीरपुरुषकः' उदाहरण निष्पन्न होता है।

नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः

नञ् के बाद 'अस्ति' अर्थ को कहने वाले प्रथमान्त शब्द का अन्य प्रथमान्त शब्द के साथ विकल्प से समास होता है एवं पूर्वपद में विद्यमान उत्तरपद का विकल्प से लोप हो जाता है। उदाहरण–

अपुत्रः अविद्यमानः पुत्रः यस्य – लौकिक विग्रह

अविद्यमान सु पुत्र सु – अलौकिक विग्रह

यहाँ 'न विद्यमान' इस अर्थ में 'अविद्यमान' शब्द का 'पुत्र' शब्द के साथ प्रकृत वार्तिक की सहायता से बहुव्रीहि समास, 'कृत्तद्धितसमासाश्च' सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा एवं 'सुपो धातु प्रातिपदिकयोः' से दोनों ही विभक्तियों का लुक् एवं पूर्ववार्तिक से ही नञ् के उत्तर में स्थित 'विद्यमान' पद का विकल्प से लोप 'अपुत्र' इस स्थिति में पुनः प्रातिपदिकसंज्ञा, प्रथमा एकवचन में सुप्रत्यय एवं रुत्व विसर्ग करने पर 'अपुत्रः', पक्ष में उत्तरपद का लोप न होने पर 'अविद्यमानः पुत्रः' वाक्य बनते हैं। इसी प्रकार–

अनाथः	अविद्यमानः नाथः यस्य	–	लौकिक विग्रह
	अविद्यमान सु नाथ सु	–	अलौकिक विग्रह
अकरुणः	अविद्यमाना करुणा यस्य	–	लौकिक विग्रह

	अविद्यमान सु करुणा सु	–	अलौकिक विग्रह
अरोगः	अविद्यमानः रोगः यस्य सः	–	लौकिक विग्रह
	अविद्यमान सु रोग सु	–	अलौकिक विग्रह
अक्रोधः	अविद्यमानः क्रोधः यस्य सः	–	लौकिक विग्रह
अभार्यः	अविद्यमाना भार्या यस्य सः	–	लौकिक विग्रह
	अविद्यमान सु भार्या सु	–	अलौकिक विग्रह
अकर्मकः	अविद्यमानं कर्म यस्य सः	–	लौकिक विग्रह
	अविद्यमान सु कर्म सु	–	अलौकिक विग्रह
अकायः	अविद्यमानः कायः यस्य सः	–	लौकिक विग्रह।
	अविद्यमान सु काय सु	–	अलौकिक विग्रह

14.4.3 समासान्त प्रत्यय

द्वित्रिभ्यां षः मूर्ध्नः (पा.सू. 5। 4। 115)

बहुव्रीहि समास में द्वि और त्रि शब्द के पश्चात् विद्यमान 'मूर्धन्' शब्द से समासान्त 'ष' प्रत्यय होता है।

यहाँ 'ष' प्रत्यय के षकार की इत्संज्ञा एवं लोप की स्थिति में षित् मानकर स्त्रीत्व विवक्षा में 'षिद्गौरादिभ्यश्च' सूत्र से ङीष् प्रत्यय किया जाता है। उदाहरण –

द्विमूर्धः द्वौ मूर्धानौ यस्य – लौकिक विग्रह

द्वि औ मूर्धन औ – अलौकिक विग्रह

यहाँ 'अनेकमन्यपदार्थे' सूत्र से बहुव्रीहि समास प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति लोप 'द्विमूर्धन्' इस स्थिति में 'द्वित्रिभ्यां षः मूर्ध्नः' सूत्र से समासान्त 'ष' प्रत्यय 'षः प्रत्ययस्य' सूत्र से षकार का लोप 'द्विमूर्धन् अ' इस दशा में 'यचि भम्' से द्विमूर्धन् शब्द की भसंज्ञा एवं 'अचोऽन्त्यादि टि' सूत्र से 'अन्' भाग की टिसंज्ञा, 'नस्तद्धिते' सूत्र से टिभाग का लोप, 'द्विमूर्ध' शब्द की प्रातिपदिक संज्ञा करके प्रथमा एकवचन में सुप्रत्यय एवं रुत्व विसर्ग करने पर 'द्विमूर्धः' शब्द निष्पन्न होता है।

इसी प्रकार –

त्रिमूर्धः त्रयः मूर्धानः यस्य – लौकिक विग्रह

त्रि जस् मूर्धन् जस् – अलौकिक विग्रह

अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्नः (पा. सू. 5। 4। 117)

बहुव्रीहि समास में अन्तर् तथा बहिः शब्दों (अव्ययों) के पश्चात् लोमन् शब्द के विद्यमान होने पर समासान्त अप् प्रत्यय होता है (इस प्रत्यय में 'अ' शेष रहता है)। उदाहरण –

अन्तर्लोमः अन्तः लोमानि यस्य – लौकिक विग्रह

अन्तर् लोमन् जस् – अलौकिक विग्रह

बहिर्लोमः बहिः लोमानि यस्य – लौकिक विग्रह

बहिः लोमन् जस् – अलौकिक विग्रह

यहाँ 'अनेकमन्यपदार्थे' सूत्र से बहुव्रीहि समास प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति लोप, अन्तर् लोमन्, बहिः लोमन् शब्दों से प्रकृत सूत्र से समासान्त अप् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, अन्तर् लोमन् अ, बहिः लोमन् अ इस स्थिति में 'यचि भम्' से भसंज्ञा, 'अचोऽन्त्यादि टि' से टिसंज्ञा 'नस्तद्धिते' सूत्र से टि संज्ञक अन् भाग का लोप, अन्तर्लोम, बहिः के विसर्ग के स्थान पर सकार एवं 'ससजुषो रुः' से रुत्व करने पर बर्हिर्लोम शब्द की प्रातिपदिक संज्ञा प्रथमा एकवचन में सुप्रत्यय एवं रुत्व विसर्ग कर देने पर अन्तर्लोमः, बहिर्लोमः शब्द निष्पन्न होते हैं।

निष्ठा (पा. सू. 2। 2। 136)

बहुव्रीहि समास में निष्ठाप्रत्ययान्त शब्द का पूर्व प्रयोग होता है।

क्त एवं क्तवतु प्रत्ययों की निष्ठा संज्ञा होती है। ये प्रत्यय जिन शब्दों के अन्त में होते हैं वे निष्ठा प्रत्ययान्त शब्द कहे जाते हैं। इस तरह उन निष्ठा प्रत्ययान्त शब्दों का बहुव्रीहि समास में पूर्वप्रयोग किया जाता है। उदाहरण–

युक्तयोगः युक्तः योगः येन सः जिसका योग सफल हो गया है = सिद्ध योगी। लौकिक विग्रह।

युक्त सु योग सु – अलौकिक विग्रह

यहाँ 'अनेकमन्यपदार्थे' से पूर्ववत् समास प्रातिपदिकसंज्ञा एवं विभक्तिलोप करके प्रकृत सूत्र से निष्ठा प्रत्ययान्त 'युक्त' शब्द का पूर्व प्रयोग, पुनः प्रातिपदिकसंज्ञा सुप्रत्यय एवं रुत्व विसर्ग कर देने पर 'युक्तयोगः' शब्द निष्पन्न होता है। इसी प्रकार –

कृतकृत्यः	कृतं कृत्यं येन सः	–	लौकिक विग्रह
	कृत सु कृत्य सु	–	अलौकिक विग्रह
कृतकार्यः	कृतं कार्यं येन सः	–	लौकिक विग्रह
	कृत सु कार्य सु	–	अलौकिक विग्रह

14.5 द्वन्द्व समास

प्रस्तावना – यहाँ सर्वप्रथम 'द्वन्द्व' पद के अर्थ को स्पष्ट करके उसके भेदचतुष्टय का प्रतिपादन तथा उन चारों भेदों में से अति उपयोगी दो भेदों का सूत्रोदाहरण सहित विवेचन किया जाना है।

चार्थे द्वन्द्वः (पा. सू. 2। 2। 29)

'च' के अर्थ में विद्यमान अनेक प्रातिपदिक मिलते हैं उससे द्वन्द्व समास होता है।

द्वन्द्व का अर्थ है – द्वौ च द्वौ च द्वन्द्वः। इस तरह द्वन्द्व समास का यह लक्षण व्यवस्थित किया गया है कि – उभयपदार्थप्रधानः द्वन्द्वः। अर्थात् जिस समास में पूर्व एवं उत्तर दोनों ही पदों के अर्थ की प्रधानता होती है वह द्वन्द्व समास कहलाता है इसे सूत्रकार पाणिनि ने 'चार्थे द्वन्द्वः' सूत्र द्वारा व्यवस्थित कर दिया है।

14.5.1 द्वन्द्व समास के चतुर्विध भेद

इस 'च' के अर्थ में होने वाला द्वन्द्व समास चार प्रकार का होता है –

1. समुच्चय 2. अन्वाचय 3. इतरेतरयोग 4. समाहार।

इनके लक्षण क्रमशः इस प्रकार हैं –

1. **समुच्चय** – जहाँ परस्पर निरपेक्ष अनेक पद किसी एक द्रव्य अथवा क्रिया से सम्बन्धित होते हैं तो वह समुच्चय कहलाता है। उदाहरण: 'ईश्वरं गुरुं च भजस्व।' ईश्वर और गुरु का भजन करो।

2. **अन्वाचय** – जब दो पदों में से एक मुख्य तथा दूसरा गौण रूप में भिन्न-भिन्न क्रिया से युक्त होता है तो वह अन्वाचय कहलाता है। उदाहरणत: भिक्षाम् अट गां चानय। भिक्षा को जाओ और गाय को भी लेते आना। यहाँ भिक्षा के लिए अटन मुख्य तथा गाय का आनयन गौण है। इन दोनों भेदों में सामर्थ्य का अभाव होने से समास नहीं होता है।

3. **इतरेतरयोग** – जब परस्पर सापेक्ष अनेक पदार्थ मिलकर किसी एक क्रिया आदि से युक्त होते हैं तो वह इतरेतर योग कहलाता है। उदाहरणत: धवखदिरौ छिन्धि (धव और खदिर के पेड़ को काटो) यहाँ धव और खदिर समूह के रूप में छेदन क्रिया में कर्म के रूप में युक्त हो रहे हैं। अत: यहाँ इतरेतर योग द्वन्द्व है।

4. **समाहार** – समाहार का अर्थ है समूह। इसकी यह विशेषता है कि समाहार अर्थ वाले समूह के अवयव अलग भासित न होकर समुच्चय रूप होते हैं। फलत: यहाँ हमेशा एकवचन तथा नपुंसक लिङ्ग का प्रयोग होता है। उदाहरणत: – संज्ञापरिभाषम्। संज्ञा और परिभाषा का समूह।

14.6 पूर्वनिपात के नियम

14.6.1 द्वन्द्वे घि (पा. सू. 2। 2। 32)

द्वन्द्व समास में घिसंज्ञक शब्द का पूर्व प्रयोग होता है।

'शेषो घ्यसखि' सूत्र से इकारान्त, उकारान्त किन्तु सखि शब्द को छोड़कर अन्य की घि संज्ञा होती है। इस तरह प्रकृत नियम से इस घिसंज्ञक शब्द का पूर्व प्रयोग होता है। उदाहरण –

हरिहरौ – हरिश्च हरश्च – लौकिक विग्रह

हरि सु हर सु – अलौकिक विग्रह

यहाँ 'चार्थे द्वन्द्व:' सूत्र से हरि और हर शब्द का इतरेतर योग में द्वन्द्वसमास प्रातिपदिक संज्ञा करके विभक्तियों का लोप 'द्वन्द्वे घि' सूत्र से घिसंज्ञक हरि शब्द का पूर्वप्रयोग, पुन: प्रातिपदिक संज्ञा करके प्रथमा द्विवचन में औ प्रत्यय, 'वृद्धिरेचि' सूत्र से वृद्धि रूप एकादेश करने पर 'हरिहरौ' प्रयोग निष्पन्न होता है।

14.6.2 अजाद्यदन्तम् (पा. सू. 2। 2। 33)

अजादि (अच् आदि) एवं अकारान्त शब्द का द्वन्द्व समास में पूर्व में प्रयोग किया जाता है अर्थात् ऐसा शब्द जो अजादि (अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ओ, ऐ, औ) में से कोई भी स्वर पद के प्रारम्भ में हो तथा वह अकारान्त भी हो तो उसका इस द्वन्द्व समास में पूर्व प्रयोग किया जाता है। उदाहरण–

ईशकृष्णौ – ईशश्च कृष्णश्च – लौकिक विग्रह

ईश सु कृष्ण सु – अलौकिक विग्रह

यहाँ 'चार्थे द्वन्द्व:' सूत्र से इतरेतर योग द्वन्द्व समास, प्रातिपदिकसंज्ञा करके दोनों विभक्तियों का लोप 'अजाद्यदन्तम्' सूत्र से अजादि एवं अकारान्त 'ईश' शब्द का पूर्व प्रयोग, पुन: प्रातिपदिक संज्ञा, प्रथमा द्विवचन में औ प्रत्यय एवं वृद्धि रूप एकादेश करने पर 'ईशकृष्णौ' प्रयोग निष्पन्न होता है। इसी प्रकार –

अस्त्रशस्त्रम् अस्त्राणि च शस्त्राणि च तेषां समाहार: – लौकिक विग्रह

	अस्त्र जस् शस्त्र जस्	–	अलौकिक विग्रह
उष्ट्रखरम्	उष्ट्राश्च खराश्च तेषां समाहारः	–	लौकिक विग्रह
	उष्ट्र जस् खर जस्	–	अलौकिक विग्रह
उष्ट्रशशकम्	उष्ट्राश्च शशकाश्च तेषां समाहारः	–	लौकिक विग्रह
	उष्ट्र जस् शशक जस्	–	अलौकिक विग्रह
अश्वरथम्	अश्वाश्च रथाश्च तेषां समाहारः	–	लौकिक विग्रह
	अश्व जस् रथ जस्	–	अलौकिक विग्रह

14.6.3 अल्पाच्तरम् (पा. सू. 2। 2। 34)

पूर्व एवं उत्तर दोनों पदों में से जिसमें सबसे कम स्वर दिखाई पड़ता है उस पद का द्वन्द्व समास में पूर्व प्रयोग होता है। उदाहरण –

शिवकेशवौ – शिवश्च केशवश्च – लौकिक विग्रह

शिव सु केशव सु – अलौकिक विग्रह

यहाँ शिव एवं केशव शब्द में 'चार्थे द्वन्द्वः' सूत्र में इतरेतर योग द्वन्द्व समास, प्रातिपदिकसंज्ञा करके दोनों पदों की विभक्तियों का लोप, 'अल्पाच्तरम्' सूत्र से अल्प अच् वाले 'शिव' शब्द का पूर्व प्रयोग, पुनः प्रातिपदिकसंज्ञा प्रथमा द्विवचन में 'औ' प्रत्यय वृद्धिरेचि सूत्र में वृद्धि रूप एकादेश करने पर यह प्रयोग निष्पन्न होता है। इसी प्रकार –

प्लक्षन्यग्रोधम्	प्लक्षश्च न्यग्रोधश्च	–	लौकिक विग्रह
	प्लक्ष सु न्यग्रोध सु	–	अलौकिक विग्रह
धवखदिरौ	धवश्च खदिरश्च	–	लौकिक विग्रह
	धव सु खदिर सु	–	अलौकिक विग्रह

विशेष :– एक से अधिक अल्पाच् होने पर एक का पूर्वनिपात अवश्य होता है। यथा – शङ्खदुन्दुभिवीणाः, शङ्खवीणादुन्दुभयः, वीणाशङ्खदुन्दुभयः, वीणादुन्दुभिशङ्खाः। इस सूत्र से सम्बन्धित अनेक वार्तिक व्यवस्थित किये गये हैं जिन्हें कौमुदीग्रन्थ से समझा जा सकता है।

आनङ् ऋतो द्वन्द्वे (पा.सू. 6। 3। 24)

विद्या एवं योनि सम्बन्धवाची ऋकारान्त शब्दों से द्वन्द्व समास में आनङ् आदेश होता है उत्तरपद परे रहते।

यहाँ आनङ् आदेश के विधान हेतु दो प्रकार के सम्बन्ध को ग्रहण किया गया है। एक विद्या सम्बन्ध जो गुरु, आचार्य आदि से होता है तथा दूसरा योनि अर्थात् रक्त सम्बन्ध जो माता–पिता से प्राप्त होता है। यह आनङ् आदेश ङित् होने के कारण अन्तिम वर्ण के स्थान पर होता है।

14.6.4 पिता मात्रा (पा. सू. 1। 2। 70)

मातृ शब्द के साथ पितृ शब्द का प्रयोग होने विकल्प से पितृ शब्द का एकशेष हो जाता है। उदाहरण –

पितरौ, मातापितरौ – माता च पिता च – लौकिक विग्रह

मातृ सु पितृ सु – अलौकिक विग्रह

यहाँ 'चार्थे द्वन्द्वः' सूत्र से इतरेतरयोग द्वन्द्व समास प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति लोप 'आनङ् ऋतो द्वन्द्वे' सूत्र से मातृ शब्द के ऋकार के स्थान पर 'ङिच्च' सूत्र की सहायता से आनङ् आदेश 'मात् आनङ् पितृ' इस स्थिति में अनुबन्ध लोप एवं 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' से 'न' का लोप, पुनः प्रातिपदिक संज्ञा करके प्रथमा द्विवचन में 'औ प्रत्यय' 'ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः' से पितृ शब्द के ऋकार को अ गुण तथा 'उरण रपरः' सूत्र से र पर 'मातापितरौ' इस स्थिति में 'पिता मात्रा' सूत्र से एकशेष होने पर 'पितरौ' एवं पक्ष में 'मातापितरौ' ये दो प्रयोग निष्पन्न होते हैं।

14.7 द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् (पा.सू. 2।4।2) समाहार अर्थ में द्वन्द्व समास

प्राण्यङ्गवाचक, तूरी आदि वाद्य अङ्ग वाचक एवं सेनाङ्गवाचक शब्दों का द्वन्द्व समास में एकवद्भाव होता है।

यहाँ एकवद्भाव का अर्थ है – एक साथ मिलकर समाहार रूप अर्थ का कथन करना। 'प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्' शब्द में द्वन्द्व समास किया गया है –

प्राणी च तूर्यं च सेना च इति प्राणितूर्यङ्ग सेनाः, तासामङ्गानि इति प्राणितूर्यसेनाङ्गानि तेषाम्। उदाहरण –

पाणिपादम् –	पाणी च पादौ च एषां समाहारः	–	लौकिक विग्रह
	पाणि औ पाद औ	–	अलौकिक विग्रह
मादर्ङ्गिकवैणविकम्	मादर्ङ्गिकाश्च वैणविकाश्च एषां समाहारः	–	लौकिक विग्रह
	मादर्ङ्गिक जस् वैणविक जस्	–	अलौकिक विग्रह
रथिकाश्वारोहम्	रथिकाश्च अश्वारोहाश्च एषां समाहारः	–	लौकिक विग्रह
	रथिक जस् अश्वारोह जस्	–	अलौकिक विग्रह

इन सभी उदाहरण वाक्यों में 'चार्थे द्वन्द्वः' सूत्र से समाहार द्वन्द्व समास, प्रातिपदिक संज्ञा करके विभक्तियों का लोप, पुनःप्रातिपदिक संज्ञा, 'द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्' सूत्र से एकवद्भाव, प्रथमा, एकवचन में सुप्रत्यय 'स नपुंसकम्' से नपुंसक संज्ञा करके 'अतोऽम्' सूत्र से सु को अम् आदेश एवं 'अमि पूर्वः' से पूर्वरूप एकादेश करने पर ये प्रयोग निष्पन्न होते हैं। इसी प्रकार –

शिरोग्रीवम् –	शिरश्च ग्रीवा च अनयोः समाहारः	–	लौकिक विग्रह
	शिरस् सु ग्रीवा सु	–	अलौकिक विग्रह
उष्ट्रखरम् –	उष्ट्राश्च खराश्च एषां समाहारः	–	लौकिक विग्रह
	उष्ट्र जस् खर जस्	–	अलौकिक विग्रह

क्षुद्रजन्तवः (पा.सू. 2। 4। 8)

क्षुद्रजन्तुवाची शब्दों का समाहार द्वन्द्व समास में एकवद्भाव होता है। उदाहरण –

यूकालिक्षम् –	यूकाश्च लिक्षाश्च एषां समाहारः	–	लौकिक विग्रह
	यूका जस् लिक्ष जस्	–	अलौकिक विग्रह

यहाँ 'चार्थे द्वन्द्वः' सूत्र से समाहार द्वन्द्वसमास, प्रातिपदिकसंज्ञा करके विभक्तियों का लोप, पुनः प्रातिपदिकसंज्ञा, 'क्षुद्रजन्तवः' सूत्र से क्षुद्र जन्तुवाची यूका एवं लिक्षा शब्दों का समाहार द्वन्द्व में एकवद्भाव होने से प्रथमा एकवचन

में सुप्रत्यय, 'स नपुंसकम्' में नपुंसक संज्ञा करने पर 'यूकालिक्षम्' प्रयोग निष्पन्न होता है। (सिर के बालों में पसीने के कारण उत्पन्न होने वाले जन्तु विशेष यूका और लिक्षा (लीख) कहलाते हैं)।

विशेष : यहां यह धातव्य है कि नेवले से लेकर अवर सभी प्राणी क्षुद्र जन्तु के अन्तर्गत गिने जाते हैं।

येषां च विरोधः शाश्वतिकः (पा. सू. 2। 4। 9)

जिन जीवों का जन्मजात विरोध होता है उनमें भी समाहारद्वन्द्व में एकवद्भाव होता है। यहाँ विरोध शब्द का अर्थ वैर है न कि 'साथ-साथ न रहना' यह अर्थ। अतः स्वाभाविक वैर, शत्रुता अर्थ प्रकट होने पर समाहार द्वन्द्व में एकवद्भाव होता है। उदाहरण –

अहिनकुलम् –	अहयः नकुलाश्च	–	लौकिक विग्रह
	अहि जस् नकुल जस्	–	अलौकिक विग्रह
गोव्याघ्रम् –	गावश्च व्याघ्राश्च	–	लौकिक विग्रह
	गो जस् व्याघ्र जस्	–	अलौकिक विग्रह
काकोलूकम्–	काकाश्च उलूकाश्च	–	लौकिक विग्रह
	काक जस् उलूक जस्	–	अलौकिक विग्रह

इन सभी उदाहरणों में 'चार्थे द्वन्द्वः' सूत्र से समाहार द्वन्द्व समास प्रातिपदिक संज्ञा करके विभक्तियों का लोप, पुनः प्रातिपदिक संज्ञा, 'येषां च विरोधः शाश्वतिकः' सूत्र से एकवद्भाव होने से प्रथमा एकवचन में सुप्रत्यय, 'अतोऽम्' सूत्र से 'सु' के स्थान पर अम् आदेश एवं पूर्वरूप करने पर ये प्रयोग निष्पन्न होते हैं।

14.8 बोध-प्रश्न

1. 'च' के चार अर्थों का सोदाहरण विवेचन कीजिए।
2. इतरेतर द्वन्द्व और समाहारद्वन्द्व में किस-किस लिङ्ग और वचन का प्रयोग किया जाता है।
3. निम्नलिखित सूत्रों की सोदाहरण व्याख्या करें –

   1. चार्थे द्वन्द्वः 2. अजाद्यदन्तम् 3. पिता मात्रा

   4. आनङ्ऋतो द्वन्द्वे 5. द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्।
4. अधोलिखित प्रयोगों की विग्रहपूर्वक ससूत्र सिद्धि करें –

   पितरौ, हरिहरौ, यूकालिक्षम्, रथिकाश्वारोहम्, काकोलूकम्।
5. बहुव्रीहि समास का लक्षण स्पष्ट कीजिए।
6. अधोलिखित सूत्रों की सोदाहरण व्याख्या कीजिए –

   1. अनेकमन्यपदार्थे, 2. सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ

   3. हलदन्तात्सप्तम्याः संज्ञायाम् 4. अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्नः।
7. निष्ठा सूत्र का सोदाहरण स्पष्ट विवेचन कीजिए।
8. विग्रहप्रदर्शनपूर्वक अधोलिखित शब्दों की ससूत्र सिद्धि कीजिए –

1. उद्धृतौदना 2. कण्ठेकालः 3. अपुत्रः 4. युक्तयोगः, 5. त्रिमूर्धः

9. निम्नलिखित विग्रहों को समास रूप दीजिए –

1. वीराः पुरुषाः यस्मिन् 2. चित्राः गावः यस्य

3. अविद्यमानः पुत्रः यस्य 4. अन्तः लोमानि यस्य

14.9 कतिपय उपयोगी पुस्तकें

1. लघुसिद्धान्तकौमुदी – भैमी व्याख्या सहित – पं. भीमसेन शास्त्री, भैमी प्रकाशन, दिल्ली

2. लघुसिद्धान्तकौमुदी – डॉ अर्कनाथ चौधरी, जयपुर

3. लघुसिद्धान्तकौमुदी – महेश कुशवाहा, वाराणसी

4. प्रौढ़ रचनानुवादकौमुदी – कपिलदेव द्विवेदी, वाराणसी

14.10 बोध–प्रश्नों के उत्तर

1. द्रष्टव्य, 14.6.1

2. द्रष्टव्य, 14.6.1

3. द्रष्टव्य, 14.6 से 14.8 पर्यन्त इकाई

4. द्रष्टव्य, 14.6 से 14.8 पर्यन्त इकाई

5–9 इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी 14.2 से 14.4 तक अंश में से स्वयं खोजें।

इकाई–15

संस्कृत निबन्ध

निम्नलिखित विषयों पर संस्कृत में निबन्ध का लेखन –

भारतीयसंस्कृतिः, विद्यामाहात्म्यम् (विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्), परोपकारः (परोपकाराय सतां विभूतयः), सत्संगतिः (सत्संगति कथय किं न करोति पुंसाम्), गीताया महत्त्वम्, अहिंसा परमो धर्मः, धर्म एव त्रिवर्गसारः, संस्कृतभाषाया महत्त्वम्, आधुनिकयुगे संस्कृतशिक्षायाः स्थितिः, अस्माकं राष्ट्रियाः समस्याः।

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 भारतीयसंस्कृतेः वैशिष्ट्यम्

15.3 विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्

15.4 परोपकारः

15.5 सत्संगतेः महत्त्वम्

15.6 गीतायाः महत्त्वम्

15.7 अहिंसा परमो धर्मः

15.8 संस्कृतभाषायाः महत्त्वम्

15.9 आधुनिकयुगे संस्कृतशिक्षायाः स्थितिः

15.10 सदाचारः

15.11 धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम्

15.12 अस्माकं राष्ट्रियाः समस्याः

15.13 बोध–प्रश्न

15.14 सहायक पुस्तकें

15.15 बोध–प्रश्नों के उत्तर

15.0 उद्देश्य

निबन्ध का अर्थ है - सरल सुबोध और ललित पदावली में किसी विषय का पूर्णरूपेण ज्ञान कराना। क्लिष्ट, जटिल एवं दीर्घसमासयुक्त पदों से भाषा दुरूह हो जाती है, जिससे विषय का स्वारस्य विनष्ट हो जाता है, अतः निबन्ध लेखन में कालिदास की शैली का आश्रय ग्रहण करना चाहिए न कि बाण, दण्डी अथवा सुबन्धु की लम्बी समस्तपदावली।

प्रकृत प्रकरण का प्रमुख उद्देश्य भारतीय संस्कृति से लेकर शाश्वत मूल्यों से सम्बन्धित निबन्धों के साथ समसामयिक निबन्धों के द्वारा घटित होने वाली घटनाओं का ज्ञान कराके उनके समाधान हेतु स्वयं के चिन्तन को सकारात्मक दिशा देना है।

15.1 प्रस्तावना

यहाँ भारतीय संस्कृति की सार्वजनीन एवं सार्वकालिक विशेषताओं, विद्या की श्रेष्ठता के अवबोधपूर्वक जीवन में उचितानुचित का विचार करके सामाजिक समरसता पैदा करना, सज्जनों की संगति, गीता का महत्त्व उसमें प्रतिपादित कर्म-भक्ति एवं ज्ञानमार्ग में से किसी के आचरण से जीवन के चरम लक्ष्य को प्राप्त करना, धर्म अर्थ एवं काम पुरुषार्थ में धर्म की श्रेष्ठता, संस्कृत भाषा का महत्त्व आदि विषयों के साथ आधुनिक युग में संस्कृत शिक्षा की स्थिति आज के सङ्क्रमणकाल में संस्कृत एवं संस्कृति का संरक्षण, संवर्धन तथा आज की राष्ट्रिय समस्याओं को समक्ष रखकर उनके समाधान हेतु विचार किया गया है।

15.2 भारतीयसंस्कृतेः वैशिष्ट्यम्

सम्प्रति 'संस्कृतिः' शब्दोऽनेकधा लब्धप्रचारो दृश्यते। तर्हि का नाम संस्कृतिः, किमर्थं वाऽस्य शब्दस्य भावः? तत्र प्रथमं 'संस्कृतिः' पदस्य व्युत्पत्तिलभ्योऽर्थो विवेचनीयः। समुपसर्गपूर्वकात् कृधातोः निष्पन्नोऽयं संस्कृतिशब्दः संस्करणं परिष्करणं वा चेतसः संस्कारो वा आत्मनः इति अभिधीयते। मानवानां तदन्तर्गतगुणानामध्यात्मतत्त्वानाञ्च संस्कारादिभिः संस्करणं एव संस्कृतिः, मानवजीवनस्य विकासार्थं यत् च विविधं संस्करणाधानं तत् एव संस्कृतिपदवाच्यं भवति। अतएव संस्कृतिः मनसःमलं व्यपनीय स्वान्तं प्रसादयति, चेतसि स्थैर्यं संस्थाप्य अज्ञानावरणादात्मानं मोचयति जनानाञ्च सदाचरणं पोषयति।

जगति मानवसंस्कृतिः विभिन्नेषु विभागेषु विविधरूपैः सह विकसिता वर्तते। अद्यत्वे संसारे याः काश्चन संस्कृतयः सन्ति, तासु भारतीयसंस्कृतिः प्राचीनतमा। सर्वैरपि भारतीयसंस्कृतेः सविशिष्टं महत्त्वं स्वीक्रियते, यतो ह्यस्यामेव मानवसमाजस्य मङ्गलभावना, धर्माचरणोपदेशः, पारलौकिकीभावना वर्णाश्रमव्यवस्थादि च सर्वेऽपि सामाजिकनियमाः प्राप्यन्ते। भारतीयसंस्कृतेः महत्त्वमिदं यत् इयमास्तिक्यसंस्कृतिः, अस्यामेव विश्वबन्धुत्वभावना, अहिंसा, धर्माचरणशीलता, पुनर्जन्मवादः, श्रुतीनां प्रामाण्यं, यज्ञ-यागदीनां महत्त्वम्, कर्मवादः, पुरुषार्थचतुष्टयस्य स्थितिः, मोक्षवादः, तपोमयजीवनम्, त्यागस्य महत्त्वम्, मातृपितृगुरुभक्तिः पञ्चमहायज्ञानाम् ऋणत्रयाणाञ्च परिपालनम् इत्यादि विशेषताः सदैव विद्यमानाः दृश्यन्ते। अत एव समग्रेऽपि संसारे भारतीयसंस्कृतेः स्थानं सर्वोपरि मन्यते।

साम्प्रतं यवनमिश्रसुमेरादिप्राचीनसंस्कृतयः स्मृतिशेषा एवावलोक्यन्ते, परन्तु भारतीयसंस्कृतिः पूर्ववत्अद्यापि परिपोषं गच्छति नितरां चास्माकं भारतीयानां जीवनं विविधसंस्कारैः सामाजिक-व्यवस्थादिभिश्च विशेषयति। भारतीयजीवने या समन्वयात्मिका प्रवृत्तिः परिदृश्यते, मानवसभ्यतायाः सर्वविधं मङ्गलं विधातुं या उदात्ता विचारधारा प्रचरति, सहिष्णुता, सेवा, क्षमा, परोपकारः, सत्यपरता, सहयोगः, मैत्री दयादयश्च ये भावाः सामाजिकेऽस्माकं भारतीयजीवने विलसन्ति, तान् सर्वान् भारतीयसंस्कृतिः एव शिक्षयति। एवञ्च विश्वस्य सर्वा एव मूलभावनाः अस्यामेव संस्कृतौ समुपलभ्यन्ते।

संक्षेपतः सुस्पष्टमस्ति यत् अस्माकं भारतीयसंस्कृतिः जगति पुरातनी विशिष्टतमा च अस्ति। विविधैः विशिष्टगुणैः समन्विता इयं संस्कृतिः समादरणीया वर्तते।

15.3 विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्

ज्ञानार्थक 'विद्' धातोः विद्याशब्दः निष्पन्नः भवति। अस्य अर्थः अस्ति- ज्ञानम्। मनुष्यजीवने ज्ञानस्य विद्याया वा सर्वाधिकं महत्त्वम् अस्ति। ज्ञानयुक्तः पुरुषः समस्ताः विपदः सुखेन तरति, स्वयं सुखी भवति, स्वज्ञानेन प्रकाशं कृत्वा अन्यानपि सुखीकरोति।

विद्या हि सर्वोत्कृष्टं धनं विद्यते, तत् चौराः न चोरयन्ति, भ्रातरः न विभाजयन्ति, राजानः न अपहर्तुं शक्नुवन्ति, तत् भारं न भवति। व्ययेन निरन्तरं वृद्धिं गच्छति। अन्यत् सामान्यं धनं तावत् विनश्यति। किन्तु विद्या वर्धते। विद्यायाः प्रचारेण मनुष्यसमुदायस्य, समाजस्य, राष्ट्रस्य, संसारस्य च कल्याणं उन्नतिश्च भवति।

विद्यायाः बलेनैव अद्य अमेरिकारूसादयो देशाः उन्नतेः शिखरे विद्यन्ते, चन्द्रलोकमपि विजेतुं प्रयतन्ते। विद्या हि माता

इव रक्षति, पिता इव हिते नियोजयति कान्तावत् दुःखं दूरीकृत्य आनन्दं ददाति, प्रेम-प्रसादं च करोति, सा लक्ष्मीं वर्धयति, कीर्तिं च दिक्षु विस्तारयति, कल्पलता इव सा सर्वान् मनोरथान् पूरयति तस्या दानमेव सर्वोत्तममस्ति। अतएव उक्तम् -

किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या॥
सर्वेषामेव दानानां विद्यादानं विशिष्यते॥

विद्यया मनुष्यः विनम्रः भवति, ततः सर्वकार्येषु योग्यः भवति, ततश्च धनं प्राप्नोति ततः परं धर्मं सुखं च लभते। विद्यया यशः वर्धते, विद्या एव मानवम् अन्येभ्यः वैशिष्ट्यं ददाति। उचितानुचितविवेकः विद्यया एव आयाति।

विद्याधनं हि प्रच्छन्नं गुप्तं धनं विद्यते। विदेशे विद्या एव सर्वोत्कृष्टः बन्धुः अस्ति, सा गुरूणामपि गुरुः देवानामपि देवः अस्ति, तस्मात् विद्यावान् सर्वत्र पूज्यते। यथाहि - **स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते।** अतः सर्वैः एकमतेन स्वीकृतम् इदम् - **'विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्'** इति। फलतः यावज्जीवनं विद्यार्जनं करणीयम्।

15.4 परोपकारः

परेषाम् उपकारः परोपकारः कथ्यते। अन्येषां प्राणिनां हितसम्पादनाय यत् किञ्चित् क्रियते तत्परोपकारः कथ्यते।

लोके परोपकारगुणेनैव मनुष्यः सुखशान्तिपूर्णं जीवनं यापयति। समाजसेवा, देशप्रेमभावना देशभक्तिभावना निर्धनोद्धरणभावना परदुःखे त्यागभावना सहानुभूतिश्च परोपकारस्य गुणाः सन्ति। अनया परोपकारभावनया अन्तःकरणं निष्कलुषं शुद्धं निर्मलं च भवति। परोपकारेण हृदयं पवित्रं सत्त्वभावसमन्वितं सरलं सरसं सदयं च भवति। परोपकारिणः जनाः परदुःखं स्वकीयं दुःखमिव मत्त्वा तदपाकरणाय प्रयत्नशीलाः भवन्ति। दीनेभ्यः दानं, निर्धनेभ्यः धनं, रोगिभ्यः औषधीः, वस्त्रहीनेभ्यः वस्त्राणि, क्षुधार्तेभ्यः भोजनादिकं, अशिक्षितेभ्यश्च शिक्षा व्यवस्थां कृत्वा परोपकारिणः सन्तुष्टाः भवन्ति। तेषां तु इदमेव उद्देश्यं भवति यत्-

श्रोत्रं श्रुतेनैव न तु कुण्डलेन, दानेन पाणिर्न तु कङ्कणेन।
विभाति कायः करुणापराणां परोपकारैर्नतु चन्दनेन॥

प्रकृतिरपि सर्वदा परोपकारं शिक्षयति। तदर्थमेव सूर्यःतपति, चन्द्रः कौमुदीं प्रसारयति, वृक्षाः फलानि वितरन्ति, नद्यो वहन्ति मेघाश्च वृष्टिं कुर्वन्ति। यथाहि उक्तमस्ति -

परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः
परोपकाराय वहन्ति नद्यः॥
परोपकाराय दुहन्ति गावः
परोपकाराय इदं शरीरम्॥

शास्त्राणि परोपकारस्य बहु महत्त्वं गायन्ति। सर्वेषां शास्त्राणामुपदेशस्य सारः परोपकार एव। एतेनैव लोकेऽभ्युदयः भवति, शान्तिः सुखं च वर्धते। उक्तमपि अस्ति -

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्॥

15.5 सत्सङ्गतेः महत्त्वम्

सज्जनानां संगतिः साहचर्यम् वा सत्संगतिः भवति। अधमानां पुरुषाणां संगतिः कुसङ्गतिः अस्ति। सत्सङ्गत्या तु जनः सज्जनः, शिष्टः भवति, कुसङ्गत्या च दुर्जनः दुष्टः च जायते। ये पुरुषाः सज्जनैः सह एव तिष्ठन्ति, खादन्ति, व्यवहरन्ति च ते तथैव स्वभावं गुणं च प्राप्नुवन्ति। वस्तुतः सङ्गत्या एव मनुष्ये गुणाः दोषाश्च संभवन्ति। अत एव कथितम् **संसर्गजा दोषगुणाः भवन्ति।** सत्सङ्गतिः पुरुषस्य अज्ञानं विनाशयति। तस्य वाणीं मधुरां करोति। तस्मै उन्नतिं कीर्तिं च ददाति। सर्वान् तस्य दोषान् अपहरति, चित्तं निर्मलं करोति। तस्य उन्नत्यां सर्वं साधयति। अत एव कथ्यते -

सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम्।

सत्संगत्या बुद्धिः प्रतिभाशालिनी, निर्मला च भवति, अतः महान् लाभः अस्ति सत्सङ्गतेः। विद्वांसः कथयन्ति यत् सज्जनैः सह उपवेशनं करणीयं, विवादो विधेयः, मैत्री च करणीया –

सद्भिरेव सहासीत सद्भिः कुर्वीत सङ्गतिम्।
सद्भिर्विवादः मैत्रीं च नासद्भिः किंचिदाचरेत्॥

विरोधः अपि साधुजनैः सह उचितः, कविः भारविः किरातार्जुनीये कथयति–**वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः।**

15.6 गीतायाः महत्त्वम्

भगवतः श्रीकृष्णस्य मुखारविन्देन विनिःसृता गीता सर्वविधलोकहितकारिका अस्ति। श्रीमद्भगवद्गीतायाः इदमपि वैशिष्ट्यं यत् –

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्मात् विनिःसृता॥

ज्ञान–कर्म–उपासनानां (भक्ति) त्रिवेणी अत्र सर्वत्र प्रवहति। प्रतिदिनं जलस्नानेन तु शरीरमलनाशः भवति किन्तु गीतायाः जले अवगाहनेन संसारे विद्यमानानां कामक्रोधमोहादिविकाराणां सर्वथा नाशः भवति।

महाभारते सन्तप्तमानसम् अर्जुनं दृष्ट्वा तस्य कर्तव्यबोधनार्थं भगवता श्रीकृष्णेन प्रदत्त उपदेशः गीता नाम्ना प्रसिद्धः अस्ति। तत्र मानवानामावश्यकं कर्त्तव्यमुपदिशति श्रीकृष्णः। तत्रत्याः मुख्याः उपदेशाः इमे सन्ति –

1. अयमात्मा अजरः अमरः। न जायते न म्रियते। कथमपि विनष्टः न भवति। यथा जीर्णं वस्त्रं परिहाय मनुष्यः नवीनं वस्त्रं धारयति तथा अयमात्मा जीर्णं शरीरं विहाय नवीनं शरीरं स्वीकरोति–

   वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
   तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

2. मनुष्यः स्वकर्मानुसारं पुनर्जन्म लभते, कर्मानुसारं म्रियते च –

   जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
   तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥

3. निष्कामभावनया कृतस्य कर्मणः फलेन मनुष्यः दुःखी न भवति। कदापि कर्म त्याज्यं नास्ति–

   कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
   मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

शुभाशुभकर्मणः कदापि नाशो न भवति शुभं कर्म सततं सर्वत्र भयात् त्रायते इत्थं गीतोपदेशः सर्वदा सर्वथा च जीवनोन्नतिकारकः। अतः उपदेशानुकूलमाचरणं कृत्वा सर्वैरपि स्वजीवनमुन्नतं कर्तव्यम्।

15.7 अहिंसा परमो धर्मः

पुण्ये अस्मिन् भारतवर्षे प्राचीन–कालादेव अहिंसायाः महत्त्वं मन्यते। भगवान् बुद्धः, भगवान् महावीरः, सम्राट् अशोकः अहिंसायाः शान्तेश्च उपदेशं ददुः। तेषामेव अनुयायी श्रीमान् महात्मा गांधी–महाभागः अपि स्वजीवने अहिंसाया व्रतं स्वीकृतवान्। तस्य मतमासीत् यत् अहिंसया दुष्कराणि अपि कार्याणि सुकराणि भवन्ति।

धर्म–प्रधानं खलु अस्माकं भारतम्, बहूनि खलु लक्षणानि अङ्गानि च धर्मस्य किन्तु सर्वाणि शास्त्राणि, सर्वे च

महापुरुषाः ऋषयः मुनयश्च अहिंसा - रूपं धर्ममुत्कृष्टं मन्यन्ते। अत एव भारतीयधर्मस्य संस्कृतेः सभ्यतायाश्च स्रोतः वेद एवास्ति। वेदोऽखिलो धर्ममूलम्। स च वेद-भगवान् उपदिशति **मा हिंस्यात् सर्वभूतानि।** वैदिकधर्मस्य, बौद्धजैनधर्मस्य च मूलमहिंसा एव विद्यते।

शास्त्रेषु प्रतिपादितैः यम-नियमैरेव जीवनस्य सञ्चालनं भवति, तेषु चापि अहिंसायाः प्रथमं स्थानं वर्तते, **'तत्राहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः'।**

कस्मैचित् क्लेशप्रदानं, कस्यचित् हननं ताडनं वा हिंसा अस्ति तस्या अभाव एव अहिंसा कथ्यते। अत्र च क्षमायाः शान्तेश्च प्राधान्यं भवति। जैन-शास्त्रे अस्य महिमा अनेन प्रकारेण वर्णिताः अस्ति।

अहिंसैव जगन्माताऽहिंसैवानन्दपद्धतिः।
अहिंसैव गतिः साध्वी श्रीरहिंसैव शाश्वती॥
अहिंसाभूतानां जगति विदितं ब्रह्म-परमम्।

वस्तुतः अहिंसा भगवती, हितकारिणी, सुख-शान्ति-दायिनी चास्ति। इयमेव सर्वा आपदः विनाशयति। भगवान् बुद्धः अहिंसया एव समस्तं जगत् स्ववशे चकार। महात्मागांधी अहिंसाशस्त्रेण भारतीय-स्वतन्त्रतां प्राप्तवान्। श्रीमान् जवाहरलाल नेहरू महाभागः, श्रीमान् लालबहादुरशास्त्री महोदयः च अहिंसायाः सन्देशं दत्त्वा संसारे भारतस्य यशः प्रसारितवन्तौ। अतः सत्यमेव कथितम्-**अहिंसा परमो धर्मः।**

15.8 संस्कृतभाषायाः महत्त्वम्

अस्मिन् संसारे असंख्याः भाषाः सन्ति। तासु भाषासु संस्कृतभाषा सर्वोत्तमा विद्यते। संस्कृता परिष्कृता, दोषरहिता भाषा एव संस्कृतभाषा कथ्यते। इयमेव भाषा देवभाषा, गीर्वाणगीः, सुरवाणी इत्यादिभिः शब्दैः सम्बोध्यते। संस्कृतं नाम दैवी वाक् अन्वाख्याता महर्षिभिः। एतानि नामानि एव अस्य महत्त्वं सूचयन्ति।

संस्कृतभाषा सर्वासां भाषाणां जननी अस्ति। सर्वभाषाणां मूलरूपं ज्ञातुम् एतस्या आवश्यकता भवति। यादृशं महत् साहित्यं संस्कृतभाषायाः अस्ति तादृशं अन्यासां भाषाणां नास्ति। अस्यामेव भाषायां संहिताग्रन्थाः, ब्राह्मणग्रन्थाः, आरण्यकाः अध्यात्मविषयप्रतिपादकाः उपनिषदः, वेदाङ्गादयश्च सन्ति। आदिकाव्यं रामायणं, वीरकाव्यमहाभारतमपि संस्कृतस्य गौरवं वर्धयतः। अनयोः ग्रन्थयोः विषयं गृहीत्वा एव विशालस्य संस्कृतसाहित्यस्य रचना संजाता।

इयं भाषा विश्वस्य सर्वासु भाषासु श्रेष्ठा अस्ति। प्राचीन भारते इयं संस्कृतभाषा लोकभाषा आसीत्। अनया च सम्पूर्णं भारतवर्षम् एकसूत्रे निबद्धम् आसीत्। भारतस्य संस्कृतिः संस्कृतादेव निःसृता अद्यापि भारतवर्षम् उपकरोति। वस्तुतः संस्कृतभाषैव भारतस्य प्राणभूता भाषाऽस्ति। संस्कृतं विना वयं भारतीयाः कथमपि जीवितुं न शक्नुमः। संस्कृतमेव संस्कृतिः। संस्कृतिरपि संस्कृते एव सुरक्षिता अस्ति। पूर्वकाले सर्वस्मिन् विश्वे तिसृणां भाषाणाम् अस्तित्वं महत्त्वं चासीत् लैटिन भाषा, ग्रीक भाषा, संस्कृत भाषा च। आसु ग्रीकलैटिनभाषाभ्यां याः अन्याः भाषाः समुद्भूताः ताः एतयोः स्वरूपं विनाश्य एवागताः किन्तु संस्कृतभाषया याः हिन्दी राजस्थानी बंगालीत्यादयः भाषाः समुद्गताः तास्तु समृद्धाः सन्त्येव, ताभिः सहैव जननीभूता संस्कृतभाषा अपि पूर्ववदेव पुष्टा समृद्धा चास्ति। अस्याः अस्तित्वं पूर्ववदेव लोके विद्यमानमस्ति। अतः अस्माभिः संस्कृतं सर्वथा संरक्षणीयम् संवर्द्धनीयञ्च।

15.9 आधुनिकयुगे संस्कृतशिक्षायाः स्थितिः

संस्कृतं यथा सर्वप्राचीना भाषा अस्ति तथा न अन्या काचित् भाषा। किन्तु साम्प्रतिके वैज्ञानिके युगे तत्रापि भौतिकतायाः चाकचिक्यप्रभावेण लोकः प्राचीनत्वं परिहाय आधुनिकविषयेषु आकृष्टः दृश्यते। तस्यैतत् कारणमस्ति यत् यत्र संस्कृतभाषा अध्ययनाध्यापनधिया एव महत्त्वपूर्णा वर्तते तत्र अन्या आङ्गलभाषा सर्वविधक्षेत्रेष्वात्मानं आधिपत्यं स्थापयित्वा मूर्धन्यत्वेन विराजते।

लोकः तस्यैव महत्त्वं स्वीकरोति यः तस्य वर्तमानजीवने उपयोगी भवेत्। भवतु नाम संस्कृतम् आचारं व्यवहारं च शिक्षयन् जीवने एवं विधं वैशिष्ट्यं आनयति येन जना सर्वथा सर्वक्षेत्रेषु समर्थाः भवन्ति। किन्तु जनाः अत्र विचारयन्ति यत् येन जीवनं चाकचिक्यपूर्णम् अन्यापेक्षया वैभवयुतं सर्वविधसौविध्यभरितं भवेत् तदेवास्माभिरङ्गीकरणीयम्। भवेन्नाम तत् परिणामे विषोपमम् किन्तु ते भविष्यत्कालं पराकृत्य वर्तमाने एव जीवन्ति।

संस्कृतं वस्तुतः तादृशी अर्थकरी भाषा नास्ति यथा अन्याः आङ्ग्ल इत्यादयः भाषाः। एताः आङ्ग्ल आदिभाषाः अधीत्य जनाः सर्वेष्वपि क्षेत्रेन्येषु उच्चपदासीनाः भवन्ति समधिकं धनार्जनमपि कुर्वन्ति। संस्कृतं प्रति सर्वेषां भावना उत्कृष्टा भवति, तां प्रति समादरं प्रकटयन्ति ते, किन्तु अध्ययन- दृशा ते एनां उत्कृष्टां न स्वीकुर्वन्ति। लोकस्य एतेन व्यवहारेण इयं भाषा सम्प्रति जनैः मृताभाषा कथ्यते। फलतः स्वपुत्रपौत्रानपि ते जनाः संस्कृतभाषामध्यापयितुं नोत्साहं प्रकटयन्ति।

पूर्वकाले तु इयं राजाश्रिता आसीत् फलतः सर्वदिक्षु प्रतिष्ठिता आसीत्। अतः सम्प्रत्यपि यावत् इयं सर्वकारेण पोषिता न भविष्यति तावदस्याः स्थितिः सन्तोषावहा न भविष्यति। सर्वकारस्य इदं कर्तव्यं यत् आङ्ग्ल भाषावत् अस्यै भाषायै अपि सर्वविधक्षेत्रेषु महत्त्वं प्रदाय भारतदेशस्य गौरवभूतामेनां भाषां संवर्धयन्तु येन पूर्ववदियं प्रतिष्ठिता भवेत्।

15.10 सदाचारः

मनुष्यजीवने धर्मस्य महत् महत्त्वं विद्यते। पुरुषस्य उत्कर्षः अपकर्षः आचरणेन एव जायते। रक्षितः धर्मः मनुष्यं रक्षति अरक्षितश्च धर्मः मानवं अधः पातयति। अतएव मनुः कथयति-

'धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः' द्विविधः खलु धर्मः - प्रवृत्तिलक्षणः निवृत्तिलक्षणश्च, उभयस्यापि मूलं सदाचारः अस्ति, अत एव **आचारः परमो धर्मः** इति शास्त्रे कथितमस्ति।

सतां सज्जनानां आचारः सद्व्यवहारः चरित्रं वा सदाचारः भवति। अस्य पर्यायः आचारः, वृत्तं चरित्रं वास्ति। विष्णुपुराणे सदाचारस्य लक्षणमिदं लिखितम् यत् -

साधवः क्षीणदोषाश्च सच्छब्दः साधुवाचकः।
तेषां वरणं यत्तु सदाचारः स उच्यते॥

जीवने सदाचारस्य महिमा भावपूर्णः यतः सर्वविधं वैभवं, वित्तं च निरर्थकं यदि सदाचारधनं नास्ति। अतः साधूच्यते-
अक्षीणः वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः।

सदाचारादेव जीवः दीर्घमायुः, अक्षयं धनं च लभते। सदाचारेण खलु मानवः उन्नतेः चरमशिखरं गच्छति अत एव ऋषिभिः समस्तवर्णेभ्यः आचारः अनिवार्यरूपेण प्रतिपादितः - **चतुर्णामपि वर्णानामाचारश्चैव तद्वतः।** मानवस्य जीवने तपसः अपि महत्त्वं विद्यते। तपः बहुप्रकारकं विद्यते, यस्य मूलं सदाचारः वर्तते अतः साधु कथितम् मनुना -

एकाचारतो दृष्ट्वा धर्मस्य त्वरितां गतिम्।
सर्वस्य तपसो मूलमाचारं जगृहुः परम्॥

ये मनुष्याः सदाचारहीनाः सन्ति वेदास्तान् न रक्षन्ति- **आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः।**

सदाचारस्य ईदृशं गौरवपूर्णं स्थानं विलोक्य एव मनुः सत्यं उपदिशति- **आचारः परमो धर्मः।**

15.11 धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम्

इह खलु संसारे को नाम तथाविधो जनः यो हि धर्मचर्यां न करोति। तन्महत्त्वं च न स्वीकरोति। प्रायेण वयं शृणुमः उपदिशामश्च यत् धर्मस्य पालनं करणीयम्। **धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः** तथा च **स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः** इत्यादि वाक्यान्यपि प्रायेण श्रूयन्ते, परन्तु कोऽयं धर्मः किं तत्-स्वरूपम्, किं तत्र निहितं रहस्यं, यद्धि मनुष्यान् पशुभ्यः पृथक् करोति। **आहार-निद्रा-भय-मैथुनं च....धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः** इति वाक्यात्

धर्मपदस्य विविधैः कोविदैः शास्त्रैश्च नानाविधाः स्वरूपद्योतिकाः परिभाषाः विधीयन्ते। धर्मलक्षणानां संख्या तथा विस्तृता विद्यते यथा सामान्यजनाः वास्तविक-स्वरूप-परिज्ञाने असमर्थाः भवन्ति। यानि खलु लक्षणानि प्रसिद्धानि तत्रापि विभिन्नता दृश्यते। अतएव धर्मस्य रहस्यं गुप्तम् इव दृश्यते। एतत् विचार्य एव धर्मराजो युधिष्ठिरः यक्षम् अब्रवीत्-

वेदाः विभिन्नाः स्मृतयो विभिन्नाः,
नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम्...॥

अस्य पद्यस्य अभिप्रायः - वेदाः ऋग्यजुः सामाथर्वभेदेन चत्वारः सन्ति। तत्रापि तेषां सर्वेषां विविधाः शाखाः, एवमेव स्मृतय अपि मनुस्मृतिः, याज्ञवल्क्य, नारदादिभेदेन विविधाः सन्ति। तत्र सर्वत्र अनेके ऋषयः मुनयः मनीषिणश्च स्वधिया देशकालपरिस्थितिं विचार्य धर्मतत्त्वविषये विवेचनमकुर्वन्। वस्तुतः धर्मस्य रहस्यं गूढतरम् अस्ति। एतज्ज्ञातुं महात्मनां अन्तेवासित्वं स्वीकरणीयम्। तेनैव धर्मस्य वास्तविकं स्वरूपं ज्ञातं भविष्यति। धर्मशब्दस्य प्रयोगः ऋग्वेदे अस्ति।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् अत्र तत्पदेन देवानां प्राथमिकं कर्तव्यं प्रदर्शितं ननु। अतएव अस्माभिः सर्वैरपि सदा सर्वदा धर्मः सेवनीयः।

15.12 अस्माकं राष्ट्रियाः समस्या :

भारतम् अस्माकं राष्ट्रम्। अत्र हिन्दु-मुस्लिम-सिक्ख-ईसाई-बौद्ध-जैनादि अनेके धर्मावलम्बिनः निवसन्ति। भारतराष्ट्रं प्रति उत्कटभावनया अस्य सर्वविधविकासाय कार्यं कुर्वन्ति। एतेषु धर्मावलम्बिषु केचन जनाः स्वार्थलिप्सया यथा तथा लाभप्राप्तये नीतिविरुद्धमपि आचरन्ति फलतः विषमतायाः स्थितिरुद्भवति। तेषामेवंविधेषु कार्येषु केचन राजनीतिज्ञकल्पाः अपि साहाय्यं कुर्वन्ति।

साम्प्रतिके काले राष्ट्रे विविधाः विकरालाः समस्याः मुखमुन्नमय्य तिष्ठन्ति। ताः द्विविधाः - बाह्यसमस्याः आन्तरिकसमस्याश्च। यदा शासकाः अयोग्या अदूरदर्शिनः उचितानुचितविवेकशून्याः भवन्ति तदा बाह्यसमस्याः सम्भवन्ति। 'रञ्जयति असौ राजा' इति व्युत्पत्त्या देशनायकः प्रजारञ्जनाय लोकाराधनाय यदा रामवत् आचरति तदा प्रजा सुखी भवति-यथाहि, भवभूतिः उत्तररामचरिते -

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥

अत्र रामः प्रजायाः सुखशान्त्यै सर्वं त्यक्तुकामः दृश्यते।

भारतराष्ट्रस्य सर्वासु दिक्षु चीन बङ्गलादेश, पाकिस्तान श्रीलङ्केत्यादयः देशाः सन्ति। ते सततं छद्मयुद्धं कर्तुं यतन्ते। तथा च ते यथा तथा भारतभूमौ आतङ्कमुत्पाद्य लोके अशान्तिवातावरणमुत्पादयन्ति। यावच्छासकः किंकर्तव्यविमूढः तावत् प्रजा किं कुर्यात्। अतः समये समये इदमावश्यकं यद्राष्ट्रनायकाः देशस्य सीमायाः संरक्षणाय, प्रजानां हृदये आत्मविश्वासोत्पादनाय तथा कुर्युः यथा प्रजायाः आत्मबलं वर्धेत।

राष्ट्रस्य आन्तरिक्यः समस्याः सन्ति - भ्रष्टाचारः, आरक्षणं, स्त्रीशिक्षाया अभावः, जनसंख्यावृद्धिः, पर्यावरणविनाशः, भौतिकतां प्रति सर्वथा अनुरक्तिः । सम्प्रति भ्रष्टाचार एव शिष्टाचारः। उत्कोचं विना न भवति किमपि कार्यम्। आरक्षणं नाम आर्थिकदृशा सामाजिकदृशा च निर्बलानामसहायानां शिक्षया, तद् योग्यतया च पदेषु स्थापनम् येन तेषां समुचितरूपेण भरणं पोषणं भवेत् समाजे च उचिता प्रतिष्ठा भवेत्। किन्त्वत्रेदं दृश्यते यत् काश्चन एव जातयः दीर्घकालादेव आरक्षणलाभेन युताः, तेष्वन्ये च तद्विरहिताः तथैव जीवनं यापयन्ति यथा ते पूर्वकाले आसन्। सर्वकारः अपि 'वोट' राजनीति धिया तत्र हस्तक्षेपं न करोति, मौनमेव धारयति।

स्त्रियः शिक्षिताः सत्यः परिवारस्य समाजस्य राष्ट्रस्य च उन्नतौ सहायिकाः भवन्ति। तासां शिक्षाव्यवस्था विशेषतः ग्रामीणक्षेत्रे नगण्या एवास्ति। शिक्षया एव उचितानुचिताविवेकेन जनसंख्या वृद्धौ नियन्त्रणं भवति। अतस्तासां शिक्षा व्यवस्थाऽपि तथा भवितव्या यथा ताः स्त्रियः वस्तुतः पुरुषस्य अर्धभागत्वेन स्थिताः स्युः। पर्यावरणविनाशः विकटा समस्या। भौतिकचाकचिक्यवशात् जनाः पर्यावरणं विनाश्य आत्मकोशं पूरयन्ति। तस्य परिणामः वृक्षाणां विनाशेन आवरणविहीना पृथ्वी। फलतः वर्षाया अभावः। वर्षाभावे खाद्यान्नसमस्या समुत्पन्ना। एवमेव पर्यावरणविनाशेन स्वाइन फ्ल्यू सदृश नव नवाः रोगाः उद्भूताः दृश्यन्ते।

अतः राष्ट्रनायकानां प्रजानां चेदं कर्तव्यं यत् अधिकां तृष्णां विहाय, यथा राष्ट्रनिर्माणं रक्षा च समुचित- रूपेण भवेत्, जनानां हृदि आत्मविश्वासः सुखं शान्तिश्च भवेत् तथा एकीभूय करणीयम्। एतेन एव शनैः शनैः समस्यानां निवारणं भविष्यति।

15.13 बोध-प्रश्न –

1. 'संस्कृति' शब्द के अर्थ को स्पष्ट करते हुए उसकी विशेषताओं का प्रतिपादन कीजिये।

   अथवा

   'भारतीय संस्कृति विश्व की समस्त संस्कृतियों में मूर्धन्य है' का सप्रमाण विस्तृत विवेचन कीजिये।

2. विद्या का जीवन में क्या महत्त्व है-सोदाहरण स्पष्ट विवेचन कीजिये।

3. 'गीता सुगीता कर्तव्या' कथन की गम्भीरता का स्पष्ट प्रतिपादन कीजिये।

4. 'मा हिंस्यात् सर्वभूतानि' – किसी भी प्राणी के प्रति हिंसा का भाव (मन, वाणी अथवा कर्म से) नहीं रखना चाहिये – वचन की उत्कृष्टता का निरूपण करें।

5. समस्त विश्व को एकसूत्र में बाँधकर शान्ति और सौहार्द का वातावरण प्रदान करने में संस्कृत भाषा ही समर्थ है – स्पष्ट विवेचन कीजिये।

6. आज का समय 'संस्कृत भाषा' के लिए सङ्क्रमण का काल है – कारणपूर्वक विवेचन कीजिये।

7. भारतराष्ट्र की आन्तरिक एवं बाह्य समस्याओं का समाधान किस प्रकार सम्भव है? स्पष्ट रूप से चिन्तन प्रस्तुत कीजिये।

15.14 उपयोगी पुस्तकें

1. संस्कृत व्याकरण : डॉ. श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, मेरठ
2. संस्कृतव्याकरण-प्रवेशिका : डॉ. बाबूराम सक्सेना, रामनारायणलाल, इलाहाबाद
3. Higher Sanskrit Grammar (हिन्दी संस्करण) : M.R. Kale
4. प्रौढरचनानुवाद कौमुदी : कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
5. संस्कृतनिबन्धशतकम् : डॉ. कपिलदेव द्विवेदी

15.15 बोध–प्रश्नों के उत्तर

उपर्युक्त प्रश्नों के समाधान हेतु इस इकाई में निर्धारित निबन्धों को हृदयङ्गम करें।